वीरेन्द्र गुप्त:

वेद-दर्शन

लेखक :—

वीरेन्द्र गुप्तः

सृष्ट्यब्द-१,९७,२८,१३,०८९

मानव सृष्टि एवं वेदकाल-१,९६,०८,५३,०८९

विक्रम सम्वत्-२०४५

दयानन्दाब्द-१६४

जौलाई १९८८

प्रकाशक :—
वीरेन्द्र नाथ अश्विनी कुमार
प्रकाशन मन्दिर
बाजार चौक, मुरादाबाद-२४४००१ (भारत)

आवास :—
"वेद कुटी"
सिंह कालोनी, कटरा पूरन जाट
बाजार गंज, मुरादाबाद

सम्पर्क साधन :—
ललित मेडिकल स्टोर
बाजार गंज, मुरादाबाद

प्रथम संस्करण—१०००

मूल्य—८०/-

मुद्रक :—राज प्रिन्टर्स, मण्डी चौक, मुरादाबाद।

समर्पित

योगेश्वर
वेद के पुनरुद्धारक,
चतुर्वेद मन्त्र द्रष्टा ऋषि,
परमहंस परिव्राजकाचार्य महर्षि दयानन्द सरस्वती जी
महाराज, जिनकी महती कृपा और परम पुरुषार्थ से
आज वेद और शुद्ध वेदार्थ उपलब्ध हैं।

महर्षि
चरणों
में

कर्त्तव्य

शास्त्रस्य पारङ्गत्वा तु भूयोभूयस्तदभ्यसेत् ।
तच्छास्त्र सबलं कुर्यान्न चाधीत्य त्येजत्पुनः ।।

ऋषि प्रणीत वेदादि भाष्य में पारंगत होकर भी बार-बार अभ्यास करता रहे। उस शास्त्र को समुन्नत करे न कि पढ़कर फिर छोड़ दे ।

जीवन का लक्ष्य

निन्दन्तु नीतिनिपुणा यदि वा स्तुवन्तु ।
लक्ष्मीः समाविशतु गच्छतु वा यथेष्टम् ।।
अद्यैव वा मरणमस्तु युगान्तरे वा ।
न्यायात्पथः प्रविचलन्ति पदं न धीराः ।।

भर्तृहरि नीतिशतक ८५

नीति में पारंगत चाहे प्रशंसा करे या निन्दा, धन अपने आप आये या जाये, आज मरें या कल्पान्त में, परन्तु धीर पुरुष न्याय के मार्ग से एक पग भी विचलित नहीं होते ।

दो शब्द

वेद वैदिक संस्कृति के मूलाधार हैं। वेद जीवन सर्वस्व हैं। वेद ज्ञान के अक्षय भण्डार हैं। सभी विद्याओं का मूल बीजरूप में उनमें विद्यमान है। जो वेद में है वही अन्यत्र है, जो वेद में नहीं है, वह अन्यत्र भी कहीं नहीं है।

वेद में ज्ञान-विज्ञान, आयुर्वेद, धनुर्वेद, गान विद्या, गणित, ज्यामिति, बीजगणित, रेखागणित, अर्थशास्त्र, समाज शास्त्र, राजनीति, व्यापार शास्त्र, यज्ञचिकित्सा, सन्तति-निर्माण शास्त्र, चरित्र निर्माण शास्त्र, धर्मनीति, युद्धनीति, शिवसंकल्प शास्त्र आदि सभी का वर्णन है।

वेद जहाँ हमें मोक्ष मार्ग का पथिक बनाते हैं, वहाँ लौकिक जीवन को भी उन्नत बनाने के साधनों का निर्देश करते हैं।

श्री वीरेन्द्र जी गुप्त ने वेद में डुबकियाँ लगाकर कुछ रत्नों को निकालने का प्रयत्न किया है। अपने स्वाध्याय को उन्होंने 'वेद-दर्शन' के रूप में पाठकों के समक्ष उपस्थित किया है। मनः सूक्त, नासदीय सूक्त, दाम्पत्य सूक्त, संजीवन सूक्त, पुत्रेष्टि सूक्त, रोग निवारक सूक्त, सरस्वती सूक्त, श्री सूक्त, वाणिज्य सूक्त, उद्यम सूक्त, जीवन निर्माण सूक्त, दान सूक्त, राष्ट्रभूमि सूक्त, काल सूक्त आदि अनेक सूक्तों में मन्त्रों का चयन बहुत उत्तम है। मन्त्रों का अर्थ और स्थान-स्थान पर उनके भाव का स्पष्टीकरण भी दे दिया गया है। इस सुन्दर पुस्तक के प्रणयन के लेखक बधाई के पात्र हैं।

विदुषामनु चरः
स्वामी जगदीश्वरानन्द सरस्वती

"वेद सदन"
एच. १/२, माडल टाउन
दिल्ली-११०००९
दि० १६-४-८८

वेदाज्ञा

मिमाहि श्लोकमास्ये पर्जन्य इव ततनः ।
गाय गायत्रमुक्थ्यम् ।।

ऋग्वेद १।३८।१४

हे विद्वान् ! तू वेदवाणी को मुख में कर ले, उसे कण्ठस्थ कर और उस वेदवाणी को मेघ के समान गर्जना करते हुए दूर-दूर तक गम्भीर स्वर से फैला, उसका उपदेश कर और गायत्री छन्द में कहे स्तुति युक्त वेद-वचन समूह को स्वयं गान कर, पढ़ और पढ़ा ।

वेदं शरणम् आगच्छामि ।

सर्वश्रेष्ठ अपरिवर्तन शील आदि ज्ञान-सागर 'वेद' की शरण में आओ ।

सत्यं शरणम् आगच्छामि ।

'सत्य' को जानो, पहचानो और 'सत्य' ज्ञान वेद की शरण में आओ ।

यज्ञं शरणम् आगच्छामि ।

सर्वश्रेष्ठ परोपकारमय कर्म 'यज्ञ' की शरण में आओ ।

बोधक

विषय	पृष्ठ

भूमिका

ओ३म् अग्निमीढ़े पुरोहितम् यज्ञस्य देवमृत्विजम् ।
होतारं रत्नधातमम् ।।

मानव जीवन की वास्तविक सफलता के लिए अभ्युदय तथा निःश्रेयस सदैव अपने-अपने स्थान पर स्थित एवं प्रतिष्ठित रहे हैं। एक मनुष्य को व्यवहारिक जगत में उन्नति के उच्चतम सोपान पर पहुँचाता है तो दूसरा मानव के उपादेय लक्ष्य की ओर अग्रसर करता रहता है। इन दोनों का यथावत् प्रयोग मानव की विवेक दृष्टि एवं दीर्घ दृष्टि पर निर्भर है। महाकवि भारवी ने 'नबाधतेऽस्य त्रिगणः परस्परम्' कह कर यह स्पष्ट कर दिया है कि जिस प्रकार समुचित काल विभाग तथा समान पक्षपात के द्वारा सेवित धर्म, अर्थ, काम परस्पर वाधित नहीं होते, उसी प्रकार प्रत्येक वस्तु समन्वय एवं सन्तुलन द्वारा गृहीत तथा व्यवहृत सुखद सिद्ध होती है। हमारे दूरदर्शी मनीषियों ने भौतिकता को हेय नहीं माना है किन्तु उसी में सर्वथा लिप्त होकर जीवन के चरम लक्ष्य निःश्रेयस की ओर से विमुख या उदासीन होना नितान्त अदूरदर्शिता है, जिसके कारण आज समस्त विश्व नाना प्रकार की सुख सामग्री का भाजन बनकर भी सच्ची शान्ति से वंचित है। वह उसे पाने के लिए विकल है, पर मृग-मरीचिकाओं में जल पाने की भाँति भटक रहा है, शान्ति की सही दिशा नहीं मिल पा रही है, अतः उसके सभी प्रयास अकिंचित् कर हैं। उसे पाने के लिए तो अध्यात्म प्रधान भारतीय संस्कृति के मूल स्रोत ज्ञान राशि की ओर अग्रसर होना होगा। वह ज्ञान राशि आज भी हमारे मननशील मनीषियों ने दाय रूप में संचित एवं सुरक्षित रखी है जिसने विश्व को शान्ति का सन्देश ही नहीं दिया अपितु उसका पाठ भी पढ़ाया है। उस ज्ञान राशि में हमारे 'वेद' अग्रगव्य हैं। वेद का महत्व सर्वविदित है उसके बारे में जितना भी कहा जाये अपूर्ण ही रहेगा। 'वेद' शब्द 'विद' धातु से बना है, 'विद' धातु पाणिनीय धातु पाठ में चार गणों में पृथक-पृथक अर्थों में आयी है। जिनके अर्थ हैं—सत्ता, ज्ञान, विचारण और प्राप्ति। किंच मुख्यतया ज्ञान अर्थ को लेकर ही 'वेद' शब्द का 'निर्वचन'

या व्याख्या की जाती है। वेद हमें केवल अध्यात्म के ही दर्शन नहीं कराते अपितु सामाजिक जीवन के भी सुन्दर सन्देश एवं उपदेश देते हैं–'मंत्र श्रुत्यं चरामसि' मंत्र (वेदाज्ञा) के अनुकूल आचरण करें। जब से हमने श्रुति के इस आदेश को भुलाया है तब से हम इधर-उधर भटक रहे हैं और अपना सुपथ प्रकाशक, ज्योति स्तम्भ स्थिर नहीं कर पाते। जिस प्रकार सूर्य के अस्त होने पर अनेक कृत्रिम प्रकाश कार्य में लाये जाते हैं परन्तु फिर भी वह घनान्धकार सर्वात्मना अपसारित नहीं हो पाता। यही दशा 'वेद ज्ञान' से विमुख होकर हमारी हुई है। सामाजिक जीवन में पद-पद पर लोक स्थिति के लिए हमको तथ्योपदेशक सद्‌गुरु की आवश्यकता होती है स्वतः प्रमाण मन्त्र से बढ़कर और कौन सद्‌गुरु हमको मिल सकता है। श्रुति ने भी इस बात को पुष्ट किया है। 'मन्त्रो गुरुरस्तु नः' अन्य शास्त्रपरतः प्रमाण हैं अर्थात् वेदानुकूल होने से मान्य अन्यथा अमान्य है एवं शास्त्रों में परस्पर विमति होने पर मन्त्र निर्णय ही प्रमाण होता है।

वेदानधीत्य वेदौवा वेद वापि यथा क्रमम् ।
अविलुप्त ब्रह्मचर्यो गृहस्थाश्रमा विशेत् ॥

तीनों वेदों का अथवा दो वेदों का या न्यूनतम एक वेद का अध्ययन करके अखण्डित ब्रह्मचर्य व्रत वाला गृहस्थाश्रम में प्रवेश करे। गृहस्थाश्रम पर अपने भार के साथ-साथ अन्य तीन आश्रमियों का भी भार रहता है।

यथा नदी–नदाः सर्वे सागरे भान्ति संस्थितिम् ।
तथैवाश्रमिणः सर्वे गृहस्थे यान्ति संस्थितिम् ॥

जिस प्रकार सब नदी और नद सागर में जाकर ठहरते हैं उसी प्रकार सब आश्रमी गृहस्थ का आश्रय लेते हैं। इतने गुरुतम दायित्व वाले गृहस्थाश्रमी को बल विद्या और बुद्धि से समन्वित होना चाहिये, अन्यथा वह इस दायित्व को यथावत् निभाने में असमर्थ ही रहेगा।

महर्षि दयानन्द सरस्वती के प्रादुर्भाव से पूर्व वैदिक विद्वान वेदों को कण्ठाग्र करने में ही इति कृत्यता मानते थे, इस सन्दर्भ में विद्वन्मूर्धन्य आचार्य बलदेव उपाध्याय का यह कथन यहां उद्‌धृत करना अप्रासंगिक न होगा "काशी, पूना जैसे विद्या क्षेत्रों में आज भी अनेक वैदिक विद्यमान हैं जिन्होंने समाज की उदासीनता की अवहेलना कर अश्रान्त परिश्रम तथा अनुपम लगन

के साथ विविध कठिनाइयों के बीच श्रुतियों के प्रत्येक मन्त्र को कण्ठाग्र जीवित रखा है। इनकी जितनी श्लाघा की जाय थोड़ी है, जितनी भी प्रशंसा की जाय, वह मात्रा में न्यून ही जँचती है क्योंकि इनके कण्ठों से आज भी हम मन्त्रों का उच्चारण उसी भांति, उसी स्वर-भंगी में सुन सकते हैं, जिस प्रकार सुदूर प्राचीन काल के ऋषिजन इनका विधि पूर्वक उच्चारण किया करते थे। इस प्रकार इन मन्त्रों के रक्षक रूप में ये वैदिक विद्वत्समाज आदर के पात्र तथा श्रद्धा के भाजन हैं, परन्तु इनमें एक त्रुटि गुलाब में कांटों की तरह असंगत रूप से खटक रही है। ये अक्षरज्ञ होने पर भी अर्थज्ञ नहीं होते। और यह भी निश्चित बात है कि वेद के अर्थों का ज्ञाता विद्वान् केवल मन्त्र वर्ण से परिचित व्यक्ति की अपेक्षा कहीं अधिक महत्व रखता है।" इसी लिए निरुक्तकार यास्क ने वाध्य होकर अर्थज्ञ विद्वान की जो प्रचुर प्रशंसा की है वह अनोखी और अनूठी है "जो व्यक्ति वेद का अध्ययन तो करता है पर उसके अर्थ को नहीं जानता, वह ठूठ वृक्ष की तरह केवल भार ढोने वाला ही होता है, जो अर्थ को जानता है वही सम्पूर्ण कल्याण को भोगता है और ज्ञान के द्वारा पापों को दूर कर वह स्वर्ग प्राप्त करता है।"

स्थाणुरयं भारहारः किलाभूदधीत्य वेदं न विजानाति योऽर्थम्।
योऽर्थज्ञइत्सकलं भद्रमश्नुते नाकमेति ज्ञानविधूतपाप्मा ॥

स्वामी जी ने वेदार्थ की ओर प्रवृत्त होने की विद्वत्समाज को प्रेरणा दी। इस विषय में स्वामी जी का ग्रन्थ रत्न ऋग्वेदादिभाष्य भूमिका विशेष रूप से दृष्टव्य है, जिसमें प्रत्यक्ष धर्मा ऋषियों को वेद के प्रथम ज्ञान का तथा षडंगों के अध्ययन द्वारा वेदार्थ के यथावत् बोध का सांगोपांग वर्णन है।

पूर्वाश्रय में ब्रह्मचर्य व्रत पालन पूर्वक विधिवत् वेदशास्त्र आदि अध्ययन करने के पश्चात् जब ब्रह्मचारी का समावर्तन संस्कार (दीक्षान्त समारोह) होता था उस समय सर्व प्रथम ये तीन वाक्य ब्रह्मचारी को उपदेश के रूप में कहे जाते थे।

१. सत्यंवद २. धर्मम् चर, ३. स्वाध्यायान्माप्रमादः। सत्य भाषण और धर्माचरणों का महत्व सर्वविदित है ही पर 'स्वाध्याय में प्रमाद मत करना' यह वाक्य भी नितान्त व्यवहार्य है। स्वाध्याय का महत्व केवल विद्योपार्जन काल में ही नहीं अपितु सदा सुपरिनिष्ठित है। हमारे स्वाध्याय शील श्री वीरेन्द्र गुप्तः जी ने अपने स्वाध्याय के बल पर ही समाजोपयोगी

छोटे बड़े अनेक ग्रन्थों की रचना की है जिनकी उपादेयता सहृदय विद्वद्वर्ग ने शतशः प्रमाणित की है। यह 'वेद दर्शन' नामक ग्रन्थ उनके सतत स्वाध्याय एवं वेद के प्रति अटूट आस्था का अपूर्व परिचायक है। उन्होंने अपने इस वृहत संकलन में वेद के प्रति अगाध भक्ति एवं लग्न का परिचय दिया है। इनके सभी सूक्त मानवमन को पूततम बनाने वाले तथा जीवन निर्माण की सही दिशा दिखाने वाले हैं। यह भी विचार्य है कि ज्ञान की सच्ची सफलता उसे आचरण में ढालने पर ही मानी जाती है। विचार और आचार का घनिष्ठ सम्बन्ध है। विचार के बिना केवल आचार विगताक्ष है और आचार के बिना विचार पंगुवत् है 'विचाराचारयोर्योगः सदाचारः स उच्यते' विचार और आचार के योग को ही सदाचार कहते हैं। यही सदाचार मानव धर्मशास्त्र में प्रतिपादित धर्म के प्रमुख चार लक्षणों में परिगणित है॥ इस ग्रन्थ के संकलित सूक्तों का तथा मुख्यतम अंशों का विवेचन भी दृष्टव्य है।

महर्षि दयानन्द जी ने आर्यजन हितार्थ जिन ग्रन्थों की रचना की, उन्हीं के मन्थन एवं तदनुकूल अन्य ग्रन्थों के अध्ययन तथा मनन के प्रसाद स्वरूप यह ग्रन्थ पाठकों को भेंट है। इसके 'उद्घोष' में महर्षि दयानन्द को जिस गुरु परम्परा द्वारा व्याकरण आदि का तथा योग आदि का ज्ञान प्राप्त हुआ वह परम्परा वस्तुतः उल्लेखनीय है। सद्गुरु ही राष्ट्र के उत्थान के लिए शिष्य को सुपथ प्रदर्शित करता है, 'वेदार्थ की आवश्यकता' प्रकरण में कुशल लेखक ने अनेक उद्धरणों द्वारा तर्क सम्मत इस आवश्यकता को प्रतिपादित किया है। विज्ञान के इस चमत्कारिक युग में वेदार्थ भले ही प्रत्यक्ष आकर्षक न दीखते हों परन्तु विज्ञान संघठन के साथ विघटनकारी सामग्री भी प्रस्तुत करते हैं। रुचि भेद के कारण दोनों ही पक्षों के ग्राहक एवं समर्थक मिलते हैं परन्तु 'वेद' हमें उस मार्ग में अग्रसर होने का उपदेश देते हैं जिससे राष्ट्र की एकता अक्षुण्ण तथा अखण्डता अटूट बनी रहे, आज इन दोनों के ही छिन्न-भिन्न होने की पग-पग पर आशंका बनी रहती है। 'यज्ञ साधना' प्रकरण में जिन उपादेय अंगों का विवेचन किया है वह सर्वथा मनन एवं आचरण के योग्य है 'यज्ञो भुवनस्य नाभिः' यज्ञ को समस्त भुवन की नाभि बताया है, जिस प्रकार नाभि चक्र के असंतुलित हो जाने पर सारे शरीर का संतुलन बिगड़ जाता है, उसी प्रकार यज्ञों के अभाव में भुवन अपनी अभीष्ट स्वस्थता को खो बैठता है, इसी प्रसंग में वर्णित 'यज्ञ का महत्व' भी विशेषतः ध्येय है। 'सृष्टि वर्णन' सूक्त में सप्ताह के सातों दिनों के क्रम का तथा नामकरण विवेचन अति गम्भीर रूप में प्रस्तुत किया है।

'पुत्र की कामना क्यों' इस विषय को लेखक ने बड़े ही अनूठे ढंग से प्रतिपादित किया है। शास्त्र का वचन है—'ऋणानि त्रीरायपाकृत्य मनो मोक्षे निवेशयेत्' तीनों ऋण १–पितृ ऋण, २–देव ऋण, ३–ऋषिऋण से मुक्त होकर ही जीवन के चरम लक्ष्य मोक्ष में मन लगावे। इन ऋणों में पितृ ऋण से मुक्ति पुत्रोत्पत्ति से ही मानी जाती है, अतः इसी प्रसंग में लेखक ने सरल सामान्य उपाय से पुत्र प्राप्ति न होने पर 'पुत्रेष्टि यज्ञ' का उल्लेख किया है, इस प्रकरण में विधि एवं औषधोपचार आदि का जो निर्देशन दिया है वह लेखक की सूझबूझ के साथ-साथ खोज का भी परिचायक है।

आपका 'चरित्र निर्माण सूक्त' विशेषतः द्रष्टव्य है। आज हमें इस शास्त्रीय वचन पर अवश्य गहन दृष्टि डालनी चाहिए।

वृत्तं यत्नेन संरक्षेद् वित्तमेति च याति च।
अक्षीणो वित्ततः क्षीणोवृत्ततस्तु हतो हतः ॥

आचरण की यत्न पूर्वक रक्षा करनी चाहिये, क्योंकि धन तो आता और जाता रहता है। जो धन से हीन है वह हीन नहीं किन्तु जो आचरण से हीन है वह हीन ही रहता है। एक समय था कि आर्यावर्त के अग्रजन्मा से पृथ्वी के समस्त मानव अपना-अपना चरित्र सीखते थे।

एतद् देश प्रसूतस्य सकाशादग्रजन्मनः।
स्वं स्वं चरित्रं शिक्षेरन् पृथिव्यां सर्व मानवाः॥

मानव की मानवता वस्तुतः चरित्र निर्माण पर ही निर्भर है, चरित्र में अन्य उपायों के साथ भक्ष्याभक्ष्य का भी पूरा-पूरा ध्यान रखना चाहिए। चरित्र निर्माण में मन का पवित्र रहना परम आवश्यक है और मन की पवित्रता आहार पर विशेष रूप से आधारित है। इसका लेखक ने यथा प्रसंग बहुत ही सुन्दर विवेचन किया है मानव जीवन के उत्थान के साधनों में चरित्र सर्वोपरि साधन है।

नगर के प्रसिद्ध आर्य विद्वान श्रद्धास्पद स्व० पं० गोपीनाथ जी की सत्प्रेरणा ने लेखक की लेखन दिशा में रुचि उत्पन्न की। लेखक ने अपने सतत स्वाध्याय के बल पर अपनी इस प्रवृति को उत्तरोत्तर परिष्कृत बनाया। पूज्य पण्डित जी के निर्देशन पर ही लेखक ने प्रत्येक ग्रन्थ एवं पुस्तक की भूमिका लिखने का दायित्व मुझको सौंपा जिसका मैंने यथा भांति निर्वाह किया। लेखक ने स्थान-स्थान पर यह स्पष्ट कर दिया है कि वन में रहने

वाले भी रागाभिभूत मनुष्य में दोष उत्पन्न हो जाते हैं और घर में रहकर भी पंचेन्द्रियों के संयम द्वारा मनुष्य तय कर सकता है। जो निन्दित कर्म से बचता है उस रागमुक्त मानव के लिये घर ही तपोवन है।

बनेऽपि दोषाः प्रभवन्ति रागिणाम् ।
गृहेऽपि पंचेन्द्रिय संयमस्तपः ॥
अकुत्सिते कर्माणि यः प्रवर्त्तते ।
निवृत्त रागस्य गृहं तपोवनम् ॥

सर्वान्तर्यामी जगन्नियन्ता जगदीश्वर से प्रार्थना है कि जो लेखक विचार और प्रचार की दृष्टि से ही रचना करते हैं न कि व्यावसायिक दृष्टि से उनकी कृतियाँ सदैव सहृदय ग्राह्य बनी रहें। जिससे इस प्रकार के लेखक का उत्साह यथावत् परिष्कृति को प्राप्त होता रहे। इत्योम्।

विदुषां वंश वदः
३ जून १९८६
भगवतसहाय शर्मा
(आचार्य)
डिप्टी गंज, मुरादाबाद

उद्गार

हे सच्चिदानन्द अनन्तस्वरूप, हे नित्य शुद्ध बुद्ध मुक्त स्वभाव, हे अद्वितीयानुपम जगदादिकारण, हे सर्वशक्तिमान न्यायकारिन, हे सर्वमंगलमय, सर्वस्वामिन्, हे सर्वानन्दप्रद, सकल दुःख विनाशक, अविद्या अन्धकार निर्मूलक, हे दारिद्र विनाशक, शत्रु विनाशक, हे दुर्गुण नाशक, निर्बल पालक, हे पारब्रह्म परमेश्वर, जगदानन्दक प्रभो आपकी महती कृपा से विक्रम सम्वत् १९८४ श्रावण शुक्ल छट बुधवार तदनुसार ३ अगस्त १९२७ को मेरा जन्म आर्यावर्तदेश (भारतवर्ष) के उत्तर प्रदेशीय क्षेत्र के मुरादाबाद नगर, मौहल्ला जीलाल स्थित व्यास कुटी में परम आदरणीय श्रद्धेय भूषण शरण जी के गृह में माता अशर्फी देवी के उदर से हुआ था, जहाँ पर वेदानुरागी श्रद्धेय पं० गोपीनाथ जी के सानिध्य से वेद ज्योति जगमगा रही थी। प्रभु जी ! यदि आप मुझे किसी और गृह में जन्म देते तो मैं वेद ज्योति पुंज प्रकाश से बहुत दूर होकर अज्ञान अन्धकार में भटकता रहता आपकी मेरे ऊपर यह अति महती कृपा रही।

प्रभु जी ! आपकी कृपा से कारोनेशन हिन्दू इन्टर कालेज मुरादाबाद में शिक्षण काल के मध्य श्रद्धेय तनसुखराय भाल 'अध्यापक' जो शनिवार के दिन अन्तिम घन्टे में वाक् प्रतियोगिता, कविता पाठ आदि कराते थे, उसी के मध्य सभी विद्यार्थियों को आर्य कुमार सभा में आने के लिए प्रेरित करते थे, मेरे ऊपर पैतृक संस्कारों का प्रभाव था ही, इससे और अधिक पूर्व के संस्कारों को बल मिला और उनकी प्रेरणा से मैंने आर्य कुमार सभा में सक्रय भाग लेना आरम्भ कर दिया ।

प्रभु जी ! श्रद्धेय पं० गोपीनाथ जी के सानिध्य से वेद तथा वैदिक सिद्धान्तों के मनन करने का सौभाग्य प्राप्त हुआ और श्रद्धेय वैद्यराज बुद्धासिह जी की प्रेरणा से वैदिक सिद्धान्तानुसार लेखन कार्य आरम्भ हुआ। पुत्रवत् स्नेह के प्रदाता श्रद्धेय आचार्य भगवत सहाय जी शर्मा का वरद् हस्त सदैव मेरे शीश पर रहा और मेरी प्रत्येक कृति की भूमिका लिखकर मेरी लेखनी को चमतकृत किया। श्रद्धेय स्वामी वेदानन्द जी जिनका पूर्व नाम

'मौलाना सत्यदेव' था इनके सानिध्य से अत्यन्त गूढ़ वेदिक सिद्धान्तों की जटिल गुत्थियों को सुलझाने का मार्ग प्राप्त हुआ।

प्रभु जी! आपके अपार कृपा सागर की इन माणिक मुक्ता स्वरूप बूँदों ने मुझे आपके वेद ज्ञान रूपी अपार सागर के तट के पास बैठकर कुछ माणिक मुक्ता आदि चुनने का अवसर प्रदान कर वेद गंगा की लहरों को जो केवल वेद का दर्शन मात्र ही है, सर्वत्र फैलाने का सौभाग्य प्रदान किया आपकी मेरे ऊपर यह अपार कृपा का ही कारण है। प्रभु जी! आपकी इस कृपा को मैं सहस्त्रों जन्मों में भी नहीं चुका सकता।

प्रभो जी! मेरी अति उत्कट अभिलाषा यह है कि सत्य ज्ञान वेद गंगा की लहरों को संसार के प्रत्येक प्राणी मात्र तक पहुँचाने के प्रयास में मैं पूर्ण सफलता प्राप्त करूँ, परन्तु प्रभु जी! यह विशाल कार्य एक जन्म में पूर्ण होने वाला नहीं, इसलिए प्रभु जी! जब तक संसार का प्रत्येक प्राणी इस वेद ज्ञान रूपी सागर में गोते न लगाने लगे उस समय तक मेरा प्रयास जारी रहे, अर्थात् मेरा जन्म बार-बार वेदानुरागी परिवार में मानव देह और कुशाग्र बुद्धि के साथ होता रहे। प्रभु जी! आपने मानव देह के साथ-साथ समस्त ज्ञानेन्द्रयाँ और कर्मेन्द्रियाँ प्रदान की हैं, जिनके द्वारा मानव शुभ कर्म करता हुआ आनन्द को प्राप्त होता है। जब मानव इन्द्रियों की उपयोगित मर्यादा का उल्लंघन करता है तो उस पर आपकी न्याय व्यवस्था लागू हो जाती है और दुरुपयोगित इन्द्रिय का अपहरण भी कर लेते हैं। प्रभु भी! मुझे ऐसा वातावरण कभी प्राप्त न हो जहाँ इन्द्रियों की उपयोगित मर्यादा का उल्लंघन होता हो।

प्रभु जी! आपकी इस कृपा का मैं आभारी हूँ और आपको सहस्त्र-सहस्त्र कोटि करबद्ध होकर नमन करता हूँ स्वीकार कीजिए।

वीरेन्द्र गुप्तः

महर्षि दयानन्द सरस्वती

वीरेन्द्र गुप्तः

उद्घोष

संस्कृत व्याकरण के ज्ञाता १०८ वर्ष के वयोवृद्ध महान सन्त परमहंस महात्मा सम्पूर्णानन्द सरस्वती जी महाराज के अनन्य शिष्य विद्या के पुञ्ज पाणिनि ऋषि द्वारा रचित अष्टाध्यायी वेद व्याकरण के सूर्य प्रज्ञाचक्षु दण्डी गुरु विरजानन्द सरस्वती जी महाराज के परम सुयोग्य, संसार से अविद्या अंधकार को समाप्त करने के स्वप्न को साकार करने वाले शिष्य अखण्ड ब्रह्मचारी महर्षि दयानन्द सरस्वती जी महाराज के द्वारा वेद के दिव्य ज्योति पुञ्ज प्रकाश से संसार चकित हो उठा, क्योंकि एकेश्वर बाद के स्थान पर बहुदेवता वाद और मानव रचित अनेकानेक वादों और पंथों की घनघोर घटाओं के बादल संसार में मंडरा रहे थे। धर्म के नाम पर मानवता ठगी जा रही थी, ऐसे भयंकर समय पर महर्षि दयानन्द सरस्वती जी ने वेद वीणा के तारों को झंकृत किया और सर्वत्र सत्य वेदार्थ का गान करने लगे। चहुँ ओर वास्तविक ज्ञान की अमृत रूपी बूँदों का पान कर संसार का प्राणिमात्र ज्ञान पिपासा से तृप्त होकर आनन्द मग्न होकर प्रभु का गुणानुवाद गाने लगा और योगेश्वर दयानन्द को कोटि-कोटि नमन कर कहने लगा—

सो-सो कर लुट रहे थे हम, तूने हमें जगा दिया।

चारों वेद मानव मात्र के लिए ज्ञान की अमूल्य निधि हैं, इसमें संसार की समस्त विद्याओं का सार विद्यमान है, इस विद्यासागर में जितनी गहरी डुबकी लगाते हैं उतने ही अनमोल रत्न प्राप्त होते हैं। आज का मानव अपने जीवन उपयोगी वस्तुओं के संचय करने के साधनों में अति व्यस्त है, वह हर समय उसी में उलझा रहता है, उसके पास चारों वेदों के अध्ययन करने का समय ही नहीं, ऐसे मानव, जीवन भर के लिये वेद ज्ञान ज्योति से बहुत दूर होकर अर्थ की दास्ता के जाल में फँसे रहते हैं। इस बात को लक्षित कर चारों वेदों में से जन साधारण उपयोगी सूक्तों को संग्रहीत कर आपके कर-कमलों में "वेद-दर्शन" के नाम से यह ग्रन्थ प्रस्तुत है। इसके द्वारा आप इच्छित लाभ हेतु सूक्त को चुनकर उसका पाठ अथवा यज्ञ द्वारा

प्रभु से प्रार्थना कर सकते हैं। इस प्रकार जब आपके हृदय में वेद ज्योति किरण जगमगा उठेगी तब आपके मन में स्वयमेव उस ज्योति पुञ्ज के पास तक पहुँचने की लालसा उत्पन्न हो जायेगी तब आप अपने जीवन में एक नवीन उत्साह और नई उमंग का अनुभव करेंगे और आपको आभास होगा कि यह मानव देह हमें क्यों मिली है, मैं कौन हूँ, कहाँ से आया हूँ, मुझे क्या करना है, क्या नहीं करना है आदि विषयों पर विचार करने की एक दिशा मिलेगी।

वेद मन्थन के द्वारा एक दीर्घ कालीन साधना के पश्चात्, सातवें वैवस्वत मनवन्तर की अट्ठाइसवीं चतुर्युगी के कलिकाल ५०८७वें वर्ष अर्थात् वेदकाल १, ९६, ०८, ५३, ०८७ के, सौर मास वृष एकम्, चन्द्र मास वैषाख शुक्ल पंचमी बुधवार विक्रम सम्वत् २०४३, १४ मई १९८६ को, जो जन उपयोगी सूक्त चुन कर संचित कर पूर्ण किये हैं, वे सब के हितार्थ प्रस्तुत हैं, जिसके द्वारा प्राणीमात्र अपना हित चिन्तन साधन सिद्धार्थ कर प्रभु के गुणानुवाद गाया करे, जिनकी कृपा से हमें वेद ज्ञान रूपी ज्योति पुञ्ज प्राप्त हुआ है।

आशा है जिस प्रकार समस्त सहृदय विद्वत जनसमूह ने १. इच्छानुसार सन्तान २. लौकिट ३. पुत्र प्राप्ति का साधन ४. पाणिग्रहण संस्कार विधि ५. सीमित परिवार ६. गर्भावस्था की उपासना ७. नींव के पत्थर ८. बोध रात्रि ९. धार्मिक चर्चा १०. कर्म चर्चा ११. सस्ती पूजा १२. वेद में क्या है १३. वेद की चार शक्तियाँ १४. कामनाओं की पूर्ति कैसे १५. यज्ञों का महत्व १६. ज्ञान दीप १७. दैनिक पञ्च महा यज्ञ १८. How to beget a son १९. The Light of Learning २० दिव्य दर्शन २१. दस नियम २२. पतन क्यों होता है, २३. विवेक कब जागता है, उन पुस्तकों को हृदयांगम कर मेरे उत्साह को अत्यन्त प्रोत्साहित किया, इसी प्रकार इस २४वीं पुस्तक 'वेद-दर्शन' को भी स्थान देकर मेरे प्रयास को सफल करेंगे।

इस ग्रन्थ की भूमिका रूपी आशीष पंक्तियाँ श्रद्धेय आचार्य भगवत सहाय जी ने लिख कर मेरा उत्साह वर्धन किया है मैं उक्त महानविद्वान के सामने इस उपकार के लिए करबद्ध होकर नतमस्तक हूँ।

वीरेन्द्र गुप्तः

ॐ

अथ वेददर्शनानुशासनम्

वन्दना

यो भूतं च भव्यं च सर्वं यश्चाधितिष्ठति ।
स्वर्यस्य च केवलं तस्मै ज्येष्ठाय ब्रह्मणे नमः ॥१॥

अथर्ववेद १०।८।१

(यः) जो परमेश्वर (भूतं च) भूतकाल और (भव्यं च) भविष्यत्-काल और (यः च सर्वम्) जो समस्त जगत् पर (अधितिष्ठति) अधिष्ठाता होकर वश करता है और (यः च) जिसका (केवलम्) स्वरूप (स्वः) सुखमय, आनन्द और प्रकाशमय है, (तस्मै) उस (ज्येष्ठाय ब्रह्मणे नमः) सर्वश्रेष्ठ परब्रह्म के लिए मेरा नमन है ।

यस्य भूमिः प्रमान्तरिक्षमुतोदरम् ।
दिवं यश्चक्रे मूर्धानं तस्मै ज्येष्ठाय ब्रह्मणे नमः ॥२॥

अथर्ववेद १०।७।३२

(भूमिः) भूमि (यस्य) जिसकी (प्रमा) चरणवत् है, (उत) और (अन्तरिक्षम्) अन्तरिक्ष (उदरम्) उदर है । (यः) और जो (दिवं) द्यौलोक को (मूर्धानं चक्रे) अपने शिर के समान बनाये है, (तस्मै ज्येष्ठाय ब्रह्मणे नमः) उस सर्वश्रेष्ठ ब्रह्म को मेरा नमन है ।

यस्य सूर्यश्चक्षुश्चन्द्रमाश्च पुनर्णवः ।
अग्निं यश्चक्र आस्यं तस्मै ज्येष्ठाय ब्रह्मणे नमः ॥३॥

अथर्ववेद १०।७।३३

(सूर्यः पुनर्नवः चन्द्रमाः च यस्य चक्षुः) सूर्य और पुनः नवीन रूप से उत्पन्न होने वाला चन्द्र दोनों जिसकी आँखों के समान हैं और (यः) जो (अग्निम्) अग्नि को (आस्यम्) अपने मुख के समान (चक्रे) बनाये हुए है, (तस्मै ज्येष्ठाय ब्रह्मणे नमः) उस सर्व श्रेष्ठ पारब्रह्म को मेरा नमन है ।

यस्य वातः प्राणापानौ चक्षुरङ्गिरसोऽभवन् ।
दिशो यश्चक्रे प्रज्ञानीस्तस्मै ज्येष्ठाय ब्रह्मणे नमः ॥४॥

अथर्ववेद १०।७।३४

(वातः) वायु (यस्य प्राणापानौ) जिसके प्राण और अपान के समान हैं और (अंगिरसः) ज्ञानी विद्वान् या नक्षत्रादि तेजस्वी पदार्थ, जिसके (चक्षुः अभवन्) चक्षु के समान हैं और (यः) जो (दिशः) दिशाओं को (प्रज्ञानीः) अपनी उत्कृष्ठ ज्ञापक, पताकाओं के समान (चक्रे) बनाये हुए है, (तस्मै ज्येष्ठाय ब्रह्मणे नमः) उस सर्वश्रेष्ठ ब्रह्म के लिये मेरा नमन है ।

यः श्रमात् तपसो जातो लोकान्त्सर्वान्त्समानशे ।
सोमं यश्चक्रे केवलं तस्मै ज्येष्ठाय ब्रह्मणे नमः ॥५॥

अथर्ववेद १०।७।३६

(यः) जो (श्रमात्) योगाभ्यास में सतत परिश्रम और (तपसः) तप (जातः) द्वारा प्रकट होता है, (सर्वान् लोकान्) और जो समस्त लोकों में (सम् आनशे) पूर्णरूप से व्याप्त है और (सोमं यश्चक्रे केवलम्) जिसने चन्द्रमा को अकेला विचरने वाला बनाया है । (तस्मै ज्येष्ठाय ब्रह्मणे नमः) उस सर्व श्रेष्ठ ब्रह्म को मेरा नमन है ।

यो देवेभ्यऽआतपति यो देवानां पुरोहितः ।
पूर्वो यो देवेभ्यो जातो नमो रुचाय ब्राह्मये ॥६॥

यजुर्वेद ३१।२०

(यः) जो (देवेभ्यः) दिव्य गुण वाले पृथ्वी, अग्नि, जल, तेज, वायु आदि को उत्पन्न करने के लिए स्वयं (आतपति) तप करता है और (यः) जो (देवानाम्) पृथिव्यादि लोकों, पञ्च भूतों से भी (पुरःहितः) पूर्व उनका मूल कारण होकर विद्यमान रहा और (यः) जो (देवेभ्यः) तेजोमय सूर्यादि पदार्थों से भी (पूर्वः) प्रथम (जातः) हिरण्यगर्भ रूप से प्रकट होता है। उस (ब्राह्मये) वेद द्वारा प्रतिपादित, (रुचाय) स्वयं प्रकाश स्वरूप परमेश्वर को (नमः) मेरा नमन है।

नमः सायं नमः प्रातर्नमो रात्र्या नमो दिवा ।
भवाय च शर्वाय चोभाभ्यामकरं नमः ॥७॥

अथर्ववेद ११।२।१६

(सायं नमः) परमात्मा को सायंकाल नमन हो, (प्रातः नमः) प्रातःकाल नमन हो। (रात्र्या नमः) रात्रिकाल में नमन हो। (दिवा नमः) दिन को नमन हो। (भवाय च शर्वाय च) सर्वोत्पादक और सर्वसंहारक ईश्वर के (उभाभ्याम्) दोनों स्वरूपों को (नमः अकरम्) मैं नमन करता हूँ।

नमः शम्भवाय च मयोभवाय च
नमः शङ्कराय च मयस्कराय च
नमः शिवाय च शिवतराय च ॥८॥

यजुर्वेद १६।४१

(शम्भवाय च) प्रजाओं को शान्ति प्राप्त कराने वाले, (मयोभवाय च) सुख के साधन उपस्थित करने वाले, (शंकराय च) कल्याण करने वाले, (मयः कराय च) सुखप्रद, (शिवाय च) स्वतः कल्याणमय (शिवतराय च) और भी अधिक शिव, मंगलकारी पुरुषों को (नमः) आदर पूर्वक नमन करता हूँ।

प्रभु की मित्रता

यो जागार तमृचः कामयन्ते यो जागार तमु सामानि यन्ति ।
यो जागार तमयं सोम आह तवाहपस्मिसख्ये न्योकाः ॥

सामवेद उ० ६।२।५।१-१८२६

जो जागता है अर्थात् सत् असत् का विवेक रखता है उसको ऋग्वेद की ऋचायें प्राप्त होती हैं, जो जागता है उसी को साम गान प्राप्त होते हैं, जो जागता है, उसको परमेश्वर कहता है कि मैं तेरी मित्रता में हूँ।

अग्निर्जागार तमृचः कामयन्तेऽग्निर्जागार तमु सामानि यन्ति ।
अग्निर्जागार तमयं सोम आह तवहमस्मि सख्ये न्योकाः ॥

सामवेद उ० ६।२।६।१-१८२७

विद्वान सद्-असद् का विवेक रखता है अतः उसको ऋग्वेद की ऋचायें प्राप्त होती हैं। विद्वान जागता है उसी को साम गान प्राप्त होते हैं, विद्वान प्रबुद्ध है उसको परमेश्वर कहता है कि मैं तेरी मित्रता में हूँ।

भविष्य का लक्ष्य

अग्नेऽदब्धायोऽशीतम पाहि मा दिद्योः पाहि
प्रसित्यै पाहि दुरिष्टयै पाहि दुरद्मन्याऽ
अविषंनः पितुं कृणु । सुषदा योनौ स्वाहा
वाडग्नये संवेशपतये स्वाहा ।
सरस्वत्यै यशोभगिन्यै स्वाहा ॥

यजुर्वेद २।२०

हे (अग्ने) ज्ञानवन् ! हे (अदब्धायो) अनिष्ट जीवन ! सुरक्षित जीवन वाले स्वामिन् ! हे (अशीतम) सर्वत्र विद्यमान ! आप (मा दिद्योः पाहि) मेरी कठोर दारुण दण्ड-रूप दुःख से रक्षा करो। (प्रसित्यै पाहि) पाप-प्रवृत्ति से मेरी रक्षा करो । (दुरिष्टयै पाहि) दुष्ट जनों की संगति से बचाओ। (दुरद्मन्यै) दुष्ट पापार्जित अन्न के भोजन से रक्षा करो। (अविषंनः पितुं कृणु) हमारे अन्न को विष रहित करो । (सुषदा योनौ स्वाहा) घर में उत्तम रूप से विराजने योग्य भूमि हो अथवा दूसरे अगले जन्मों में वेदोक्त वाक्यों की गूँज से स्थित स्थान घर प्राप्त हो । (वाडग्नये संवेशपतये स्वाहा) अग्नि के समान प्रतापी स्वामी, उत्तम रीति से बसने वाले पृथ्वी आदि लोकों के पालक से यह प्रार्थना है । (सरस्वत्यै यशोभगिन्यै स्वाहा) ऐश्वर्य को प्राप्त कराने वाली वेद वाणि से हम उत्तम ज्ञान प्राप्त करें ।

वेदार्थ की आवश्यकता

स्थाणुरयं भारहारः किलाभूदधीत्य वेदं न विजानातियोऽर्थम् ।
योऽर्थज्ञइत्सकलं भद्रमश्नुते नाकमेति ज्ञानविधूतपाप्मा ।।

निरुक्त नैगम काण्ड १/१८

जो वेद को पढ़ कर उसके अर्थ को नहीं समझता वह भारवाही पशु के समान है किन्तु जो वेदों के अर्थ को समझने वाला है वही समस्त सुख और कल्याण को प्राप्त करता है। वह उस पवित्र ज्ञान के द्वारा पाप को नष्ट करके परमानन्द रूप मोक्ष को प्राप्त कर लेता है।

यो वेदे च शास्त्रे च, ग्रन्थधारणतत्परः ।
न च ग्रन्थार्थतत्वज्ञः, तस्य तद्धारणंवृथा ।।
भारं स वहते तस्य, ग्रन्थस्यार्थं न वेत्ति यः ।
यस्तु ग्रन्थार्थतत्वज्ञो, नास्य ग्रन्थागमोवृथा ।।

महाभारत शान्तिपर्व मोक्ष अ० ३०५।१३,१४

जो वेद शास्त्रों को केवल पढ़ लेता है किन्तु उनके अर्थ और तत्व को नहीं जानता उसका इस प्रकार उस-उस ग्रन्थ को धारण कर लेना व केवल पढ़ लेना भार रूप और निष्फल-सा हो जाता है। अतः वेदादि शास्त्रों को अर्थ और तत्व सहित समझने का ही सबको प्रयत्न करना चाहिए।

लिङ्गोपदेशश्च तदर्थत्वात् ।

मीमांसा दर्शन १।२।५१

वेद मन्त्रों में परमात्मा के लक्षण बताये गये हैं, अतः वेद मन्त्रों का अर्थ होने के कारण वे अर्थ सहित पठन-पाठन करने के योग्य हैं।

ऊहः ।

मीमांसा दर्शन १/२/५२

तर्क से भी यही सिद्ध होता है कि वेदों का पठन-पाठन अर्थ सहित होना चाहिये।

उपरोक्त प्रमाणों से स्पष्ट सिद्ध है कि वेदादि आर्ष ग्रन्थों को अर्थ सहित ही पढ़ना चाहिये । वेद व्याकरण को स्पष्ट करने वाले ग्रन्थ अष्टाध्यायी, महाभाष्य, निरुक्त और निघन्टु की कसौटी पर सही उतरने वाले ही वेदार्थों का ही पठन-पाठन करना चाहिये, अन्य प्रकार से इतिहास को जोड़ कर अनुमानिक वेदार्थ, वेद के सत्यपवित्र विचारों को धूमिल करते हैं, ऐसे वेदार्थों को कभी नहीं पढ़ना चाहिये, जिसके पढ़ने से वेद का वास्तविक स्वरूप धूमिल होता हो। प्रत्येक मानव उसका निर्णय करने में असमर्थ है कि कौन-सा वेदार्थ सही है। इसका केवल एक ही निराकरण है कि आप सदैव महर्षि दयानन्द सरस्वती द्वारा प्रणीत पद्धति पर आधारित और आर्य समाज द्वारा प्रकाशित वेदार्थ का ही मनन और पठन-पाठन किया करें ।

वेद चार एवं अपौरुषेय

वेद पवित्र ईश्वरीय ज्ञान की अनुपम निधि है, संसार सागर को सुगमता से तरने के लिये—अग्नि, वायु, आदित्य, अंगिरा चारों ऋषियों के द्वारा ऋग्, यजुः, साम, अथर्व इन चारों वेदों का ज्ञान स्वयंभू परमेश्वर ने सृष्टि के आदि में दिया था। वेदों की संख्या के सम्बन्ध में स्वयं ऋग्वेद और अथर्व वेद में लिखा है।

तस्माद्यज्ञात् सर्वहुत ऋचः सामानिजज्ञिरे ।
छन्दांसि जज्ञिरे तस्माद्यजुस्तस्मादजायत ।।

ऋग्वेद १०।९०।९

उस सर्व प्रणेता यजनीय परमेश्वर से ऋचायें (ऋग्वेद) सामवेद प्रकट हुए उसी से छन्द (अथर्ववेद) उत्पन्न हुआ तथा उसी सर्व व्यापक परमेश्वर से यजुः (यजुर्वेद) उत्पन्न हुआ।

यस्मादृचो अपातक्षत् यजुर्यस्मादपाकषन् ।
सामानि यस्य लोमान्यथर्वाङ्गिरसो मुखम् ।।

अथर्ववेद १०।७।२०

जिससे ऋग्वेद की ऋचायें प्रकट हुईं और जिससे यजुर्वेद प्रकट हुआ, सामवेद जिसके लोम हैं और अथर्ववेद जो कि जीवन के रस के समान है वह जिसका मुख है उसको तू स्कम्भ कह, वह अत्यन्त सुखमय है।

इस प्रकार वेद की केवल चार पुस्तकें ही हैं और इनमें अपौरुषेय ज्ञान का वर्णन है जिसके अनुसार आचरण करके मनुष्य अपनी जीवन यात्रा में धर्म-अर्थ-काम-मोक्ष की प्राप्ति कर सकता है।

यज्ञेन वाचः पदवीयमायन् ।
तामन्व विन्दन्नृषिषु प्रविष्टाम् ।।

ऋग्वेद १०।७१।३

मनुष्यों को सुचारु और सरल रीति से जीवन यात्रा के लिये ज्ञान विज्ञान की आवश्यकता अपेक्षित है और उस सब का वेदों में वीज रूप से प्रतिपादन किया गया है ।

भूतं भव्यं भविष्यञ्च सर्वं वेदात्प्रसिद्ध्यति ।

मनु

भूत, वर्तमान और भविष्यत् काल में जो भी कुछ था है और होगा वह सब वेदों से ही सिद्ध हुआ है और होगा ।

वेद सब सत्य विद्याओं का पुस्तक है । वेद का पढ़ना-पढ़ाना और सुनना-सुनाना सब आर्यों का परमधर्म है ।

महर्षि दयानन्द सरस्वती

परन्तु कुछ लोग यह कहते पाये गये हैं कि अपौरुषेयता और ईश्वर प्रदत्तता केवल ऋग्, यजुः, साम, अथर्व वेदों को ही नहीं अपितु इतिहास, पुराण, उपनिषद्, श्लोक, सूत्र, व्याख्या और अनुव्याख्या को भी प्राप्त है। ऐसे महानुभाव अपनी इस मान्यता की पुष्टि में वृहदारण्यकोपनिषद् के २।४।१० के श्लोक को उपस्थित करते हैं। परन्तु इस उदाहरण को प्रस्तुत करते समय वह यह भूल जाते हैं कि उपनिषदों का काल वेदों के बहुत पीछे का विद्वानों ने माना है और उपनिषदों में मध्यकाल में बहुत मिलावट की गई थी । एक उपनिषद् तो 'अल्लोपनिषद्' के नाम से नया ही रच दिया। लोकमान्य तिलक के विचारानुसार वेदों का सरल वेदार्थ प्रकट करने वाले ब्राह्मण ग्रन्थों को बने भी अभी बीस हजार वर्ष ही होते हैं। फिर ब्राह्मण ग्रन्थों के अलंकारिक वर्णनों को लेकर चलने वाले तथा उनको स्पष्ट करने वाले पुराण तथा उपनिषदों की तो बात ही क्या है । ब्राह्मण ग्रन्थों के निर्माण काल की पुष्टि लोकमान्य तिलक ने ब्राह्मण ग्रन्थों में आये प्रमाणों से की है और यह भी स्पष्ट कर दिया है कि ये ब्राह्मण ग्रन्थ वेदों की व्याख्या के लिये ही बनाये गये हैं। इसी प्रसंग में वे फलित ज्योतिष की समालोचना करते हुए उसे गलत बताते हैं ।

अथातः शेष लक्षणम् ॥१॥
शेषः परार्थत्वात् ॥२॥

मीमांसा दर्शन ३।१।१-२

अवशेष का लक्षण करते हैं। वेदों के अर्थ को उपस्थित करने के कारण ही ब्राह्मण ग्रन्थों को शेष कहा जाता है।

और भी लिखा है—

विधि स्तुतिकरं शेषं ब्राह्मणं कथयन्तिहि ।

वेद मन्त्रों की स्तुति या परिभाषा करने से ही ब्राह्मण ग्रन्थों को शेष कहा गया है। इसी बात को प्राचीन तथा मध्यकालीन सभी विद्वानों ने स्वीकार किया है।

बुद्धिपूर्वावाक्यकृतिर्वेदे ।

वैशेषिक दर्शन ६।१।१

महर्षि कणाद ने उक्त वचन को लिखकर सुनिश्चित कर दिया है कि वेदों में प्रत्येक शब्द और वाक्य बुद्धि पूर्वक और सृष्टि क्रम के अनुकूल है।

ब्राह्मणे संज्ञाकर्मसिद्धि लिङ्गम् ।

वैशेषिक दर्शन ६।१।२

और स्पष्ट रूप से बता दिया है कि–ब्राह्मण ग्रन्थों में वेद के शब्दों की परिभाषा और शब्दों की सिद्धि के चिन्ह पाये जाते हैं।

इसी प्रकार छान्दोग्योपनिषद् के भाष्य में स्वामी शंकराचार्य जी लिखते हैं–

ऋगादीनृश्चाऽनधीत्य च तदर्थं ।
ब्राह्मणेभ्यो विधींश्च श्रुत्वा कर्माणिकुर्वंते ॥

ऋग्वेदादि वेदों के मन्त्रों को पढ़कर और उनके अर्थों और विधियों को ब्राह्मण ग्रन्थों से सुनकर कर्म करने चाहिये। यहाँ ब्राह्मण ग्रन्थों को वेद मन्त्रों का अर्थ करने वाला बताया गया है। इस प्रकार पुराणों का समय तो

लगभग तीन साढ़े तीन हजार वर्ष पुराना इतिहास और साहित्य के अन्वेषकों ने स्वीकार किया है और सूत्र ग्रन्थों का रचना काल भी लगभग पांच हजार वर्ष से पूर्व का सिद्ध नहीं होता।

इस प्रकार यह सत्य सिद्ध हो जाता है कि इतिहास, पुराण, उपनिषद्, श्लोक, सूत्र, व्याख्या और अनुव्याख्या आदि को अपौरुषेयता और ईश्वर प्रदत्तता का स्थान प्राप्त नहीं हो सकता, यह स्थान तो केवल ऋग्वेद, यजुर्वेद, सामवेद, अथर्ववेद को ही प्राप्त है। वेद केवल चार ही हैं एवं अपौरुषेय हैं।

विधि

नित्य प्रति प्रातःकाल शौच स्नानादि से शुद्ध पवित्र होकर स्वच्छ शुद्ध पवित्र एकान्त स्थान पर पूर्वाभिमुख उत्तम और सुखद आसन पर बैठकर अति श्रद्धा, भक्ति और पूर्ण आस्था के साथ प्रथम कम से कम पांच बार अधिक से अधिक सामर्थ्यानुसार गायत्री मन्त्र का अर्थ सहित पाठ और चिन्तन करें, पश्चात् ध्यानपूर्वक एक चित्त होकर इच्छित सूक्त का एक बार अथवा अनेक बार लक्ष्य पूर्ति होने के समय तक अर्थ सहित पाठ और चिन्तन करें और तदनुरूप प्रयत्न और व्यवहार भी करते रहें।

सम्पुट–इच्छित सूक्त के प्रत्येक मन्त्र के साथ गायत्री मन्त्र को जोड़ कर पाठ करने से अधिक लाभ प्राप्त होगा।

अनुष्ठान–एक स्थान, एक समय, एक गणना, एक आसन, एक वस्त्र निश्चित करके और एक निश्चित अवधि तक इच्छित सूक्त के पाठ को करना।

यज्ञ–प्रारम्भिक यज्ञ प्रक्रिया के पश्चात् इच्छित सूक्त के द्वारा यज्ञ (हवन) भी कर सकते हैं। यज्ञ करते समय प्रत्येक मन्त्र के अन्त में (स्वाहा) का उच्चारण करके यज्ञ कुण्ड में घृत, अथवा घृत, गूगल और चन्दन चूरे की मिश्रित सामग्री से अथवा सूक्त के साथ वर्णित सामग्री तैयार करके आहुतियाँ दें।

चारों वेद मन्त्र गणना

ऋग्वेद	मन्त्र	१०५५२
यजुर्वेद	मन्त्र	१९७५
सामवेद	मन्त्र	१८७५
अथर्ववेद	मन्त्र	५९७७
	योग	२०३७९

संकेत–क्रम

प्रस्तुत ग्रन्थ में चारों वेदों के उद्धृत मन्त्रों का संकेत क्रम
ऋग्वेद= मण्डल / सूक्त / मन्त्र
यजुर्वेद = अध्याय / मन्त्र
सामवेद = पूर्वाचिक–प्रपाठक/अर्द्ध-प्रपाठक/दशति/मन्त्र/मन्त्र क्रम
उत्तरार्चिक–प्रपाठक/अर्द्धप्रपाठक/सूक्त/मन्त्र/मन्त्र क्रम
अथर्ववेद = काण्ड / सूक्त / मन्त्र

मन्त्रोच्चारण क्रम

चारों वेदों के मन्त्रोच्चारण की विधि का शास्त्रकारों ने पृथक-पृथक विधान किया है उसी के अनुसार उच्चारण करना चाहिये। ऋग्वेद का उच्चारण — — दो मात्राओं में अर्थात् कुछ शीघ्रता के स्वर में, यजुर्वेद का उच्चारण — — —तीन मात्राओं में अर्थात् लम्बे स्वर में, सामवेद का उच्चारण— — — —चार मात्राओं में अर्थात् अधिक लम्बे स्वर में, अथर्ववेद का उच्चारण— —दो मात्राओं में अर्थात् ऋग्वेद के उच्चारण स्वर में होता है। अशुद्ध उच्चारण से क्या हानि होती है उसके विषय में पतञ्जलि ऋषि महाभाष्य में लिखते हैं —

दुष्टो मन्त्रः स्वरतो वर्णतो वा।
मिथ्या प्रयुक्तो न तमर्थमाह ॥
स वाग् वज्रो यजमानं हिनस्ति।
यथेन्द्रशत्रुः स्वरतोपराधात् ॥

जो पठित मन्त्र स्वर के द्वारा अथवा वर्ण के द्वारा मिथ्या प्रयुक्त होने से दूषित अर्थात् अभिष्ट अर्थ को नहीं बताता है वह वाणी रूपी

वज्र बनकर यजमान का हनन करता है जैसे इन्द्र का शत्रु वृत्तासुर स्वर दोष के कारण मारा गया।

वृत्तासुर ! इन्द्र के वर्चस्व को देखकर सदैव शत्रुभाव की धधकती हुई ज्वालाओं से संतप्त होता रहता था। किसी से ज्ञात हुआ कि—

इन्द्रशत्रु वर्धस्व

इस मन्त्र के जप से इन्द्र पर विजय प्राप्त हो सकती है, जिसका अर्थ है 'इन्द्र के शत्रु की जय हो' (इन्द्रशत्रु) शब्द में जप के समय 'तत्पुरुष' समास अर्थात् षष्टी तत्पुरुष में 'इन्द्रस्य+शुत्रुः' का स्वर होना चाहिए था, जिसका अर्थ होता है 'इन्द्र के शत्रु की विजय हो' किन्तु प्रमादवश पाठकर्त्ता ने (इन्द्रशत्रु) शब्द में 'रूपक कर्मधारय' समास अर्थात् 'इन्द्र एव शत्रुः' के स्वर का प्रयोग किया। जिसका विपरीत अर्थ बना 'इन्द्र जो मेरा शत्रु है, की जय हो।' केवल समास उच्चारण के भेद से वृत्तासुर का वाणी रूपी वज्र से हनन हो गया।

यजुर्वेद के सर्व प्रथम मन्त्र में आता है 'यजमानस्य पशून् पाहि' इसका अर्थ है 'हे सर्वोपकारक परमेश्वर यजमान के गौ, घोड़े आदि पशु तथा लक्ष्मी और प्रजा सन्तान की निरन्तर रक्षा कीजिये' इस पद 'पशून्' में 'न' हलन्त है, यदि इस पाठ को 'न' हलन्त न पढ़कर 'पशून' पढ़ा जायगा तो इसका अर्थ हो जाता है, यजमान के गौ, घोड़े आदि ,पशु तथा लक्ष्मी और प्रजा सन्तान की निरन्तर रक्षा न कीजिये। इस प्रकार विराम का भी ध्यान न रखने से भी अर्थ भेद हो जाता है, उदाहरण रूप में 'रोको मत जाने दो' यह चार शब्द हैं। विचार कीजिए—रात्रि में चोरों ने सेंध लगाई, माल की गठरी बाँध कर चलने लगे, उसी समय घर में जाग हो गई, गृह-स्वामी ने शोर मचाया 'रोको। मत जाने दो' कुञ्ज के व्यक्ति चोर को पकड़ने को दौड़े, इसी बीच चोर के एक साथी ने कठोर ध्वनि से कहा—'रोको मत। जाने दो' व्यक्ति भ्रम में पड़ गये, यह कैसा आदेश आया, चोर भाग गये। केवल विराम के उच्चारण भेद से अर्थ बदल गया। अशुद्ध उच्चारण और अशुद्ध विराम से कितना अर्थ का अनर्थ हो जाता है इस कारण शुद्ध उच्चारण और सही विराम का उपयोग करना ही अभीष्ट फल प्राप्ति के लिये अत्यन्त आवश्यक है अशुद्ध उच्चारण के अनिष्टकारी भय से भयभीत होकर वेद का पढ़ना नहीं छोड़ देना चाहिए, परन्तु शुद्ध उच्चारण का अभ्यास करना चाहिए। अभ्यास से सब कुछ सिद्ध हो जाता है।

यज्ञ सामग्रियां

सामान्य सामग्री = छाल छवोला, नागरमोथा, कपूर कचरी, तालीस पत्र, गुलाव के फूल, धाय के फूल, सुगन्ध वाला, गूगल, चन्दन चूरा सफेद, हाउवेर, अगर, तगर समान मात्रा में लें।

जुकाम खांसी शीत की प्रधानता पर = मजीठ, हल्दी, विसौंटा, भांगरा समान मात्रा में मिलाकर प्रयोग करें।

रक्त दोषों पर = नीम के पत्ते, चिरायता, त्रिफला, कुटकी, गिलोय, वावची, शहद सामान्य सामग्री में मिलाकर प्रयोग करें।

हैजा, टाइफाइड आदि रोगों के लिए = यज्ञ साधना में अंकित की है।

स्मृति आदि के लिये = सरस्वती सूक्त में अंकित की है।

पुष्टि के लिये = पुत्रेष्टि यज्ञ सूक्त में अंकित की है।

गायत्री साधना

सभी वेद मन्त्र छन्दों में होते हैं, इसी कारण प्रभु को 'कविर्मनीषी' कहा है। वेदों में बहुत से गायत्री छन्द हैं। प्रश्न उठता है कि कौन से गायत्री मन्त्र से साधना की जाय। इसका समाधान हमें मनु जी महाराज से मिलता है।

ओङ्कारपूर्विकास्तिस्त्रो महाव्याहृतयोऽव्ययाः ।
त्रिपदा चैव सावित्री विज्ञेयं ब्रह्मणोमुखम् ।।

मनु० २/८१

ओम्कार से युक्त अविनाशिनी (भूर्भुवः स्वः) यह तीन महाव्याहृति और त्रिपदा गायत्री को वेद का मुख तथा पारब्रह्म की प्राप्ति का हेतु जानना चाहिए।

इस प्रकार हमें यह संकेत मिलता है कि जिस मन्त्र के साथ महाव्याहृति लगी हों और त्रिपदा हो वही गायत्री मन्त्रं साधना के लिये उपयुक्त है। हम देखते हैं बहुत से गायत्री छन्दों के साथ महाव्याहृति लगाकर पाठ होता है। इस प्रकार अभी हमारे मन में शंका बनी हुई है कि हम कौन से गायत्री मन्त्र को चुनें। इस शंका के निवारण हेतु और स्पष्ट करने के लिए हम आपके सामने अथर्ववेद का एक मन्त्र प्रस्तुत करते हैं।

स्तुता मया वरदा वेदमाता प्रचोदयन्तां पावमानी द्विजानाम् । आयुः प्राणं प्रजां पशुं कीर्तिं द्रविणं ब्रह्मवर्चसम् । मह्यं दत्त्वा व्रजत ब्रह्म लोकम् ।।

अथर्ववेद १९।७१।१

प्रचोदयात् पदान्तवाली और द्विजों को पवित्र करने वाली वेदमाता गायत्री की मैं इसलिए स्तुति करता हूँ कि वह मुझको आयु (दीर्घ जीवन) बल (पुरुषार्थ) प्रजा (पुत्रादिक) पशु (गौ, वाहन आदि) कीर्ति (यश) धन (सम्पत्ति वैभव आदि) वैदिक ज्ञान (वेद विद्या और ज्ञान विज्ञान) देकर ब्रह्मलोक अर्थात् मोक्ष (बारम्बार जन्म-मरण के चक्र से दूर) पद को पहुँचावे ।

अब शंका का सम्पूर्ण समाधान हो गया कि हमें उस गायत्री छन्द के द्वारा प्रभु चिन्तन करना चाहिये जिसके साथ तीन 'महाव्यहृतियाँ' लगी हों, 'त्रिपदा' अर्थात् तीन पाद वाली हो, और जिसका अन्त 'प्रचोदयात्' पदान्त वाला हो। इस प्रकार के गायत्री छन्द मन्त्र से मनुष्य मात्र की यह स्वाभाविक इच्छायें पूर्ण होती हैं।

प्र गायत्रेण गायत पवमानं विचर्षणिम् ।
इन्दुं सहस्त्रचक्षसम् ।।

ऋग्वेद ९।६०।१

सबको पवित्र करने हारे सहस्रों नेत्रों वाले, विशेष दृष्टा ऐश्वर्यवान् प्रभु की गायत्री छन्द (मन्त्र) से भली प्रकार स्तुति करें।

योऽधीतेऽहन्यहन्येतांस्त्रीणि वर्षाण्यतन्द्रितः ।
स ब्रह्म परमभ्येति वायुभूतः खमूर्तिमान् ।।

मनु २।८२

जो पुरुष प्रतिदिन आलस्य रहित होकर तीन वर्ष पर्यन्त ओं व्याहृति और गायत्री का जाप करता है, वह पारब्रह्म को प्राप्त होता है और वायुवत् स्वतन्त्राचारी होकर शरीर बन्धन से रहित हो जाता है।

तिस्त्रो यदग्ने शरदस्त्वमिच्छुचिं घृतेन शुचयः सपर्यन् ।
नामानि चिद्दधिरे यज्ञियान्यसूदयन्ततन्वः सुजाताः ।।

ऋग्वेद १।७२।३

शुद्धभाव से तीन वर्ष तक निरन्तर ब्रह्मचर्य पूर्वक निश्छलता से रहने पर तपस्वी जन परमेश्वर के गुणों और स्वरूपों को साक्षात् करने लगते हैं और तेज से उनका देह तमतमाने लगता है।

जिस मन्त्र में जितने अक्षर होते हैं, उस मन्त्र का उतने लक्ष जाप करने से पूर्ण सफलता प्राप्त होती है। गायत्री मन्त्र में २४ अक्षर हैं इस कारण उसका २४ लक्ष जाप करना पूर्ण लाभ प्राप्ति के लिये आवश्यक है। एक लक्ष जाप १॥ मास में पूर्ण होता है। एक वर्ष में आठ लक्ष जाप और तीन वर्ष में २४ लक्ष जाप पूरा होता है। इस लिये मनु जी महाराज ने तीन वर्ष पर्यन्त गायत्री जाप को कहा है।

कुछ महानुभावों का मत है जाप से कोई लाभ नहीं होता। वह उपमा देते हैं कि रोटी-रोटी रटने से रोटी नहीं मिल सकती। बात बिल्कुल सत्य है। अर्थ हीन शब्दों के जाप से कोई लाभ नहीं होता। सार्थक अर्थ वाले मन्त्र का नित्य श्रद्धा भक्ति के साथ जाप करने से प्रभु कृपा अवश्य होगी।

एकाक्षरं परंब्रह्म प्राणायामः परंतपः।
सावित्र्यास्तु परं नास्ति मौनात्सत्यंविशिष्यते॥

मनु २/८३

ओम् यह एक अक्षर पारब्रह्म का वाचक है और प्राणायाम बड़ा तप है और गायत्री से श्रेष्ठ कोई मन्त्र नहीं तथा मौन से सत्य भाषण श्रेष्ठ है।

यथा च मधु पुष्पेभ्यो, घृतं दुग्धाद्रसात्पयः।
एवं सर्वत्र वेदानां, गायत्री सार मुच्यते॥

याज्ञवल्क्य स्मृति ४।१६

जैसे फूलों का सार भूत रस मधु है, दूध का सार घी है इसी प्रकार सब वेदों का सार गायत्री मन्त्र है।

गायत्री वेद जननी, गायत्री पाप नाशिनी।
गायत्र्यास्तु परं नास्ति, दिवि चेह च पावनम्॥

याज्ञवल्क्य स्मृति

गायत्री वेदों की माता है, गायत्री पापों का नाश करने वाली है, गायत्री से बढ़कर पवित्र करने वाला और कोई भी मन्त्र नहीं।

गायत्री के जाप से निश्चित रूप से पापों का नाश हो जाता है, परन्तु पापों के नाश का अर्थ पाप कर्मों के दुष्ट फलों के नाश से नहीं है। कर्मों के फलों का कभी नाश नहीं होता। पापों के नाश होने का अर्थ है पाप कर्मों की वृत्ति का नाश होना अर्थात् पाप कर्म न करने की वृत्ति का बनना ही है।

इस्लाम की यह धारणा है कि हजरत मौहम्मद साहब पर ईमान लाने से अथवा खुदा को आजीज़ी से सिज़दा करने से तमाम गुनाह माफ हो जाते हैं, इसी प्रकार ईसा भक्त कहते हैं कि ईसामसीह पर ईमान लाने वालों के सारे पापों की गठरी ईसामसीह अपने सर पर उठाकर ले गये, सब लोग पापों के कुफल से मुक्त हो गये। इस प्रकार के सिद्धान्तों से मानव मात्र में से पाप कर्म करने की वृत्ति कभी कम या समाप्त नहीं हो सकती, इससे तो और पाप वृत्ति को प्रोत्साहन मिलता है, दूसरे प्रभु की न्याय व्यवस्था में भी सन्देह पैदा हो सकता है। जड़वत् प्रकृति जब हमारी जरा-सी भूल की हमें सजा दे सकती है तो प्रभु की न्याय व्यवस्था में चाटुकारिता कैसे चल सकती है।

गायत्री वा इदं सर्वभूतं यदिदं किञ्च।

छान्दोग्य उपनिषद्

यह विश्व जो कुछ भी है वह समस्त गायत्री मय है।

य एतां वेद गायत्री, पुण्यां सर्व गुणान्विताम्।

जो गायत्री मन्त्र को तत्वपूर्वक यथार्थ विधि से जानता है तो वह संसार में नाश को प्राप्त नहीं होता अर्थात् अमर हो जाता है।

जाप एक निश्चित स्थान पर, शुद्ध पवित्र होकर उत्तम आसन पर बैठकर, एक निश्चित समय पर दत्तचित्त होकर, भक्ति भाव से आलस्य रहित, अर्थ भाव का मनन करते हुए स्थिर मन से एकाग्र-चित्त, चिन्ता रहित, आनन्द मग्न होकर करना चाहिए।

मन्द-बुद्धि के लिए = हल्के गीले सफेद वस्त्र से सर को ढक कर प्रातःकाल आँखें बन्द करके सूर्य की ओर मुख करके खड़े होकर न्यूनतम ३० मिनट तक गायत्री मन्त्र का जाप नित्य करने से बुद्धि में आश्चर्यजनक विकास होता है। शरद् ऋतु में वस्त्र सूखा ही रखें।

जिन परिवारों में स्त्रियाँ नित्य नियमित रूप से झाड़ू लगाते समय, आटा छानते तथा गूँथते समय, भोजन बनाते तथा पति पुत्र पुत्री आदि समस्त परिवारजनों को भोजन परोसते समय गायत्री मन्त्र का जाप करती रहती हैं अर्थात् हर समय गायत्री का मानसिक जाप करती हैं तो उनके परिवार में कभी अमंगल नहीं होता, और वह परिवार सदैव धन-धान्य से पूरित होकर सुख और शान्ति के साथ जीवन-यापन करता हुआ यश को प्राप्त होता है।

यदि आपकी इच्छा है कि हमारा बालक विद्या और बुद्धि में अद्वितीय विद्वान हो तो उसके लिए बच्चे से तीन वर्ष तक गायत्री मन्त्र का जाप एक निश्चित समय और निश्चित स्थान पर नित्य नियमित रूप से एक घण्टा अथवा आधा घण्टा जाप कराना चाहिये। प्रत्येक आयु के व्यक्ति इस साधन से लाभ उठा सकते हैं।

गर्भिणी स्त्री प्रातः सायं दोनों सन्धियों में गायत्री मन्त्र का मानसिक जाप करें तो उसके गर्भ से उत्पन्न बालक तेजस्वी, चतुर, बुद्धिमान, विद्वान और दीर्घ जीवी होगा।

आलसी, रोगी, चिड़चिड़े और कुबुद्धि बालकों को माता अपनी गोद में बैठाकर मन ही मन गायत्री का जाप करे और बच्चे के सिर तथा समस्त शरीर पर हाथ फेरती रहे, यदि बालक छोटा हो तो माता अपना दूध बालक को पिलाती रहे। इस प्रकार गायत्री मन्त्र के जाप से बालक पर आश्चर्य जनक प्रभाव पड़ता है और समस्त व्याधियों से शीघ्र मुक्त होकर बुद्धिमान और चतुर हो जाता है।

जाप क्रम—पहले ध्वनि के साथ, इसमें अपने कानों तक ध्वनि आती रहे, इस प्रकार के जाप में मन इधर-उधर नहीं भागता, इसके पश्चात् होट तो हिलते रहें परन्तु ध्वनि नहीं निकलती, अन्त में न होठ हिलते हैं और न ध्वनि निकलती है केवल मन ही मन में जाप किया जाता है। इस क्रम से जाप करने के अभ्यास से जाप में मन लगने लगता है।

गायत्री के २४ अक्षरों में से प्रत्येक में एक-एक देवता, एक-एक ऋषि और एक-एक महाशक्ति का समावेश है। इस प्रकार उसे २४ देवताओं, २४ ऋषियों और २४ महाशक्तियों की चमत्कारी क्षमताओं से सुसम्पन्न कहा जा सकता है। श्रद्धा युक्त अन्तःकरण से पवित्र आत्मा साधक

यदि विधिवत् उसकी उपासना करे तो उसे वह सब कुछ उपलब्ध हो सकता है। जिसकी जीवन को सफल बनाने के लिए आवश्यकता है।

यह गायत्री मन्त्र ऋग्वेद में ३।६२।१० यजुर्वेद में चार स्थानों पर ३।३५, २२।९, ३०।२, ३६।३, सामवेद में उ० ६।३।१०।१ = १४६२ तथा अथर्ववेद में महिमा गान १९।७१।१ है। हम इस मन्त्र का अर्थ गुरुदेव दयानन्द के लिखित सत्यार्थ प्रकाश के तीसरे समुल्लास से देते हैं।

गायत्री मन्त्र

ओ३म् भूर्भुवः स्वः।
तत्सवितुर्वरेण्यं भर्गो देवस्य धीमहि ।
धियो यो नः प्रचोदयात् ॥

यजुर्वेद ३६।३

(ओ३म्) परमेश्वर का प्रथम और निज नाम (ओ३म्) है। (भूः) जो सब जगत के जीवन का आधार, प्राण से भी प्रिय और स्वयम्भू है। (भुवः) जो सब दुःखों से रहित, जिसके संग से जीव सब दुःखों से छूट जाता है। (स्वः) जो नाना विध जगत् में व्यापक होके सबका धारण करता है। (सवितुः) जो सब जगत् का उत्पादक और सब ऐश्वर्य का दाता है। (देवस्य) जो सर्व सुखों का देने हारा और जिसकी प्राप्ति की कामना सब करते हैं उस परमात्मा का जो (वरेण्यम्) स्वीकार करने योग्य अति श्रेष्ठ (भर्गः) शुद्ध स्वरूप और पवित्र करने वाला चेतन ब्रह्म स्वरूप है (तत्) उसी परमात्मा के स्वरूप को हम लोग (धीमहि) धारण करें। किस प्रयोजन के लिए कि (यः) जो सविता देव परमात्मा (नः) हमारी (धियः) बुद्धियों को (प्रचोदयात्) प्रेरणा करे अर्थात् बुरे कामों से छुड़ा कर अच्छे कामों में प्रवृत्त करे।

हे मनुष्यों ! जो सब समर्थ सच्चिदानन्दानन्तस्वरूप, नित्य शुद्ध, नित्य बुद्ध, नित्य मुक्त स्वभाव वाला, कृपासागर, ठीक-ठीक न्याय का करने हारा, जन्ममरणादि, क्लेश रहित, आकार रहित, सबके घट-घट का जानने वाला, सबका धर्त्ता, पिता, उत्पादक, अन्नादि से विश्व का पोषण करने हारा, सकल ऐश्वर्ययुक्त, जगत का निर्माता, शुद्ध स्वरूप और जो प्राप्ति की कामना करने योग्य है, उस परमात्मा का जो शुद्ध चेतनस्वरूप है, उसी को हम धारण करें। इस प्रयोजन के लिए कि वह परमेश्वर हमारे आत्मा और बुद्धियों का अन्तर्यामीस्वरूप हमको दुष्टाचार, अधर्म्मयुक्त मार्ग से हटा के श्रेष्ठाचार सत्यमार्ग में चलावे, उसको छोड़कर दूसरे किसी वस्तु का ध्यान हम लोग नहीं करें। क्योंकि न कोई उसके तुल्य और न अधिक है वही हमारा पिता राजा न्यायाधीश और सुखों को देने हारा है।

यज्ञ का महत्व

यज्ञ ! होम, अग्निहोत्र, दान, परोपकारादि कर्म को कहते हैं। प्रत्येक याजक कर्म की सफलता 'मनसा वाचा कर्मणा' अर्थात् मन, वचन और कर्म की एकता पर आधारित है। मन में जैसा विचार हो, वैसा ही वचन में हो और मन-वचन में जैसा हो, वैसा ही कर्म में हो, यही उत्तम कर्म करने की सफल और सार्थक क्रिया है। अग्निहोत्र में यह तीनों क्रियायें एक साथ स्वाभाविक रूप से मिल जाती हैं, इसी कारण अग्निहोत्र का तत्काल और शीघ्र ही लाभ अनुभव होने लगता है। यज्ञ का अर्थ ही (देवपूजा संगतिकरण दानेषु) 'देवपूजा' का अर्थ होता है मन के विचार। विचारों का स्थिर होना और उन विचारों का स्थिर होना जिनसे केवल अपना ही कल्याण न होता हो, परन्तु सबके कल्याण का दृष्टिकोण हो। साथ में उन विचारों को स्थिर करना जिन विचारों को जीवन में ढाल सकें और सफलता भी प्राप्त कर सकें। निरर्थक विचारों को पास न आने दें और कुविचारों को तो अपने पास कदापि न फटकने दें। विचारों के आधार पर मानव की तीन कोटियाँ बन जाती हैं- १—देव कोटि, २—मनुष्य कोटि, ३—राक्षस कोटि। इनकी संगति हम वृक्षों से करते हैं। जो फलदार वृक्ष हैं वह 'देव' हैं, इसी प्रकार जो मानव फलदार हैं अर्थात् जो सेवा परोपकारादि कर्म करने में सदैव तत्पर रहते हैं, वह किसी की

पुकार पर नहीं, स्वयं ही सेवादि कर्मों के लिये अपने आपको प्रस्तुत कर देते हैं और फल स्वरूप यश और कीर्ति भी नहीं चाहते, वही 'देव' कोटि के मानव हैं। जो वृक्ष पहले फूल घोषणा और बाद में फल देते हैं, वह 'मनुष्य' हैं अर्थात् जो मानव पहले फूलों की तरह घोषणा करते हैं 'कि अब हम फल देने वाले हैं' हम आपके सेवक हैं, हम आपके हर दुःख दर्द को दूर करने वाले हैं और पुकार करने पर सहायता करते हैं, वही 'मनुष्य' कोटि के मानव हैं। जो वृक्ष केवल फूल ही फूल देते हैं अर्थात् घोषणा ही घोषणा करते हैं फल नहीं देते, वह 'राक्षस' हैं अर्थात् जो मानव केवल घोषणा पर घोषणा करते हैं करते-धरते कुछ नहीं और न किसी के काम आते हैं वही 'राक्षस' कोटि के मानव हैं। 'संगतिकरण' का अर्थ होता है विचारों के साथ वचनों की संगति का होना, अर्थात् जैसा विचार हो वैसा ही वचन। 'दानेषु' का अर्थ होता है, देना, कर्म करना, दान करना, क्रियाशील होना आदि-आदि अर्थात् विचारों के साथ वचन की संगति द्वारा मन्त्रोच्चारण करना और उसके अनुरूप कर्म द्वारा यज्ञ में हवि की आहुति देना, इस प्रकार तीनों की संगति बन ज़ाती है। जब हम किसी भी प्रकार की उपासना में बैठते हैं तो हमारा मन नाना प्रकार के संकल्प और विकल्प में उलझ कर सहस्रों मील दूर चला जाता है, परन्तु यज्ञ अग्निहोत्र में मन, वचन और कर्म तीनों का क्रिया में लग जाने से मन कहीं नहीं दौड़ता, एक चित्त होकर वहीं लगा रहता है। इसी कारण यज्ञ से बढ़कर और कोई उत्तम कार्य नहीं। यज्ञ सर्वश्रेष्ठ और कर्त्तव्य कर्म है। कर्त्तव्य कर्म का न करना अर्थात् यज्ञ का न करना पाप है और यज्ञ करना पुण्य नहीं कर्त्तव्य कर्म है। कर्त्तव्य कर्म करते रहना अनिवार्य है।

श्री कृष्ण जी गीता ३।१३ में कहते हैं—"यज्ञ से शेष बचे हुए अन्न को खाने वाले श्रेष्ठ पुरुष सब पापों से छूटते हैं और पापी लोग अपने शरीर पोषण के लिए ही पकाते हैं वे तो पाप ही खाते हैं।"

मनु जी ३।११८,७६ में कहते हैं "जो केवल अपने लिये अन्न पकाता है वह निरा पाप खाता है और जो यज्ञादि से शेष अर्थात् बलिवैश्य यज्ञ के पश्चात् का जो भोजन है वह सज्जनों का भोजन है। अग्नि में डाली हुई आहुति आदित्य को पहुँचती है और सूर्य से वृष्टि होती है और वृष्टि से अन्न, अन्न से प्रजा होती है" जो अग्निहोत्र हवन यज्ञ करता है वह सम्पूर्ण प्रजा का पालन करता है।

सूर्य अपनी किरणों द्वारा निरन्तर सब जगत के रस, गन्ध, दुर्गन्ध आदि को ऊपर खींचता रहता है। पुष्पादिकों की सुगन्ध, दुर्गन्ध का निवारण करती रहती है। जब सुगन्ध और दुर्गन्ध दोनों के समान परमाणु सूर्य की किरणों द्वारा ब्रह्माण्ड में पहुँच कर वायु को समान कोटि का बनाये रखते हैं, उस समान कोटि के वायु से समान कोटि की जल वृष्टि होती है और समान कोटि की जल वृष्टि से अन्नादि वनस्पति भी समान कोटि के होते हैं, उस अन्न से मनुष्यों के शरीर, बल, बुद्धि, पराक्रम, धैर्य और शूरवीरतादि गुण भी समान कोटि के होते हैं, क्योंकि जिसका जैसा कारण होता है वैसा ही उसका कार्य। मनुष्य अपने सुख लाभ के कारण दुर्गन्ध बढ़ाने वाले अनेक प्रकार के कार्य करता है, जैसे धूम्रपान नये-नये प्रकार के वाहन तथा आतंकवादी बम विस्फोट आदि-आदि प्रकारों से विषाक्त धूम्र उत्पन्न कर वायु को दूषित करके निकृष्ट बना देता है। आज समस्त संसार वायु दूषण के भय से त्रस्त हो रहा है, जिसके कारण निकृष्ट वायु से जल वृष्टि आदि द्वारा अन्नादि और अन्नादि द्वारा मनुष्यों के शरीर, बल, बुद्धि और विचार शक्ति सभी निकृष्ट होती जा रही है। नाना प्रकार के भयंकर रोग सामने आकर खड़े हो जाते हैं। जिसका कारण हम मानव ही हैं, तब इसका निवारण भी हम मानवों को ही करना उचित है। संसार का कोई भी उपाय इस वायु दूषण की भयंकर लपटों से बचा नहीं सकता। यह कटु एवं ध्रुव सत्य है कि इसका निवारण यज्ञ द्वारा ही हो सकता है। केवल एक व्यक्ति द्वारा ही नहीं अपितु सामूहिक रूप से सबके सहयोग द्वारा सफल हो सकता है। प्रत्येक मानव को उचित है, चाहे वह किसी भी मतमतान्तर का अनुयायी हो, चाहे संसार के किसी भी भाग का निवासी हो और यह चाहता हो कि संसार वायु दूषण की लपटों से बच सके तो उसे चाहिये कि वह अधिक न कर सके तो कम से कम जितनी दुर्गन्ध वह उत्पन्न करता है उतनी सुगन्ध यज्ञ द्वारा अवश्य उत्पन्न करे।

कदाचित् आप विचारेंगे कि यज्ञ द्वारा ही सुगन्ध क्यों उत्पन्न की जाये, हम उसे पुष्प, इत्र आदि के उपयोग से कर सकते हैं। परन्तु इत्र आदि की सुगन्ध आप तक ही सीमित रहती है, और अग्नि उसके तत्वों को विकसित करके वायु के सहयोग से उसे दूर तक फैला देती है। जिस प्रकार सैकड़ों बोरी लाल मिर्च की जिस स्थान पर रखी हों, उसके पास

बैठने वालों को कुछ कष्ट नहीं देती, यदि उसमें से एक लाल मिर्च निकाल कर अग्नि में डाल दी जाय तो वह अग्नि वायु के सहयोग से दूर तक मनुष्यों को व्याकुल कर देती है और अधिक समय तक मानव खाँसते, छींकते रहते हैं। शस्त्रागार में संचित यह विनाशकारी बम किसी को हानि नहीं पहुँचाते, परन्तु जब उस बम का सम्पर्क अग्नि के साथ हो जाता है तो वह विस्फुटित होकर महा प्रलयकारी दृश्य को सामने लाकर खड़ा कर देता है। इसलिये उस इत्र और पुष्पादिक सुगन्धित पदार्थों को अपने पास न रख कर उसे अग्नि के अर्पण करके सबका उपकार करना उचित है।

सायंकाल समय सुयोग्य, विद्वान और अनुभवी न्याय के विधिवेत्ता (जज साहब) सिगरेट का धूम्र उड़ाते हुए एक उद्यान में भ्रमण कर रहे थे, पास में जाकर कहा—बन्धुवर आपने न्याय के आसन पर बैठकर बड़े-बड़े अपराधियों को अपराध सिद्ध हो जाने पर दण्ड दिया है, मैं जानना चाहता हूँ कि संसार में सबसे जघन्य अपराध कौन-सा है? विधिवेत्ता ने कुछ अपराधों को बताया। आगन्तुक ने कहा—इनका सम्बन्ध वर्ग विशेष या कुछ ही मनुष्यों तक सीमित है, सार्वजनिक नहीं। मेरे विचार से अन्न के अभाव में प्राणी संघर्ष करता हुआ कुछ दिन तक अपने जीवन को सुरक्षित रख सकता है, जल के अभाव में भी अन्न की अपेक्षा कुछ कम समय तक कष्ट को सहन करता हुआ अपने जीवन को सुरक्षित रख सकता है, परन्तु वायु के अभाव में प्राणी एक सेकिण्ड भी अपने जीवन को सुरक्षित नहीं रख सकता, इस प्रकार जो अन्न को दूषित करता है कम अपराधी है, जो जल को दूषित करता है वह अन्न की अपेक्षा अधिक अपराधी है, परन्तु जो वायु को दूषित करता है वह जघन्य अपराधी है, क्योंकि बिना शुद्ध प्राण वायु के प्राणी मात्र का जीवन एक क्षण भी सुरक्षित नहीं रह सकता। जो मानव सिगरेट के धूम्र को उत्पन्न कर वायु को विषाक्त बनाकर प्राणीमात्र के जीवन से खिलवाड़ करता है वही सबसे बड़ा अपराध करने वाला जघन्य अपराधी है, और जो मानव प्राणीमात्र के जीवनाधार वायु को वेदवाणी द्वारा भावित कर यज्ञादि में सुगन्धित और रोगनाशक हवि अर्पित कर वायु को सुगन्धित और शुद्ध करता है वही सबसे बड़ा दयावान, दानी और परोपकारी जीव है। आगन्तुक की इस युक्ति को सुनकर विधिवेत्ता

चकित रह गये और कहा–"आप सत्य कहते हैं, वास्तव में मैं अब तक जघन्य अपराध करता रहा।" यह कहकर सिगरेट को फेंक दिया और सदैव के लिये तिलाञ्जलि दे दी, इस जघन्य अपराध से उऋण होने के लिये नित्य यज्ञ करने का संकल्प भी किया।

हमारे पूर्वज जिस समय तक दैनिक यज्ञ से लेकर अश्वमेधादिक विराट्-यज्ञों को करते रहे उस समय तक समस्त संसार वायु दूषण और भयंकर रोगों की बाढ़ से अभय रहा। उस समय वायु उत्तम होकर जल वृष्टि और अन्नादि भी उत्तम होते थे, उस उत्तम अन्न जल का पान करके मनुष्यों के शरीर, बल, बुद्धि, विचार और गुण उत्तम होकर समस्त विश्व को 'वसुधैव कुटुम्बकम्' का ज्ञान देकर दान, परोपकार और प्रभु-चिन्तन द्वारा ही नहीं वरन् समस्त संसार का भला करते थे।

जलती हुई शक्कर में वायु शुद्ध करने की बहुत बड़ी शक्ति है, इससे क्षय, चेचक, हैजा आदि रोग तुरन्त नष्ट हो जाते हैं। मुनक्का, किशमिश आदि अधिक मिठास वाले फलों को जलाने से टाईफाइड के रोग कीट ३० मिनट में और दूसरे रोगों के कीट घण्टे दो घण्टे में नष्ट हो जाते हैं। शुद्ध देसी घी के जलाने से रोग कीट शीघ्र ही नष्ट हो जाते हैं। आर्य समाज के प्रवर्त्तक महर्षि दयानन्द सरस्वती जी महाराज ने हरिद्वार कुम्भ के मेले पर हैजे के भयंकर प्रकोप पर काबू पाने के लिये घोषणा की थी, यदि देसी घी, शक्कर और कपूर को बड़ी मात्रा में जलाया जाय तो तत्काल हैजे पर काबू पाया जा सकता है। इसकी शीघ्र व्यवस्था की गई और हैजे पर काबू पा लिया गया।

गुग्गल ४ भाग, घी शुद्ध देसी घी ।। भाग, सफेद चन्दन चूरा १ भाग। इन पदार्थों से दैनिक यज्ञ करने से अलक्ष्मी दूर होती है, साथ में समृद्धकारी एवं शान्तिदायक भी है।

अभीष्ट कामना युक्त वेद मन्त्रों का उच्चारण करके मन्त्र के अन्त में 'स्वाहा' "जिसका अर्थ होता है–उल्लास, उत्साह के साथ एवं सुख साधन सम्पन्न" शब्द जोड़ कर अग्नि में हवि (सामग्री) की आहुति डालना यज्ञ कहाता है।

यज्ञ इन्द्रमवर्धयद्यद्भूमिं व्यवर्तयत् ।
चक्राण ओपशं दिवि ॥१॥

ऋग्वेद ८।१४।५

(दिवि) आकाश में (ओपशं) मेघ को (चक्राणः) उत्पन्न करता हुआ (यत्) जो यज्ञ (भूमिं वि-अवर्त्तयत्) भूमि को विविध सस्यादि बहुविध प्रकार से सम्पन्न करता है, वही (इन्द्रम् अवर्धयत्) सूर्यवत् प्रभु की महिमा यज्ञ से बढ़ाता है।

देवेभ्योहि प्रथमं यज्ञियेभ्योऽमृतत्वं सुवसि भागमुत्तमम् ।
आदिद्दामानं सवितर्व्यूर्णुषेऽनूचीना जीविता मानुषेभ्यः ॥२॥

ऋग्वेद ४।५४।२

हे (सवितः) जगत् के उत्पादक परमेश्वर तू ! तू (यज्ञियेभ्यः देवेभ्यः) यज्ञ, उपासना और भक्ति करने में श्रेष्ठ, विद्वान्, तेजस्वी, पुरुषों के हितार्थ (उत्तमम् भागम्) उत्तम सेवन योग्य (अमृतत्वं) अमृतस्वरूप, मोक्ष सुख (सुवसि) प्रदान करता है और (आत् इत्) अनन्तर (दामानं) दानशील राजा, विजित चित्त वाले तपस्वी एवं अपने को प्रभु के प्रति सौंप देने वाले पुरुष को (वि ऊर्णुषे) विविध प्रकार से आच्छादित करता है और (मानुषेभ्यः) समस्त मननशील पुरुषों के हितार्थ (अनूचीना जीवितः) अनुकूल सुखप्रद जीवन देता है।

यः समिधा य आहुती यो वेदेन ददाश मर्तो अग्नये ।
यो नमसा स्वध्वरः ॥३।

ऋग्वेद ८।१९।५

(यः) जो (स्वध्वरः) उत्तम अहिंसक, यज्ञशील, (मर्त्तः) पुरुष (नमसा) अन्न से, या विनय, श्रद्धा से (यः) जो (समिधा) काष्ट से, (यः आहुती) जो आहुति से, (यः वेदेन) जो वेद से, वेद के अध्ययन, मनन, श्रवणादि करते हुए (अग्नये) अग्नि में आहुतिवत् उस ज्ञानवान्, सर्वप्रकाशक, सर्वगुरु परमेश्वर के हाथों अपने को (ददाश) प्रदान करता है।

तस्येदर्वन्तो रंहयन्त आशवस्तस्य द्युम्नितमं यशः ।
न तमंहो देवकृतं कुतश्चन न मर्त्यकृतं नशत् ॥४॥

ऋग्वेद ८।१९।६

(तस्यइत्) उसके ही (आशवः अर्वन्तः) वेग से जाने वाले अश्व (रंहयन्ते) वेग से गमन करते हैं, (तस्य) उसका ही (यशः द्युम्नितमम्) यश अति उज्ज्वल होता है, (तम्) उस तक (देवकृतं) विद्वानों और (मर्त्यकृतं) मनुष्यों का किया (अहंः) पाप, अपराध (कुतः चन न नशत्) किसी प्रकार नहीं प्राप्त होता अर्थात् यज्ञशील को पाप स्पर्श नहीं करता।

अयं यज्ञो देवया अयं मियेध इमा ब्रह्माण्ययमिन्द्र सोमः ।
स्तीर्णं बर्हिरा तु शक्र प्र याहि पिबा निषद्य वि मुचा हरी इह ॥५॥

ऋग्वेद १।१७७।४

(अयं यज्ञः) यह यज्ञ अर्थात् सज्जनों का सत्संग (देवयाः) देवों, दिव्य गुणवान् विद्वानों को उचित मान, दान देने हारा है। (अयं) यह ज्ञानों से प्रदीप्त होने वाला है। (इमा) ये ही (ब्रह्माणि) नाना धनैश्वर्य हैं। हे (इन्द्र) शत्रुहन्ता (अयम् सोमः) यह महान् ऐश्वर्य, सबको सन्मार्ग पर चलाने हारा ब्राह्मण वर्ग है। यह (वर्हिः) राज्यवृद्धि करने वाला प्रजाजन (स्तीर्णम्) आकाशवत् दूर तक फैला हुआ है। हे (शक्र) शक्तिशालिन्। तू (निषद्य) इस पर विराज कर (प्र याहि) आगे बढ़ और (प्र पिब) अच्छी प्रकार इसका पालन कर। (इह) इसी राष्ट्र में (हरी) रथ के दो अश्वों के समान राष्ट्र को वहन करने वाले (विमुच) विविध प्रकार युक्तकर।

देवो वो द्रविणोदाः पूर्णां विवष्ट्वासिचम् ॥
उद्वा सिञ्चध्वमुप वा पृणध्वमादिद्वो देव ओहते ॥६॥

सामवेद पू० १।१।६।१ = ५५

हे मनुष्यों ! तुम्हारा इष्ट देव भक्तिपात्र परमेश्वर, सब प्रकार के द्रव्यों, ऐश्वर्यों और ज्ञानों, बलों को देने हारा है। इसलिये वह भरी हुई स्रुवा वा आहुति की कामना करता है और भरपूर ऊपर तक भरकर आहुति डालो और उसको भरो तब शीघ्र तुम्हारे लिये ईश्वर अभिलाषित फल देता है।

असुन्वन्तं समं जहि दूणाशं यो न ते मयः ।
अस्मभ्यमस्य वेदनं दद्धि सूरिश्चिदोहते ॥७॥

ऋग्वेद १।१७६।४

(असुन्वन्तं) यज्ञ आदि न करने हारे, (समं) समस्त (दु:नाशं) बड़ी कठिनता से नाश होने वाले उस दुष्ट पुरुष को (जहि) नाश कर (य:) जो (ते मयः न) तुझे स्वीकार नहीं होता। (अस्मभ्यम्) हमें (अस्य) उसका (वेदनं) धन (दद्धि) प्रदान कर या हमारे हित के लिये उसका धन तू धारण कर अर्थात् उसको धन रहित बना (सूरि:चित्) सूर्य के समान विद्वान पुरुष ही (ओहते) उस धन को प्राप्त करे। अथवा (सूरि:चित् ओहते) जो सूर्य के समान तेजस्वी होकर ऐश्वर्य को धारण करता है परन्तु वह यज्ञ नहीं करता, तो उस दुष्ट को दण्ड देकर उसका समस्त धन ऐश्वर्य को हर लेता है।

प्रभात वन्दना

देखो, कितना सुन्दर और सुहावना समय है। इस समय को अमृतबेला कहा जाता है। इस समय प्रकृति कितनी शान्त और सुहावनी होती है। इस शान्ति और नित्य नवीनता प्रदान करने वाले सुहावनेपन को यदि हम अपने हृदयंगम् कर लें तो हम अमृतमय हो सकते हैं। यह तो सत्य ही है कि इस सुन्दर अमृतबेला में जो संस्कार हम अपने में डालेंगे वे हमारे अन्दर अमर हो सकते हैं, स्थायी हो सकते हैं।

रात्रि के अन्त और सूर्योदय से एक घण्टा पूर्व का समय ब्राह्ममुहूर्त कहलाता है। उसी समय उठकर अपने शरीर के जीर्ण अजीर्ण का ज्ञान करना चाहिए और अजीर्ण मालूम पड़े तो धीरे-धीरे नित्य अभ्यास बढ़ाकर शीघ्र उठने का अभ्यास करना चाहिए। निन्द्रा त्यागते ही पारब्रह्म परमेश्वर का ध्यान करके शय्या से उठते ही ऋग्वेद ७।४१।१ से ५ तक के मन्त्रों का उत्तम रीति से आनन्द सहित मधुर कण्ठ से उच्चारण करके अर्थ भाव का ध्यान करो। ऐसा करने से आत्मा उत्साहित होकर मानसिक दुर्भाव रूपी शत्रुओं का नाश होता है।

प्रातरग्निं प्रातरिन्द्रं हवामहे प्रातर्मित्रावरुणा प्रातरश्विना।
प्रातर्भगं पूषणं ब्रह्मणस्पतिं प्रातस्सोममुत रुद्रं हुवेम ॥१॥

ऋग्वेद ७।४१।१

हे स्त्री पुरुषो ! जैसे हम विद्वान् उपदेशक लोग (प्रातः) प्रभात बेला में (अग्निम्) स्वप्रकाशस्वरूप (प्रातः इन्द्रम्) परमैश्वर्य के दाता

और परमैश्वर्ययुक्त (प्रातः मित्रावरुणा) प्राण उदान के समान प्रिय और सर्वशक्तिमान् (प्रातः अश्विना) सूर्य चन्द्र को जिसने उत्पन्न किया है उस परमात्मा की (हवामहे) स्तुति करते हैं और (प्रातः भगम्) भजनीय सेवनीय ऐश्वर्ययुक्त (पूषणम्) पुष्टिकर्त्ता (ब्रह्मणस्पतिम्) अपने उपासक, वेद और ब्रह्माण्ड के पालन करने हारे (प्रातः सोमम्) अन्तर्यामी प्रेरक (उत) और (रुद्रम्) पापियों को रुलानेहारे और सर्वरोगनाशक जगदीश्वर की (हुवेम) स्तुति प्रार्थना करते हैं वैसे प्रातः समय तुम लोग भी किया करो।

प्रातर्जितं भगमुग्रं हुवेम वयं पुत्रमदितेर्यो विधर्ता ।
आध्रश्चिद्यं मन्यमानस्तुरश्चिद्राजा चिद्यं भगं भक्षीत्याह ॥२॥

ऋग्वेद ७।४१।२

(प्रातः) पाँच घड़ी रात्रि रहे अर्थात् सूर्योदय से दो घण्टे पूर्व (जितम्) जयशील (भगम्) ऐश्वर्य के दाता (उग्रम्) तेजस्वी (अदितेः) अन्तरिक्ष के (पुत्रम्) सूर्य की उत्पत्ति करनेहारे और (यः) जो कि सूर्यादि लोकों का (विधर्त्ता) विशेष करके धारण करने हारा (आध्रः) सबका धारणकर्त्ता (यं, चित्) जिस किसी का भी (मन्यमानः) जाननेहारा (तुरश्चित्) दुष्टों का भी दण्डदाता और (राजा) सब का प्रकाशक है (यम्) जिस (भगम्) भजनीय स्वरूप को (चित्) भी (भक्षी) इस प्रकार सेवन करता हूँ और इसी प्रकार भगवान् परमेश्वर सबको (आह इति) उपदेश करता है कि तुम, जो मैं सूर्यादि जगत् का बनाने और धारण करने हारा हूँ उस मेरी उपासना किया और मेरी आज्ञा में चला करो इससे (वयम्) हम लोग उसकी (हुवेम) स्तुति करते हैं।

भग प्रणेतर्भग सत्यराधो भगेमां धियमुदवा ददन्नः ।
भग प्र णो जनय गोभिरश्वैर्भग प्र नृभिर्नृवन्तः स्याम ॥३॥

ऋग्वेद ७।४१।३

हे (भग) भजनीयस्वरूप (प्रणेतः) सबके उत्पादक सत्याचार में प्रेरक (भग) ऐश्वर्यप्रद (सत्यराधः) सत्य धन को देनेहारे (भग) सत्याचरण करने हारों को ऐश्वर्यदाता आप परमेश्वर (नः) हमको (इमाम्) इस (धियम्) प्रज्ञा को (ददत्) दीजिए और उसके दान से हमारी (उदव) रक्षा कीजिए, हे (भग) आप (गोभिः) गाय आदि और

(अश्वैः) घोड़े आदि उत्तम पशुओं के योग से राज्यश्री को (नः) हमारे लिए (प्रजनय) प्रकट कीजिए, हे (भग) आपकी कृपा से हम लोग (नृभिः) उत्तम मनुष्यों से (नृवन्तः) बहुत वीर मनुष्य वाले (प्र, स्याम) अच्छे प्रकार होवें।

उतेदानीं भगवन्तः स्यामोत प्र पित्व उत मध्ये अह्नाम्।
उतोदिता मघवन्त्सूर्यस्य वयं देवानां सुमतौ स्याम ।।४।।

ऋग्वेद ७।४१।४

हे भगवन्! आपकी कृपा (उत) और अपने पुरुषार्थ से हम लोग (इदानीम्) इस समय (प्रपित्वे) प्रकर्षता उत्तमता की प्राप्ति में (उत) और (अन्हाम्) इन दिनों के (मध्ये) मध्य में (भगवन्तः) ऐश्वर्ययुक्त और शक्तिमान् (स्याम) होवें (उत) और हे (मघवन्) परमपूजित असंख्य धन देने हारे (सूर्यस्य) सूर्यलोक के (उदिता) उदय में (देवानाम्) पूर्ण विद्वान् धार्मिक आप लोगों की (सुमतौ) अच्छी उत्तम प्रज्ञा (उत) और सुमति में (वयम्) हम लोग (स्याम) सदा प्रवृत्त रहें।

भग एव भगवाँ अस्तु देवास्तेन वयं भगवन्तः स्याम।
तं त्वा भग सर्व इज्जोहवीति स नो भग पुरएता भवेह ।।५।।

ऋग्वेद ७।४१।५

हे (भगः) सकलैश्वर्यसम्पन्न जगदीश्वर! जिससे (तम्) उस (त्वा) आपकी (सर्वः) सब सज्जन (इज्जोहवीति) निश्चय करके प्रशंसा करते हैं (सः) सो आप हे (भग) ऐश्वर्यप्रद! (इह) इस संसार और (नः) हमारे गृहाश्रम में (पुरएता) अग्रगामी और आगे-आगे सत्य कर्मों में बढ़ाने हारे (भव) हूजिये और जिससे (भगएव) सम्पूर्ण ऐश्वर्ययुक्त और समस्त ऐश्वर्य के दाता होने से आप ही हमारे (भगवान्) पूजनीय देव (अस्तु) हूजिये। (तेन) उसी हेतु से (देवाः वयम्) हम विद्वान् लोग (भगवन्तः) सकलैश्वर्य सम्पन्न होके सब संसार के उपकार में तन-मन-धन से प्रवृत्त (स्याम) होवें।

प्रारम्भिक यज्ञ

आचमन मन्त्र

मन की स्थिरता के लिये, बायें हाथ से जल-पात्र उठाकर दायें हाथ की अञ्जलि में जल लेकर प्रथम निम्न तीन मन्त्रों से तीन आचमन करें।

ओ३म् अमृतोपस्तरणमसि स्वाहा ॥१॥ तैत्तिरीयारण्य–१।३२

हे भगवन् ! यह अमृतमय सुखप्रद जल सर्व प्राणियों का आश्रयभूत है। अर्थात् तू मेरे नीचे का बिछौना है। यह मैं यथार्थ रूप से समझ रहा हूँ।

ओ३म् अमृतापिधानमसि स्वाहा ॥२॥ तैत्ति० १।३३

हे अमर परब्रह्म ! तू सर्व जगत् का धारण करने वाला है। अर्थात् तू मेरे ऊपर का ओढ़ना है। यह मैं ठीक-ठीक समझ रहा हूँ।

ओ३म् सत्यं यशः श्रीर्मयि श्रीः श्रयतां स्वाहा ॥३॥ तैत्ति०१।३४

हे परमेश्वर ! परम पुरुषार्थ से अर्जित सत्यकर्म, यश, सम्पत्ति, स्वस्थता और ऐश्वर्य आदि मुझ में विराजमान हो।

अंग स्पर्श

समस्त अंगों की पवित्रता के लिए निम्न मन्त्रों से बायें हाथ की अंजलि में जल लेकर दायें हाथ के बीच की दो उंगलियों से बायें हाथ की अञ्जलि में से जल लेकर प्रथम दायें पश्चात् बायें अंगों पर स्पर्श करें।

ओ३म् वाङ्म आस्येऽस्तु। (मुख को स्पर्श करें)

हे प्रभो ! मेरे मुख में सत्य बोलने की शक्ति बनी रहे।

ओ३म् नसोर्मे प्राणोऽस्तु। (दोनों नयनों को स्पर्श करें)

हे परमेश्वर ! मेरे दोनों नथनों में प्राणदायक श्वासप्रश्वास की शक्ति बनी रहे।

ओ३म् अक्ष्णोर्मे चक्षुस्तु। (दोनों आँखों को स्पर्श करें)

हे परमेश्वर ! मेरी दोनों आँखों की दिव्य दृष्टि बनी रहे।

ओ३म् कर्णयोर्मे श्रोत्रमस्तु। (दोनों कानों को स्पर्श करें)

हे परमेश्वर ! मेरे दोनों कानों में श्रवण शक्ति बनी रहे।

ओ३म् बाह्वोर्मे बलमस्तु। (दोनों भुजाओं को स्पर्श करें)

हे परमेश्वर ! मेरी भुजाओं में बल वना रहे।

ओ३म् ऊर्वोर्म ऽओजोऽस्तु। (दोनों जंघाओं को स्पर्श करें।

हे परमेश्वर ! मेरी दोनों जंघाओं में सामर्थ्य बनी रहे।

ओ३म् अरिष्टानि मेऽङ्गानि तनूस्तन्वा मे सह सन्तु।

(दोनों हाथ में जल लेकर सारे शरीर पर छिड़कें।

हे परमेश्वर ! मेरे सब अंग रोग रहित हों और समस्त शरीर स्वस्थ होकर विस्तार को प्राप्त करता रहे।

ईश्वरस्तुति-प्रार्थनोपासना

ओं विश्वानिदेव सवितर्दुरितानि परा सुव ।
यद्भद्रं तन्न आ सुव ।।

यजुर्वेद ३०।३

हे (सवितः) सकल जगत् के उत्पत्तिकर्त्ता, समग्र ऐश्वर्य-युक्त (देव) शुद्धस्वरूप, सब सुखों के दाता परमेश्वर ! आप कृपा करके (नः) हमारे (विश्वानि) सम्पूर्ण (दुरितानि) दुर्गुण, दुर्व्यसन और दुःखों को (परा सुव) दूर कर दीजिए (यद्) जो (भद्रम्) कल्याणकारक गुण, कर्म, स्वभाव और पदार्थ हैं, (तत्) वह सब हमको (आ सुव) प्राप्त कराइये।

ओं हिरण्यगर्भः समवर्तताग्रे भूतस्य जातः पतिरेक आसीत् ।
स दाधार पृथिवीं द्यामुतेमां कस्मै देवाय हविषा विधेम ।।

यजुर्वेद १३।४

जो (हिरण्यगर्भः) स्वप्रकाशस्वरूप और जिसने प्रकाश करनेहारे सूर्य चन्द्रमादि पदार्थ उत्पन्न करके धारण किये हैं जो (भूतस्य) उत्पन्न हुए सम्पूर्ण जगत् का (जातः) प्रसिद्ध (पतिः) स्वामी (एकः) एक ही चेतनस्वरूप (आसीत्) था जो (अग्रे) सब जगत् के उत्पन्न होने से पूर्व (समवर्त्तत) वर्तमान था (सः) सो (इमाम्) इस (पृथिवीम्) भूमि (उत) और (द्याम्) सूर्यादि को (दाधार) धारण कर रहा है हम लोग उस (कस्मै) सुख स्वरूप (देवाय) शुद्ध परमात्मा के लिए (हविषा) ग्रहण करने योग्य योगाभ्यास और अति प्रेम से (विधेम) विशेष भक्ति किया करें।

ओं य आत्मदा बलदा यस्य विश्व उपासते प्रशिषं यस्य देवाः ।
यस्य च्छायाऽमृतं यस्य मृत्युः कस्मै देवाय हविषा विधेम ।।

यजुर्वेद २५।१३

(यः) जो (आत्मदाः) आत्मज्ञान का दाता (बलदाः) शरीर, आत्मा और समाज के बल का देनेहारा (यस्य) जिसकी (विश्वे) सब (देवाः) विद्वान् लोग (उपासते) उपासना करते हैं और (यस्य) जिसका (प्रशिषम्) प्रत्यक्ष सत्यस्वरूप शासन और न्याय अर्थात् शिक्षा को मानते हैं (यस्य)

जिसका (छाया) आश्रय ही (अमृतम्) मोक्ष सुखदायक है (यस्य) जिसका न मानना अर्थात् भक्ति न करना ही (मृत्युः) मृत्यु आदि दुःख का हेतु है हम लोग उस (कस्मै) सुखस्वरूप (देवाय) सकल ज्ञान के देनेहारे परमात्मा की प्राप्ति के लिए (हविषा) आत्मा और अन्तःकरण से (विधेम) भक्ति अर्थात् उसी की आज्ञा पालन में तत्पर रहें।

ओं यः प्राणतो निमिषतो महित्वैक इन्द्राजा जगतो बभूव ।
य ईशे अस्य द्विपदश्चतुष्पदः कस्मै देवाय हविषा विधेम ।।

यजुर्वेद २३।३

(यः) जो (प्राणतः) प्राण वाले और (निमिषतः) अप्राणिरूप (जगतः) जगत् का (महित्वा) अपने अनन्त महिमा से (एक, इत्) एक ही (राजा) विराजमान राजा (बभूव) है (यः) जो (अस्य) इस (द्विपदः) मनुष्यादि और (चतुष्पदः) गौ आदि प्राणियों के शरीर की (ईशे) रचना करता है हम उस (कस्मै) सुखस्वरूप (देवाय) सकलैश्वर्य के देनेहारे परमात्मा के लिए (हविषा) अपनी सकल उत्तम सामग्री के (विधेम) विशेष भक्ति करें।

ओं येन द्यौरुग्रा पृथिवी च दृढा येन स्वः स्तभितं येन नाकः ।
यो अन्तरिक्षे रजसो विमानः कस्मै देवाय हविषा विधेम ।।

यजुर्वेद ३२।६

(येन) जिस परमात्मा ने (उग्रा) तीक्ष्ण स्वभाव वाले (द्यौः) सूर्य आदि (च) और (पृथिवी) भूमि का (दृढा) धारण (येन) जिस जगदीश्वर ने (स्वः) सुख को (स्तभितम्) धारण और (येन) जिस ईश्वर ने (नाकः) दुःख रहित मोक्ष को धारण किया है (यः) जो (अन्तरिक्षे) आकाश में (रजसः) सब लोकलोकान्तरों को (विमानः) विशेष मानयुक्त अर्थात् जैसे आकाश में पक्षी उड़ते हैं वैसे सब लोकों का निर्माण करता और भ्रमण कराता है हम लोग उस (कस्मै) सुखदायक (देवाय) कामना करने के योग्य परब्रह्म की प्राप्ति के लिए (हविषा) सब सामर्थ्य से (विधेम) विशेष भक्ति करें।

ओं प्रजापते न त्वदेतान्यन्यो विश्वा जातानि परि ता बभूव ।
यत्कामास्ते जुहुमतन्नो अस्तु वयं स्याम पतयो रयीणाम् ॥

ऋग्वेद १०।१२१।१०

हे (प्रजापते) सब प्रजा के स्वामी परमात्मा (त्वत्) आप से (अन्यः) भिन्न दूसरा कोई (ता) उन (एतानि) इन (विश्वा) सब (जातानि) उत्पन्न हुए जड़ चेतनादिकों को (न) नहीं (परि, बभूव) तिरस्कार करता है अर्थात् आप सर्वोपरि हैं (यत्कामाः) जिस-जिस पदार्थ की कामना वाले हम लोग (ते) आपका (जुहुमः) आश्रय लेवें और वाञ्छा करें (तत्) उस-उस की कामना (नः) हमारी सिद्ध (अस्तु) होवे जिससे (वयम्) हम लोग (रयीणाम्) धनैश्वर्यों के (पतयः) स्वामी (स्याम) होवें ।

ओं स नो बन्धुर्जनिता स विधाता धामानि वेद भुवनानि विश्वा ।
यत्र देवा अमृतमानशानास्तृतीये धामन्नध्यैरयन्त ॥

यजुर्वेद ३२।१०

हे मनुष्यो (सः) वह परमात्मा (नः) अपने लोगों को (बन्धुः) भ्राता के समान सुखदायक (जनिता) सकल जगत् का उत्पादक (सः) वह (विधाता) सब कामों का पूर्ण करने हारा (विश्वा) सम्पूर्ण (भुवनानि) लोक मात्र और (धामानि) नाम, स्थान जन्मों को (वेद) जानता है और (यत्र) जिस (तृतीये) सांसारिक सुख दुःख से रहित नित्यानन्द युक्त (धामन्) मोक्ष स्वरूप धारण करने हारे परमात्मा में (अमृतम्) मोक्ष को (आनशानाः) प्राप्त होके (देवः) विद्वान् लोग (अध्यैरयन्त) स्वेच्छा पूर्वक विचरते हैं वही परमात्मा [अपना गुरु, आचार्य, राजा और न्यायाधीश है अपने लोग मिलके सदा उसकी भक्ति किया करें ।

ओं अग्ने नय सुपथा राये अस्मान् विश्वानिदेव वयुनानि विद्वान् ।
युयोध्यस्मज्जुहुराणमेनो भूयिष्ठान्ते नम उक्तिं विधेम ॥

यजुर्वेद ४०।१६

हे (अग्ने) स्वप्रकाश ज्ञानस्वरूप सब जगत् के प्रकाश करने हारे (देव) सकल सुखदाता परमेश्वर आप जिससे (विद्वान्) सम्पूर्ण विद्यायुक्त हैं कृपा करके (अस्मान्) हम लोगों को (राये) विज्ञान वा राज्यादि

ऐश्वर्य की प्राप्ति के लिए (सुपथा) अच्छे धर्मयुक्त आप्त लोगों के मार्ग से (विश्वानि) सम्पूर्ण (वयुनानि) प्रज्ञान और उत्तम कर्म (नय) प्राप्त कराइये और (अस्मत्) हमसे (जुहुराणम्) कुटिलतायुक्त (एनः) पापरूप कर्म को (युयोधि) दूर कीजिए इस कारण हम लोग (ते) आपकी (भूयिष्ठाम्) बहुत प्रकार की स्तुति रूप (नम उक्तिम्) नम्रतापूर्वक प्रशंसा (विधेम) सदा किया करें और सर्वदा आनन्द में रहें।

अग्न्याधान

इस मन्त्र का उच्चारण करके प्रथम से ही जो, प्रज्वलित घृत के दीपक से कपूर को जलायें।

ओ३म् भूर्भुवः स्वः ॥ गोभिलय गृ० १।१।११

इस मन्त्र से वेदी के बीच में अग्नि को धर उस पर छोटी छोटी समिधायें लगायें।

ओं भूर्भुवः स्वर्द्यौरिव भूम्ना पृथिवीव वरिम्णा।
तस्यास्ते पृथिवी देवयजनि पृष्ठेऽग्निमन्नादमन्नाद्यायादधे ॥

यजुर्वेद ३।५

(भूः) यह पृथ्वी लोक (भुवः) अन्तरिक्ष और (स्वः) यह द्यौलोक और (भूः) ब्राह्मण (भुवः) क्षत्रिय (स्वः) वैश्य और (भूः) आत्मा या स्वयं पुरुष (भुवः) प्रजा पुत्र आदि (स्वः) पशुगण इनके हित के लिये मैं (भूम्ना) महान् ऐश्वर्य और सामर्थ्य से और अधिक प्रजाजनों से उसी प्रकार से युक्त हो जाऊँ, जैसे (द्यौः) यह महान् आकाश नक्षत्रों से युक्त है और (पृथिवी इव) पृथिवी जैसे विशाल है, सबको आश्रय देती है, वैसे ही (वरिम्णा) विशालता से मैं भी युक्त होऊँ। हे (पृथिवि) पृथिवी! हे (देव-यजनि) विद्वानों के यज्ञ करने के आश्रयभूत! (ते तस्याः) उस तेरी (पृष्ठे) पृष्ठ पर (अन्नादम्) समस्त अन्नों के भोगने वाले (अग्निम्) अग्नि रूप राजा अथवा यज्ञ में अग्नि को (आदधे) स्थापित करता हूँ।

अग्नि प्रदीप्त करना

ओं उद्बुध्यस्वाग्ने प्रतिजागृहि त्वमिष्टापूर्त्ते सꣳ सृजेथामयं च।
अस्मिन्त्सधस्थेऽअध्युत्तरस्मिन् विश्वे देवा यजमानश्च सीदत ॥

यजुर्वेद १५।५४

हे (अग्ने) प्रजापालक राजन्! तू (उद्बुध्यस्व) उठ, जाग, उत्कृष्ट धर्माचरण को जान। (त्वम्) तू (प्रति जागृहि) प्रत्येक कार्य के लिए

जागृत रहे, (त्वम् अयम्) तू और यह प्रजाजन दोनों मिलकर (इष्टापूर्ते) अभिलषित सुख देने वाले, उत्तम कर्म दान, यज्ञ तप आदि और 'पूर्त्त' शरीर और गृह को पूर्ण करने वाले ब्रह्मचर्य और कृषि कूप आदि इनका (संसृजेथाम्) पालन करो और (अस्मिन्) इस (उत्तरस्मिन्) सर्वोत्कृष्ट (सधस्थे) एकत्र होने के समान, गृहस्थ और राष्ट्र में (विश्वेदेवः) समस्त देवगण और राजा लोग, (यजमानः च) यजमान, गृहपति (अधिसीदत) विराजें।

समिदाधान

आठ-आठ अंगुल लम्बी तीन समिधायें घृत में डुबोकर एक-एक मन्त्र से एक-एक समिधा अग्नि में चढ़ावें।

ओं अयं त इध्म आत्मा जातवेदस्तेनेध्यस्व वर्धस्व चेद्ध वर्धय। चास्मान् प्रजया पशुभिर्ब्रह्मवर्चसेनान्नाद्येन समेधय स्वाहा। इदमग्नये जातवेदसे इदं न मम॥

पहली समिधा आश्व गृह्य १।१०।१२

हे सब पदार्थों में विद्यमान परमेश्वर! यह मेरा आत्मा तेरे लिये ईंधन रूप है। इससे मुझमें तू प्रकाशित हो और यह अवश्य ही बढ़े। हमको तू बढ़ा और १. पुत्र-पौत्र सेवक आदि प्रजा से २. गौ आदि पशुओं से ३. वेद विद्या के तेज से और ४. भोग्य यथार्थ सुख सामग्री, घृत, दुग्ध आदि ५. अन्न से समृद्ध कर। यह सुन्दर आहुति है। यह सम्पूर्ण पदार्थों में विद्यमान ज्ञानस्वरूप परमेश्वर के लिए है। यह मेरे लिये नहीं है।

ओं समिधाग्निन्दुवस्यत घृतैर्बोधयतातिथिम्।
आस्मिन्हव्या जुहोतन॥

यजुर्वेद ३/१

हे (समिधा) प्रदीप्त करने के साधन काष्ठ से जैसे अग्नि को तृप्त किया जाता है वैसे ही (सम् इधा) तेजस्वी साधन से (अग्निम्) आत्मा, गुरु, परमेश्वर को (दुवस्यत) उपासना करो और (अतिथिम्) अतिथि के समान पूजनीय उस अग्नि को (घृतैः) जैसे क्षरणशील, पुष्टिकारक घृत आदि पदार्थों से जगाया जाता है। वैसे ही उद्दीपन करने वाले साधनों के अनुष्ठानों से उसको (बोधयत) जगाओ और (अस्मिन्) उसमें (हव्या) सब पदार्थों, ज्ञानों, स्तुतियों और कर्मफलों को आहुति के रूप में (आ जुहोतन) निरन्तर त्याग करो।

ओं सुसमिद्धाय शोचिषे घृतं तीव्रं जुहोतन।
अग्नये जातवेदसे स्वाहा ॥ इदमग्नये जातवेद से। इदन्न मम।

इन दोनों मन्त्रों से दूसरी समिधा यजुर्वेद ३।२

(सु-सम्-इद्धाय) अच्छो प्रकार प्रदीप्त (शोचिषे) प्रकाशमान अन्यों के दोष निवारण में समर्थ (जात-वेदसे) प्रत्येक पदार्थ में व्यापक, प्रज्ञावान, (अग्नये) परमेश्वर एवं विद्वान को (तीव्रम्) दोष निवारक (घृतम्) आज्य, जल और उपायन (आ जुहोतन) सब प्रकार से प्रदान करो।

ओं तन्त्वा समिद्भिरङ्गिरो घृतेन वर्द्धयामसि।
बृहच्छोचा यविष्ठ्य स्वाहा ॥ इदमग्नयेऽङ्गिरसे। इदं न मम ॥

इस मन्त्र से तीसरी समिधा। यजुर्वेद ३।३

हे (अंगिरः)! ज्ञानवान्, (त्वा) तुझे (तम्) उस परमेश्वर को (समिद्भिः) प्रकाशित होने के साधन योग आदि द्वारा और (घृतेन) आत्मा के प्रकाशक तप द्वारा (वर्धयामसि) बढ़ाते हैं। हे (यविष्ठ्य) सदा सर्वशक्तिमान ! तू (बृहत्) महान् होकर (शोच) खूब प्रकाशित हो।

पंच घृताहुति

इस मन्त्र को पाँच बार बोलकर एक-एक करके पाँच घृत आहुति देनी।

ओं अयं त इध्म आत्मा जातवेदस्तेनेध्यस्व वर्धस्व चेद्धवर्धय चास्मान् प्रजया पशुभिर्ब्रह्मवर्चसेनान्नाद्येन समेधय स्वाहा ॥ इदमग्नये जातवेदसे इदं न मम ॥

अर्थ पीछे किया जा चुका है।

जल प्रसेचन

दायें हाथ की अञ्जलि में जल लेके वेदी के चारों ओर जल छोड़ना।

ओं अदितेऽनुमन्यस्व ॥ गोभि० गृ० १।३।१ (इससे पूर्व दिशा में)

हे अखण्ड परमेश्वर! आप प्रसन्न होकर हमें अनुकूल मति दीजिये।

ओं अनुमतेऽनुमन्यस्व ।। गोभि० गृ० १।३।२ (इससे पश्चिम दिशा में)

हे हितकारी बुद्धि वाले ईश्वर ! आप हमें हितकारिणी मति दीजिये ।

ओं सरस्वत्यनुमन्यस्व ।। गोभि० गृ० १।३।३ (इससे उत्तर दिशा में)

हे सब विद्याओं के भण्डार जगदीश्वर ! आप प्रसन्न होकर हमें प्रसन्नता दीजिए ।

ओं देव सवितः प्र सुव यज्ञं प्र सुव यज्ञपतिं भगाय ।
दिव्यो गन्धर्वः केतपूः केतं नः पुनातु वाचस्पतिर्वाचं नःस्वदतु ।।
(इससे यज्ञ कुण्ड के चारों ओर) यजुर्वेद ३०।१

हे (सवितः) जगत् के उत्पादक ! हे (देव) परमेश्वर ! (यज्ञम्) परस्पर संगति से होने वाले कार्य का (प्रसुव) भली प्रकार संचालन कर और (भगाय) ऐश्वर्य की वृद्धि के लिए (यज्ञपतिं) यज्ञ पालक राजा का (प्रसुव) उत्तम रीति से अभिषेक कर । (दिव्यः) ज्ञान और प्रकाशक गुणों से युक्त होकर (गन्धर्वः) गौ, वाणी और पृथिवी का धारण करने वाला परमेश्वर, विद्वान् और राजा (केतपूः) अपने ज्ञान से सब को पवित्र करने वाला होकर (नः केतुम्) हमारे ज्ञान और चित्त को (पुनातु) पवित्र करे और वह (वाचस्पतिः) वाणियों का स्वामी (नः) हमारी (वाचम्) वाणी को (स्वदतु) मधुर करे ।

आघारावाज्याहुति

इससे घृत की आहुति उत्तर भाग प्रज्वलित अग्नि में दें ।

ओं अग्नये स्वाहा ।। इदमग्नये इदं न मम ।। यजुर्वेद १०।५

यह आहुति अग्निस्वरूप परमेश्वर के लिए है । यह मेरी नहीं ।

यह आहुति यज्ञ कुण्ड के उत्तरी भाग में इस कारण दी जाती है कि हमारी आत्मा, व्यवहार और चरित्र अर्थात् आचरण दिन प्रति दिन उत्तरोत्तर वृद्धि को प्राप्त होता रहे ।

इससे घृत की आहुति दक्षिण भाग प्रज्वलित अग्नि में दें।

ओं सोमाय स्वाहा ।। इदं सोमाय इदं न मम ।।

यजुर्वेद १०।५

यह आहुति सोम स्वरूप परमेश्वर के लिये है। यह मेरी नहीं। सोम जल है। चन्द्रमा है, गृहस्थ में स्त्री है। इनका स्थान दक्षिण भाग में है। दक्षिण दिशा जल की दिशा है।

आज्यभागाहुति

इन दोनों से घृत की आहुति प्रज्वलित अग्नि के मध्य में दें।

ओं प्रजापतये स्वाहा ।। इदं प्रजापतये इदं न मम ।।

यजुर्वेद २२।३२

यह आहुति प्रजापति परमेश्वर के लिये है। यह मेरी नहीं।

ओं इन्द्राय स्वाहा ।। इदं इन्द्राय इदं न मम ।।

यजुर्वेद २२।६

यह आहुति सर्वशक्ति सम्पन्न परमेश्वर के लिये है। यह मेरी नहीं।

प्रजापति और इन्द्र कुछ-कुछ समानार्थक हैं। राजा, गृहस्थी, ईश्वर, सूर्य प्रजापति हैं। गृहस्थी धनोपार्जन करके लाता है, सन्तान का पालन करता है और गृह कोष में भी संचित करता है। गृह कोष मध्य सुरक्षित स्थान में होता है। इन्द्र स्वरूप बलवान, वीर्यवान गृहस्थी सन्तान के लिये स्त्री के गर्भ में वीर्याधान करता है। इसी कारण प्रतीक रूप में यह दो आहुतियाँ मध्य में दी जाती हैं।

महाव्याहृत्याहुति

यह चार घृत की आहुतियाँ किस प्रकार दी जानी चाहियें।

'भूः' का अर्थ है पृथिवी, पृथ्वी का देवता है अग्नि। 'भुवः' का अर्थ है अन्तरिक्ष, अन्तरिक्ष का देवता है वायु। 'स्वः' का अर्थ है द्यौ, द्यौ का देवता है सूर्य–आदित्य। पृथिवी नीचा लोक है, हमारे शरीर का निचला भाग 'भूः' लोक है। अन्तरिक्ष मध्य स्थानी लोक है, शरीर में नाभि से कण्ठ तक 'भुवः' लोक है। द्यौ ऊँचा लोक है, शरीर में मस्तिष्क 'स्वः' लोक है। इनकी प्रसन्नता के लिये तथा वचन और कर्म में अनुकूलता के लिये पहली

आहुति स्रुवा को नाभि भाग तक रख कर दी जाती है । दूसरी आहुति छाती भाग तक, तीसरी आहुति मस्तिष्क तक रखकर दी जाती है । चौथी आहुति 'भूः' से 'भुवः' को होती हुई 'स्वः' लोक मस्तिष्क अर्थात् शीश से ऊपर तक स्रुवा को ले जाकर दी जाती है । यह महाव्याहृत्याहुति जहाँ कहीं दी जायें उन्हें इसी क्रम से देना चाहिये ।

ओं भूरग्नये स्वाहा ।। इदमग्नये इदं न मम ।।

यह अति सुन्दर कथन है कि यह आहुति प्राणाधार प्रकाश स्वरूप परमात्मा के लिये है । यह मेरे लिये नहीं ।

ओं भुवर्वायवे स्वाहा ।। इदं वायवे इदं न मम ।।

यह सुन्दर आहुति दुःख विनाशक प्रभु के लिये है । यह मेरे लिये नहीं ।

ओं स्वरादित्याय स्वाहा ।। इदमादित्याय इदं न मम ।।

यह सुखप्रद आहुति सुखस्वरूप प्रकाश के पुञ्ज भगवान् के लिये है । यह मेरी नहीं ।

ओं भूर्भवः स्वरग्निवाय्वादित्येभ्यः स्वाहा ।।
इदमग्निवाय्वादित्येभ्यः इदं न मम ।।

यह आहुति प्राणाधार प्रकाशस्वरूप, दुःख विनाशक, सुख-स्वरूप प्रकाश पुञ्ज, परमात्मा के लिये है । यह मेरे लिये नहीं ।

स्विष्टकृत् आहुति

यह आहुति घृत, भात अथवा शुद्ध स्वादिष्ट मिष्ठान्न की दें ।

ओं यदस्य कर्मणोऽत्यरीरिचं, यद्वा न्यूनमिहाकरम् ।
अग्निष्टत्स्विष्टकृद्विद्यात् सर्वं स्विष्टं सुहुतं करोतु मे ।
अग्नये स्विष्टकृते सुहुतहुते सर्वप्रायश्चित्ताहुतीनां
कामानां समर्द्धयित्रे सर्वान्नः कामान्त्सवसमर्द्धय स्वाहा ।।
इदमग्न्ये स्विष्टकृते । इदं न मम ।। शतपथ का० १४।६।४।२४

(अस्य कर्मणः) इस कर्म के सम्बन्ध में (यत्) जो (अति-अरीरिचं) विधि से अधिक किया गया हो (यव्दा) अथवा (इह न्यूनं अकरम्) इसमें

कुछ न्यूनता रह गई हो (सुइष्टकृत् अग्निः) शुभ इच्छाओं को पूर्ण करने वाले प्रभु (सर्वं सु इष्टं विद्यात्) जो मेरी सब शुभ इच्छाओं को जानता है (तत्) उस कर्म को मेरे लिए (सुहुतम् करोतु) सफल कर देवे। (सु-इष्ट-कृते) शुभ इच्छाओं को पूर्ण करने वाले (सुहुतहुते) आहुतियों यज्ञों को सुहुत सफल करने वाले और (सर्वप्रायश्चित्ताहुतीनां) सब प्रायश्चित आहुतियों को (कामानाम्) और सब कामनाओं को सफल करने वाले (समर्द्धय स्वाहा) प्रभु के लिए मैं यह आहुति दे रहा हूँ। हे प्रभुदेव ! आप हमारी इच्छाओं को पूर्ण कीजिए।

प्राजापत्याहुति

इसे मन में बोल कर मौन घृत की आहुति दें।

ओं प्रजापतये स्वाहा ।। इदं प्रजापतये इदं न मम ।।

आज्याहुति

घृत की आहुति दें।

ओं भूर्भुवः स्वः। अग्न आयूंषि पवस आ सुवोर्जमिषं च नः।
आरे बाधस्व दुच्छुनाम् स्वाहा ।।
इदमग्नये पवमानाय इदं न मम ।। ऋग्वेद ९।६६।१९

हे (भूः) प्राणाधार (भुवः) दुःखविनाशक (स्वः) सुखस्वरूप प्रभो ! (अग्ने) तेजस्विन ! तू (नः आयूंषि) हमारे आयुओं की (पवसे) रक्षा कर। (नः) हमें (ऊर्जम् इषं च आसुव) बल और अन्न प्रदान कर।

ओं भूर्भुवः स्वः। अग्निर्ऋषिः पवमानः पाञ्चजन्यः पुरोहितः।
तमीमहे महागयम् स्वाहा ।।२।।
इदमग्नये पवमानाय इदं न मम ।। ऋग्वेद ९।६६।२०

(भूः) प्राणप्रद (भुवः) दुःखहर्ता (स्वः) सुखदाता परमेश्वर ! (अग्निः) अग्नि के समान तेजस्वी, अन्यों को प्रकाश देने वाला, (ऋषिः) मन्त्रार्थों का द्रष्टा, (पवमानः) सबको पवित्र करने वाला, (पाञ्चजन्यः) पाँचों ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य, शूद्र और श्वपच, जनों का हितकारक, (पुरोहितः) सबके समक्ष साक्षिवत् स्थापित है। (तम् महा-गयम्) उस महाप्राण को हम (ईमहे) प्राप्त हों।

ओं भूर्भुवः स्वः । अग्ने पवस्व स्वपा अस्मे वर्चः सुवीर्यम् ।
दधद्रयिं मयि पोषम् स्वाहा ॥३॥
इदमग्नये पवमानाय । इदं न मम ॥ ऋग्वेद ९।६६।२१

(भूर्भुवः स्वः) पूर्ववत् हे (अग्ने) ज्ञानवान् ! तू (सु-अपाः) उत्तम कर्म करने वाला ! (स्वः-पाः) स्वयं वा ऐश्वर्यों का पालक होकर (अस्मे वर्चः) हमें तेज और (सुवीर्यं) वीर्य प्रदान कर और तू (मयि रयिम् पोषम् दधत्) मुझमें धन और शरीर की पुष्टि को धारण करा।

ओं भूर्भुवःस्वः। प्रजापते न त्वदेतान्यन्यो विश्वा जातानि परिताबभूव।
यत्कामास्ते जुहुमस्तन्नो अस्तु वयं स्याम पतयो रयीणाम् ॥४॥
इदं प्रजापतये । इदं न मम ॥ ऋग्वेद १०।१२१।१०

(भूर्भुवः स्वः) पूर्ववत् हे (प्रजापते) प्रजाओं के पालक ! (त्वत् अन्यः) तुझसे भिन्न (एतानि ता) इन उन अर्थात् पास और दूर के या अतीत और वर्तमान के (विश्वा जातानि) समस्त उत्पन्न पदार्थों (न परि बभूव) पर तुझसे दूसरा कोई अध्यक्ष नहीं है। हे भगवन् ! (यत्-कामाः ते जुहुमः) जिस-जिस पदार्थ की अभिलाषा वाले होकर हम तेरी उपासना करें (तत् नः अस्तु) हमारी वह अभिलाषापूर्ण हो, और (वयं) हम (रयीणां) ऐश्वर्यों के (पतयः) स्वामी (स्याम) हों।

अष्टाज्याहुति

ओं त्वं नो अग्ने वरुणस्य विद्वान्देवस्य हेडोऽवयासिसीष्ठाः ।
यजिष्ठो वह्नितमः शोशुचानो विश्वा द्वेषांसि प्र मुमुग्ध्यस्मत् स्वाहा
इदमग्निवरुणाभ्याम् । इदं न मम ॥१॥ ऋग्वेद ४।१।४

हे (अग्ने) अग्रणी नायक ! हे ज्ञानवान् पुरुष ! तू (नः विद्वान्) हममें से विद्वान है। तू (देवस्य) ज्ञान और ऐश्वर्य के देने वाले (वरुणस्य) सर्वश्रेष्ठ, पापादि निवारक, आचार्य, राजा और प्रभु परमेश्वर के सम्बन्ध में हमारे (हेडः) क्रोध और अनादर के भाव को (अव यासिसीष्ठाः) दूर कर। तू (यजिष्ठः) सबसे अधिक पूज्य, (वह्नितमः) कार्य का भार सहने में सबसे श्रेष्ठ, (शोशुचानः) निरन्तर प्रकाशमान, तेजस्वी होकर (अस्मत्) हम से (विश्वा द्वेषांसि) सब प्रकार के द्वेष के कार्यों, भावों को (प्र मुमुग्धि) दूर कर।

ओं स त्वं नो अग्नेऽवमो भवोती नेदिष्ठो अस्या उषसो व्युष्टौ ।
अव यक्ष्व नो वरुणं रराणो वीहि मृळीकं सुहवो न एधि स्वाहा ।।
इदमग्निवरुणाभ्याम् इदं न मम ।।२।। ऋग्वेद ४।१।५

हे (अग्ने) ज्ञानवान् ! तेजस्विन् ! प्रभो ! (सः) वह (त्वं) तू (नः) हमारे बीच (ऊती) रक्षण, ज्ञान, पालन आदि कर्मों द्वारा (अवमः) हमारे अति समीप और (अस्याः उषसः) इस प्रभात वेला के समान कमनीय, पाप नाशक वेला के (वि उष्टौ) विशेष रूप से प्रकट होने पर तू हमारे (नेदिष्ठः) अति समीपतम (भव) हो। तू (नः) हमें (वरुणं) वरण करने योग्य श्रेष्ठ पदार्थ, उत्तम पुरुष और पाप निवारक बल (रराणः) प्रदान करता हुआ (नः) हमें (अव यक्ष्व) अपने अधीन सत्संग और मैत्रीभाव से जोड़े रख। (नः) हमारे (मृडीकं) सुखकारी ज्ञान प्रकाश को (वीहि) प्रकाशित कर। (नः) हमारे लिए (सुहवः) उत्तम पदार्थों का दाता, सुखपूर्वक बुलाने योग्य, सुगृहीत नाम वाला, सुख से पुकारने योग्य, शरण (एधि) हो।

ओं इमं मे वरुण श्रुधी हवमद्या च मृळय ।
त्वामवस्युरा चके स्वाहा ।। इदं वरुणाय इदं न मम ।।३।।

ऋग्वेद १०।२५।१९

हे (वरुण) सर्वश्रेष्ठ परमेश्वर ! राजन् ! (मे) मेरे (इमं) इस (हवम्) स्तुतिवचन, पुकार, स्मरण को (अद्य) आज (श्रुधि) श्रवण कर (च) और (अद्य) आज दिन, अब सदा (त्वं) तू ही मुझे (मृडय) सुखी कर। मैं (अवस्युः) रक्षा और ज्ञान प्राप्त करने का इच्छुक होकर (त्वाम्) तेरी (आचके) स्तुति करता हूँ।

ओं तत्त्वा यामि ब्रह्मणा वन्दमानस्तदा शास्ते यजमानो हविर्भिः ।
अहेळमानो वरुणेह बोध्युरुशंस मा न आयुः प्र मोषीः स्वाहा ।।
इदं वरुणाय इदं न मम ।।४।। ऋग्वेद १।२४।११

हे (वरुण) सब दुःखों के वारक, सबके वरण करने योग्य, एवं सर्वश्रेष्ठ परमेश्वर ! (यजमानः) उपासना करने वाला पुरुष (हविर्भिः) उत्तम स्तुति वचनों से (तत्) उन-उन अभिलाषा योग्य पदार्थों की (आशास्ते) कामना करता है। (तत्) उन-उन पदार्थों की ही मैं भी

(ब्रह्मणा) वेद द्वारा (वन्दमानः) तेरी स्तुति करता हुआ (यामि) तुझसे याचना करता हूँ। हे (उरुशंस) मनुष्यों से स्तुति करने योग्य, अतिस्तुत्य ! तू (अहेडमानः) हमारा अनादर और तिरस्कार न करता हुआ (इह) इस संसार में (बोधि) हमारा अभिप्राय जान, हमें ज्ञान प्रदान कर और (नः) हमारी (आयुः) आयु को (मा) मत (प्रमोषीः) नष्ट कर।

ओं ये ते शतं वरुण ये सहस्त्रं यज्ञियाः पाशा वितता महान्तः।
तेभिर्नो अद्य सवितोत विष्णुर्विश्वे मुञ्चन्तु मरुतः स्वर्काः स्वाहा ॥
इदं वरुणाय सवित्रे विष्णवे विश्वेभ्यो देवेभ्यो मरुद्भ्यः स्वर्केभ्यः इदं न मम ॥५॥

हे भगवन् ! आपके सैकड़ों हजारों यज्ञियपाश अर्थात् वन्धनों के प्रकार सर्वत्र फैले हुए हैं। उन सबसे हमको आप अथवा सब विद्वान् गण छुड़ावें, अर्थात् हम ऐसा कोई निन्दनीय कार्य न करें जिससे हम दण्ड के भागी बनें।

ओं अयाश्चाग्ने ऽस्यनभिशस्तिपाश्च सत्यमित्त्वमयासि।
अया नो यज्ञं वहास्यया नो धेहि भेषज ँ स्वाहा ॥
इदमग्नये अयसे इदं न मम ॥६॥ कात्या० २५।१।११

हे भगवन् ! आप सर्वत्र विद्यमान हो। श्रेष्ठों के पालक हैं। आप हमारे यज्ञ को अन्तिम लक्ष्य तक पहुँचाने वाले हैं। आप हमें उचित निरोगात्मक औषधि आदि प्रदान कीजिये।

ओं उदुत्तमं वरुण पाशमस्मदवाधमं वि मध्यमं श्रथाय।
अथा वयमादित्य व्रते तवानागसो अदितये स्याम स्वाहा ॥
इदं वरुणाया ऽऽदित्याया ऽदितये च। इदं न मम ॥७॥

ऋग्वेद १।२४।१५

हे परमेश्वर ! तू (उत्तमम् पाशम्) उत्तम कोटि के सात्विक बन्धन को (उत् श्रथाय) उत्तम भोगों द्वारा शिथिल करता है और (अधमं पाशं) निकृष्ट, तामस वन्धन को (अव श्रथाय) नीचे की जीव योनियों में भेजकर शिथिल करता है और (मध्यमं पाशं) मध्यम श्रेणी के पाश को (वि श्रथाय) विविध योनियों के भोग से शिथिल करता है।

(अथ) उन सब भोगों के अनन्तर है (आदित्य) शरण में लेने हारे एवं सूर्य के समान प्रकाशक ! (वयम्) हम (तव व्रते) तेरे दिखाये कर्त्तव्य कर्म में चलकर (अदितये) अखण्ड सुख, मोक्ष को प्राप्त करने के लिए (अनागसः) निष्पाप स्वच्छ (स्याम) हो जाते हैं।

ओं भवतन्नः समनसौ सचेतसावरेपसौ मा यज्ञ ँ हि ँ सिष्टं मा यज्ञपतिं जातवेदसौ शिवौ भवतमद्य नः स्वाहा ॥ इदं जातवेदोभ्याम् इदं न मम ॥८॥ यजुर्वेद ५।३

हे स्त्री और पुरुष ! तुम दोनों ! (नः) हममें (सचेतसौ) समान चित्त वाले (अरेपसौ) पाप रहित, (समनसौ) एक समान ज्ञान वा संकल्प विकल्प वाले (भवतम्) होकर रहो। तुम दोनों (यज्ञम्) एक दूसरे के प्रति परस्पर दान को (मा हिंसिष्टम्) विनष्ट मत करो। (यज्ञपतिम्) इस यज्ञ के पालक को भी नष्ट मत करो। (जातवेदसे) धन और ज्ञान से युक्त होकर हे अग्ने (अद्य) आज से (नः) हमारे लिये (शिवौ) सुखकारी (भवतम्) होकर रहो।

प्रातःकाल आहुति मन्त्र

यहाँ से घृत और सामग्री दोनों की आहुतियाँ अन्त तक चलेंगी।

ओं सूर्यो ज्योतिर्ज्योतिः सूर्यः स्वाहा ॥१॥ यजुर्वेद ३।९

(सूर्यः ज्योतिः) सूर्य ज्योति है। (ज्योतिः सूर्यः) ज्योति ही सूर्य है। (स्वाहा) यही उसके महत्व का उत्तम स्वरूप है।

ओं सूर्यो वर्चो ज्योतिर्वर्चः स्वाहा ॥२॥ यजुर्वेद ३।९

(सूर्यः वर्चः ज्योतिः वर्चः) सूर्य तेज है, ज्योति तेज है। (स्वाहा) यही उसका महत्वपूर्ण रूप है।

ओं ज्योतिः सूर्यः सूर्यो ज्योतिः स्वाहा ॥३॥ यजुर्वेद ३।९

(ज्योतिः सूर्यः सूर्यः ज्योतिः स्वाहा) ज्योति सूर्य है और सूर्य ही ज्योति है। यही उसका यथार्थ महत्व है।

ओं सजूर्देवेन सवित्रा सजूरुषसेन्द्रवत्या
जुषाणः सूर्यो वेतु स्वाहा ।।४।। यजुर्वेद ३।१०

(देवेन) सर्व प्रकाशक (सवित्रा) सर्वोत्पादक परमेश्वर के बल से सूर्य (सजूः) सर्वत्र समान भाव से व्याप्त होता है और वही (इन्द्रवत्या) प्रकाशमय (उषसा) उषा या प्रभात के साथ (सजूः) समान भाव से व्याप्त होता है, उसी प्रकार (सूर्यः) सर्वप्रेरक परमेश्वर सबको (जुषाणः) प्रेम करता हुआ (स्वाहा) अपनी महान् शक्ति से सर्वत्र (वेतु) व्यापक है ।

सायंकाल आहुति मन्त्र

ओं अग्निर्ज्योतिर्ज्योतिरग्निः स्वाहा ।।१।। यजुर्वेद ३।९

(अग्निः ज्योति) अग्नि ज्योतिः स्वरूप है और (ज्योतिः अग्निः) समस्त ज्योति अग्निरूप है। (स्वाहा) यह ज्योति-स्वरूपता ही अग्नि की महिमा का प्रत्यक्ष वर्णन है।

ओं अग्निर्वर्चो ज्योतिर्वर्चः स्वाहा ।।२।। यजुर्वेद ३।९

इस देह में (अग्निः वर्चः) अग्नि ही तेज है, (ज्योतिर्वर्चः) ज्योति ही तेज है। (स्वाहा) यही उसका उत्कृष्ट रूप है।

इसे मन में बोलकर मौन आहुति दें।

ओं अग्निर्ज्योतिर्ज्योतिरग्निः स्वाहा ।।३।।

ज्योति अग्नि है और अग्नि ही ज्योति है। यही उसका यथार्थ महत्व है ।

ओं सजूर्देवेन सवित्रा सजू रात्र्येन्द्रवत्या
जुषाणो अग्निर्वेतु स्वाहा ।।४।। यजुर्वेद ३।१०

(अग्निः) यह भौतिक अग्नि जैसे (देवेन सवित्रा) सर्वोत्पादक परमेश्वर के बल से (सजूः) सब पदार्थों को समान भाव से सेवन करता है । (इन्द्रवत्या) इन्द्र, वायु वा विद्युत से युक्त (रात्र्या) रात्रि या आदानकारिणी शक्ति से युक्त होकर (सजूः) समस्त पदार्थों को समान रूप से अपने भीतर लीन करता है वैसे ही (अग्निः) प्रकाशक परमात्मा

(जुषाणः) सबको प्रेम करता हुआ (अग्निः) भौतिक अग्नि के समान (स्वाहा) अपनी महिमा से (वेतु) व्याप्त है।

दोनों काल आहुति मन्त्र

ओं भूरग्नये प्राणाय स्वाहा ।। इदमग्नये प्राणाम इदं न मम ।।

यह आहुति समस्त संसार के प्राण भौतिक अग्नि को अनुकूलता के लिये तथा प्राण वायु की शुद्धि के लिए है।

ओं भुवर्वायवे ऽपानाय स्वाहा ।। इदं वायवेऽपानाय इदं न मम ।।

यह आहुति दुःख विनाशक की प्रसन्नता तथा समस्त संसार को जीवन प्रदान करने वाली वायु की पवित्रता और अपान वायु की शुद्धि के लिए है।

ओं स्वरादित्याय व्यानाय स्वाहा ।।
इदमादित्याय व्यानाय इदं न मम ।।

यह आहुति सुखस्वरूप, परमात्मा की प्रसन्नता के लिये तथा सूर्य की किरणों की अनुकूलता और व्यान वायु की शुद्धि के लिए है।

ओं भूर्भुवः स्वरग्निवाय्वादित्येभ्यः प्राणापानव्यानेभ्यः स्वाहा ।।
इदमग्निवाय्वादित्येभ्यः प्राणापानव्यानेभ्यः इदं न मम ।।

यह आहुति समस्त संसार के जीवनदाता, दुःखहर्ता, सुखदाता परमेश्वर की प्रसन्नता, अग्नि, वायु और सूर्य की किरणों की अनुकूलता तथा प्राण, अपान और व्यान की शुद्धि के लिए है।

ओं आपो ज्योती रसोऽमृतं ब्रह्मभूर्भुवः स्वरोम् स्वाहा ।।

यह आहुति जल समान शान्तिदायक, प्रकाशस्वरूप, आनन्द रस के देने वाला, मुक्ति प्रदाता, सबसे महान्, प्राणाधार, दुःखविनाशक, सुखस्वरूप, सर्वरक्षक परमेश्वर की प्रसन्नता के लिये है।

ओं यां मेधां देवगणाः पितरश्चोपासते ।
तया मामद्य मेधयाग्ने मेधाविनं कुरु स्वाहा ।।

यजुर्वेद ३२।१४

(याम्) जिस (मेधाम्) आत्मज्ञान को धारण करने वाली परम बुद्धि को (देवगणा) देव, विद्वान् गण (पितरः) पालक जन, पूर्व के

विद्वान्, (च) भी (उपासते) उपासना करते हैं (तया मेधया) उस परम प्रज्ञा से (अग्ने) हे ज्ञानस्वरूप परमेश्वर ! या गुरो (माम्) मुझको (स्वाहा) उत्तम उपदेश वाणी और योगाभ्यास द्वारा (मेधाविनं कुरु) मेधावान्, प्रज्ञावान् करो।

ओं विश्वानिदेव सवितर्दुरितानि परासुव।
यद्भद्रं तन्न आसुव स्वाहा ॥

यजुर्वेद ३०।३

ओं अग्ने नय सुपथाराये अस्मान् विश्वानि देव वयुनानि विद्वान्।
युयोध्यस्मज्जुहुराणमेनो भूयिष्ठान्ते नम उक्तिं विधेम स्वाहा ॥

यजुर्वेद ४०।१३

इन दोनों मन्त्रों के अर्थ पहले आ चुके हैं।

इसके पश्चात् इच्छित सूक्त से घृत और सामग्री की आहुतियाँ दें तदुपरान्त—

इसे तीन बार बोलकर तीन आहुतियाँ दें।

ओं सर्वं वै पूर्णं ँ स्वाहा ॥

ईश्वर की कृपा से, सब ही कुछ पूर्ण होता है।

इस मन्त्र पाठ के साथ पात्र में बचे घृत को खड़े होकर धार बाँधकर यज्ञ अग्नि में डालें।

ओं वसोः पवित्रमसि शतधारं वसोः पवित्रमसि सहस्रधारम्।
देवस्त्वा सविता पुनातु वसोः पवित्रेण शतधारेण सुप्वा कामधुक्षः ॥

यजुर्वेद १।३

हे परमेश्वर ! आप (वसोः) सबको बसाने और सबमें बसने वाले आत्मा के (पवित्रम्) पवित्रकर्त्ता और उसके (शत-धारम्) शतशः धारक हो। हे परमेश्वर ! आप (वसोः) सबको बसाने वाले और सब में बसने वाले आत्मा के (सहस्र-धारम्) सहस्रों प्रकार से धारक होकर उसे (पवित्रम्) पवित्र करने वाले (असि) हैं। हे पुरुष ! (सविता देवः) सर्वप्रद परमेश्वर, (त्वा) तुझको (शत-धारेण) सैकड़ों धारक शक्तियों

से युक्त (सु-प्वा) पवित्र करने वाले (पवित्रेण) पावन सामर्थ्य से (पुनातु) पवित्र करे। तू (काम्) किस-किस वेदवाणी या ईश्वर की शक्ति का (अधुक्षः) गौ के समान पुष्टि-प्रद ज्ञान, रस वा बल प्राप्त किया करता है।

स्रुवे के शेष घृत को दोनों हाथों पर मलकर अग्नि पर तपाते हुए ईश्वर से प्रार्थना करें।

ओं तनूपा ऽ अग्ने ऽ सि तन्वं मे पाहि ॥१॥ यजुर्वेद ३।१७

हे (अग्ने) परमेश्वर ! तू (तनूपाः असि) हमारे शरीरों की रक्षा करने हारा है। तू (मे) मेरे (तन्वम्) शरीर की (पाहि) रक्षा कर।

ओं आयुर्दा अग्ने ऽस्यायुर्मे देहि ॥२॥ यजुर्वेद ३।१७

हे (अग्ने) अग्ने ! (आयुर्दाः असि) तू आयु, जीवन का देने वाला है (मे आयुः देहि) मुझे आयु प्रदान कर।

ओं वर्चोदा अग्ने ऽसि वर्चो मे देहि ॥३॥ यजुर्वेद ३।१७

हे (अग्ने) अग्ने (वर्चोदाः असि) तू वर्चस्, तेज को देने वाला है तू (मे वर्चः देहि) मुझे तेज का प्रदान कर।

ओं अग्ने यन्मे तन्वाऽ ऊनं तन्म आपृण ॥४॥ यजुर्वेद ३।१७

(यत् मे तन्वा) और जो मेरे शरीर में (ऊनं) न्यूनता हो (मे) मेरी (तत्) उस न्यूनता को (आ पृण) पूर्ण कर।

ओं मेधां मे देवा सविता आदधातु ॥५॥

है सविता देव परमेश्वर ! मुझमें मेधा बुद्धि धारण कराइये।

ओं मेधां मे देवी सरस्वती आदधातु ॥६॥

हे सरस्वती देवी परमात्मन् मुझमें प्रसन्नता एवं शान्ति देने वाली मेधा बुद्धि प्रदान करिये।

ओं मेधां मे अश्विनौ देवावाधत्तां पुष्करस्त्रजौ ॥७॥

हे अश्विनी देव प्रभु मुझमें कल्याणकारिणी और पवित्र करने वाली मेधा बुद्धि प्रदान करो।

हाथ तपाकर अंगों का स्पर्श करें।

ओम् वाङ्म आप्यायताम् ।। मुख को।

हे प्रभो ! मेरी वाणी सब को भली प्रकार तृप्त करनें वाली हो।

ओम् प्राणश्च म आप्यायताम् ।। नासिको को।

हे प्रभो ! मेरी प्राण शक्ति भली प्रकार शरीर को पुष्ट और तृप्त करने वाली हो।

ओम् चक्षुश्च म आप्यायताम् ।। नेत्रों को।

हे प्रभो ! मेरे नेत्र मुझे भली प्रकार पूर्ण आयु तक प्रकाश से तृप्त करते रहें।

ओम् श्रोत्रञ्च म आप्यायताम् ।। कानों को।

हे प्रभो जी ! मेरे कान भली प्रकार वेद ज्ञान का श्रवण कर मुझे तृप्त करते रहें।

ओम् यशोवलञ्च म आप्यायताम् ।। बाहुओं को।

हे प्रभो ! मेरी भुजायें भली प्रकार सदैव कृपा शील बनी रहें।

ओम् मयि मेधां, मयिप्रजां, मय्यग्निस्तेजो दधातु ।।१।।

मुझ में मेधा, बुद्धि तथा मेधाजनक सन्तान एवं तेज धारण कराइये।

ओं मयि मेधां, मयि प्रजां, मयीन्द्र इन्द्रियं दधातु ।।२।।

मुझमें तथा मेरी सन्तान में इन्द्रिय, ज्ञान और कर्म शक्ति को धारण कराइये।

ओं मयि मेधां, मयि प्रजां, मयि सूर्यो भ्राजो दधातु ।।३।।

सूर्य के समान तेज, प्रकाश दीप्ति आदि गुणों को धारण कराइये।

ओं यत्ते अग्ने तेजस्तेनाहं तेजस्वी भूयासम् ।।४।।

हे अग्ने ! जो तेरा तेज है यह तेज मुझे भी प्रदान करो ताकि मैं भी तेजवान बनूँ।

ओं यत्ते अग्ने वर्चस्तेनाहं वर्चस्वी भूयासम् ॥५॥

हे अग्ने ! आपका जो वर्चस्व है वह मुझे भी प्राप्त हो।

ओं यत्ते अग्ने हरस्तेनाहं हरस्वी भूयासम् ॥६॥

हे दुःखों को हरण करने वाले अग्ने प्रभो ! मैं भी दुःखों का हरण करने वाला बनूँ।

यज्ञ प्रार्थना

यज्ञ रूप प्रभो हमारे भाव उज्ज्वल कीजिये।
छोड़ देवें छल कपट को मानसिक बल दीजिये ॥१॥

वेद की बोलें ऋचायें सत्य को धारण करें।
हर्ष में हों मग्न सारे शोक सागर से तरें ॥२॥

अश्वमेधादिक ऋचायें यज्ञ पर उपकार को।
धर्म मर्यादा चलाकर लाभ दें संसार को ॥३॥

नित्य श्रद्धा भक्ति से यज्ञादि हम करते रहें।
रोग पीड़ित विश्व के सन्ताप सब हरते रहें ॥४॥

भावना मिट जायें मन से पाप अत्याचार की।
कामनायें पूर्ण होवें यज्ञ से नर नार की ॥५॥

लाभकारी हों हवन हर जीवधारी के लिए।
वायु जल सर्वत्र हों शुभ गन्ध को धारण किये ॥६॥

स्वार्थ भाव मिटे हमारा प्रेम पथ विस्तार हो।
इदन्न मम का सार्थक प्रत्येक में व्यवहार हो ॥७॥

हाथ जोड़ झुकाये मस्तक वन्दना हम कर रहे।
नाथ करुणारूप करुणा आपकी सब पर रहे ॥८॥

शान्ति गीत

शान्ति कीजिये प्रभु त्रिभुवन में। शान्ति कीजिये……
जल में थल में और गगन में,
अन्तरिक्ष में अग्नि पवन में।
औषधि वनस्पति वन उपवन में,
सकल विश्व में जड़ चेतन में। शान्ति कीजिये……

ब्राह्मण के उपदेश वचन में,
क्षत्रिय के द्वारा हो रण में,
वैश्य जनों के होवे धन में,
और शूद्र के हो चरणन में। शान्ति कीजिये……

शान्ति राष्ट्र निर्माण सृजन में,
नगर ग्राम और भवन में।
जीवमात्र के तन में मन में,
और जगति के हो कण-कण में। शान्ति कीजिये……

शान्ति पाठ

ओं द्यौः शान्तिरन्तरिक्ष ँ शान्तिः पृथिवी शान्तिरापः शान्तिरोषधयः शान्तिः। वनस्पतयः शान्तिर्विश्वे देवाः शान्तिर्ब्रह्म शान्तिः सर्वं ँ शान्तिः शान्तिरेव शान्ति सा मा शान्तिरेधि ॥

यजुर्वेद ३६।१७

(द्यौः) महान् आकाश और सूर्य (शान्तिः) शान्ति देने वाला हो (अन्तरिक्षम्) अन्तरिक्ष, (पृथिवी) पृथिवी, (आपः) जल, (औषधयः) ओषधिगण, (वनस्पतयः) वट आदि बड़े वृक्ष, (विश्वे देवाः) समस्त विद्वान्‌गण और तेजोमय पदार्थ और (ब्रह्म) चारों वेद और परमेश्वर और अन्य ये सभी (शान्तिः) शान्ति के देने वाले हों। (सर्वं शान्तिः) सब पदार्थ शान्तिप्रद हों (शान्तिः एव शान्तिः) शान्ति स्वयम् हृदय को शान्ति दे। (सा) वह परम (शान्तिः) शान्ति (मा रेधि) मुझे प्राप्त हो।

पौर्णमासी यज्ञ

ओं अग्नये स्वाहा ॥१॥
ओं अग्निषोमाभ्यां स्वाहा ।२॥
ओं विष्णवे स्वाहा ॥३॥

ओं भूरग्नये स्वाहा ॥ इदमग्नये इदं न मम ॥१॥
ओं भुवर्वायवे स्वाहा ॥ इदं वायवे इदं न मम ॥२॥
ओं स्वरादित्याय स्वाहा ॥ इदमादित्याय इदं न मम ॥३॥
ओं भूर्भुवः स्वरग्निवाय्वादित्येभ्यः स्वाहा ॥
इदमग्निवाय्वादित्येभ्यः इदं न मम ॥४॥

ओं पूर्णापश्चादुत पूर्णा पुरस्तादुन्मध्यत पौर्णमासी जिगाय ।
तस्यां देवैः संवसन्तो महित्वा नाकस्य पृष्ठे समिषा मदेम स्वाहा ।१।

अथर्ववेद ७।८०।१

वह ब्रह्मशक्ति (पश्चात्) इस संसार के प्रलय के अनन्तर भी (पूर्ण) पूर्ण ही थी (उत पुरस्तात् पूर्ण) आदि में भी पूर्ण थी और (मध्यतः) इन दोनों कालों के बीच के रचनाकाल में भी वह (पौर्णमासी) पूर्णरूप से जगत् को बनाने वाली, महती शक्ति (उत् जिगाय) सर्वोच्च विराजमान है । (तस्याम्) उसमें (देवैः) मुक्तात्माओं सहित (सं-वसन्तः) निवास करते हुए (महित्वा) हम लोग अपनी शक्ति और उसकी महिमा से (नाकस्य) परम सुखमय मोक्ष के (पृष्ठे) धाम में (इषा) अपनी इच्छा के अनुसार (सं मदेम) आनन्द का उपभोग करें ।

ओं वृषभं वाजिनं वयं पौर्णमासं यजामहे ।
स नो ददात्वक्षितां रयिमनुपदस्वतीम् स्वाहा ॥२॥

अथर्ववेद ७।८०।२

(पौर्णमासम्) समस्त संसार के रचयिता (वाजिनम्) सर्वशक्तिमान् (वृषभम्) सब सुखों के वर्षक प्रभु की (वयम्) हम (यजामहे) उपासना करते हैं । (सः) वह (नः) हमें (अनुपदस्वतीम्) कभी किसी के प्रयत्न से क्षीण न होने वाली और (अक्षिताम्) अक्षय (रयिम्) शक्ति को (ददातु) प्रदान करे ।

ओं प्रजापते न त्वदेतान्यन्यो विश्वा रूपाणि परिभूर्जजान ।
यत्कामास्ते जुहुमस्तन्नो अस्तु वयं स्याम पतयो रयीणाम् स्वाहा ।३।

अथर्ववेद ७।८०।३

हे (प्रजापते) प्रजाओं के पालक प्रभो ! (त्वत्) तुझसे (अन्यः) दूसरा कोई (एतानि) इन (विश्वा रूपाणि) समस्त प्रकाशमान् लोकों और पदार्थों को (परि-भूः) सर्वव्यापक सर्वसामर्थ्यवान् होकर (न) नहीं (जजान) उत्पन्न करता । हम लोग (यत्कामाः) जिस कामना से प्रेरित होकर (ते) तेरे निमित्त (जुहुमः) आत्म त्याग करते हैं (तत् नः अस्तु) भगवन् ! वह हमें प्राप्त हो और (वयम्) हम (रयीणाम्) धनों के (पतयः) स्वामी (स्याम) हों ।

ओं पौर्णमासी प्रथमा यज्ञियासीदह्नां रात्रीणामतिशर्वरेषु ।
ये त्वां यज्ञैर्यज्ञिये अर्धयन्त्यमी ते नाके सुकृतः प्रविष्टाः स्वाहा ।४।

अथर्ववेद ७।८०।४

(पौर्णमासी) पूर्ण ब्रह्म की सर्वव्यापिनी शक्ति (प्रथमा) सबसे अधिक श्रेष्ठ (यज्ञिया) परमात्मा की शक्ति (आसीत्) है, जो (अह्नाम्) दिनों और (रात्रीणाम्) रात्रियों (अतिशर्वरेषु) और महाप्रलय कालों को भी अतिक्रमण करके रहती है । हे (यज्ञिये) यज्ञमय परमेश्वर शक्ते ! (ये) जो (त्वाम्) तुझको (यज्ञैः) यज्ञमय सत्कर्मों द्वारा (अर्धयन्ति) समृद्ध करते, तेरी महिमा को बढ़ाते हैं (ते) वे (सुकृतः) पुण्यात्मा लोग (नाके) परमलोक में (प्रविष्टाः) प्रविष्ट होते हैं ।

अमावास्या यज्ञ

ओं अग्नये स्वाहा ॥१॥
ओं इन्द्राग्निभ्यां स्वाहा ॥२॥
ओं विष्णवे स्वाहा ॥३॥

ओं भूरग्नये स्वाहा ॥ इदमग्नये इदं न मम ॥१॥
ओं भुवर्वायवे स्वाहा ॥ इदं वायवे इदं न मम ॥२॥
ओं स्वरादित्याय स्वाहा ॥ इदमादित्याय इदं न मम ॥३॥

ओं भूर्भुवः स्वरग्नि वाय्वादित्येभ्यः स्वाहा ।।
इदमग्निवाय्वादित्येभ्यः इदं न मम ।।४।।

ओं यत् ते देवा अकृण्वन् भागधेयममावास्ये संवसन्तो महित्वा ।
तेना नो यज्ञं पिपृहि विश्ववारे रयिं नो धेहि सुभगे सुवीरम् स्वाहा ।१।
अथर्ववेद ७।७९।१

हे (अमा-वास्ये) साथ रहने वाली स्त्री ! (ते महित्वा) तेरे गौरव के कारण (सं-वसन्त) एकत्र निवास करने वाले (देवाः) विद्वान् (यत्) जो (भागधेयम्) भाग (ते) तेरे लिये (अकृण्वन्) नियत करें (तेन) उसी से तू (नः) हमारे (यज्ञम्) गृहस्थ यज्ञ को (पिपृहि) पूर्ण कर और हे (विश्व-वारे) उत्तम गुणों से अलंकृत पत्नि ! (सु-भगे) हे सौभाग्यवती ! तू ही (नः) हमें (सु-वीरम्) बलवान पुत्र रूप (रयिम्) धन को (धेहि) प्रदान कर ।

ओं अहमेवास्म्यमावास्याः ३ मामा वसन्ति सुकृतो मयीमे ।
मयि देवा उभये साध्याश्चेन्द्रज्येष्ठाः समगच्छन्त सर्वे स्वाहा ।२।
अथर्ववेद ७।७९।२

(अहम्) मैं (एव) ही (अमावास्या) अमावास्या (अस्मि) हूँ, क्योंकि (माम्) मुझे लक्ष्य करके ही (इमे) ये (सुकृतः) पुण्यचरित्र पुरुष (मयि) मेरा आश्रय लेकर (आ वसन्ति) निवास करते हैं । (इन्द्र-ज्येष्ठः) इन्द्र ईश्वर को ही सर्वश्रेष्ठ मानने हारे (देवाः) विद्वद्गण और (साध्याः) साधना करने वाले (उभे) ये दोनों ज्ञानी और कर्मवान् (मयि) मेरे आश्रय पर ही (सर्वे) सब (सम् अगच्छन्त) एकत्र होते हैं ।

ओं आगन्रात्री संगमनी वसूनामूर्जं पुष्टं वस्वावेशयन्ती ।
अमावास्यायै हविषा विधेमोर्जं दुहाना पयसा न आगन् स्वाहा ।३।
अथर्ववेद ७।७९।३

(वसूनाम्) वास करने वाले गृह के प्राणियों को (संगमनी) मिलाकर रखने वाली (पुष्टम्) पुष्टिकारक (ऊर्जम्) अन्न को और (वसु) धन को (आ वेशयन्ती) प्रदान करने वाली और (रात्री) आनन्द प्रदान करने वाली गृहपत्नि (आ अगन्) आ रही है । उस (अमा-वास्यायै) साथ रहने वाली गृहपत्नी को हम (हविषा) अन्न आदि पदार्थों से

(विधेम) प्रसन्न करें। वह (ऊर्जं दुहाना) अन्न रस प्रदान करती हुई (पयसा) दूध के पुष्टिकारक पदार्थों के साथ (नः) हमें (आ अगन्) प्राप्त हो।

ओं अमावास्ये न त्वदेतान्यन्यो विश्वा रूपाणि परिभूजर्जान ।
यत्कामास्ते जुहुमस्तन्नो अस्तु वयं स्याम पतयो रमीणाम् स्वाहा।४।

अथर्ववेद ७।७९।४

हे (अमा-वास्ये) साथ रहने वाली गृहपत्नी ! (त्वद्) तुझसे (अन्यः) दूसरा कोई (एतानि) इन (विश्वा रूपाणि) समस्त पुत्र आदि पदार्थों को (परि-भूः) शक्तिमती होकर (न) नहीं (जजान) पैदा करता। (यत्कामाः) जो कामना रख कर हम (जुहुमः) वीर्य आदि का त्याग करते हैं, हे परमशक्ते ! (तत् नः) वह पुत्र आदि हमें (अस्तु) प्राप्त हो और (वयम्) हम (रयीणाम्) धन सम्पत्तियों के (पतयः) स्वामी (स्याम) हों।

सामवेदोक्त

ओं भूर्भुवः स्वः। कयानश्चित्र आभुवदूती सदावृधः सखा।
कया शचिष्ठया वृता ॥१॥

सामवेद उ० १।१।१२।१।६८२

सत्य के बल से बढ़ाने वाला, इन्द्र, प्रभु ज्ञान करने योग्य, पूज्य, अद्भुत, हमारा किस अपूर्व रक्षण करने वाले सामर्थ्य या ज्ञान से और किस अति-सम्पन्न, बल युक्त, बुद्धि युक्त कर्म और व्यवहार से हमारा मित्र हो रहा है, इसका विचार करो।

ओं भूर्भुवः स्वः। कस्त्वा सत्यो मदानां मंहिष्ठो मत्सदन्धसः।
दृढा चिदारुजे वसु ॥२॥

सामवेद उ० १।१।१२।२।६८३

पूजनीय, सत्यस्वरूप, हर्षों, आनन्दों के बीच में कौन-सा जीवन धारण करने वाला या अन्धकार का नाश करने वाला परम रस है जो दृढ़ वास योग्य दुर्गादि रूप बन्धनों को तोड़ने के लिए आपको आनन्दित व उत्साहित करता है।

ओं भूर्भुवः स्वः । अभी षुणः सखीनामविता जरितृणाम् ।
शतं भवास्यूतये ।।३।।

सामवेद उ० १।१।१२।३।६८४

हे इन्द्र ! आप हमारे मित्र सद्विद्या का उपदेश करने वाले विद्वानों की रक्षा के लिये सौ वर्षों तक अर्थात् जीवन भर रक्षक बने रहें।

महावामदेव्यगान

ओं काऽ ५या । नश्चा ३ इत्रा ३ आभुवात् ।
ऊ । ती सदावृधः स । खा औ३ होहाइ कया २ ३ शचाइ ।
ष्ठयौहो३ । हुम्मा २ । वा२ र्तो ३ऽ५ हाई ।।१।।

ओं काऽ५स्त्वा । सत्यो३ मा ३दानाम् । मा । हिष्ठा मात्सादन्ध ।
सा । औ३ होहाइ । दृढा २ ३ चिदा । रुजौहो ३ ।
हुम्मा२ । वा ऽ ३ सो ३ ऽ ५ हायि ।।२।।

ओं आऽ५ भी । षुणा३ः सा २ खीनाम् । आ । विता जरायि तृ ।
णाम् । औ २ ३ हो हायि । शता २ ३ म्भवा । सियौहो३ ।
हुम्मा २ । ता ऽ २ यो ३ ऽ ५ हायि ।।

चतुर्वेद आरम्भ और अन्त

ईश्वर एक है, उसका ज्ञान भी एक है। ईश्वर सर्वत्र व्यापक है, उसका ज्ञान भी सर्वत्र व्यापक है। ईश्वर समान रूप से सब की पालना करता है, इसका ज्ञान भी समान रूप से सबके लिए है। जो ज्ञान देश, काल, वर्ग अथवा व्यक्ति विशेष से प्रभावित अथवा सम्बन्धित होता है उसे ईश्वरीय ज्ञान नहीं कह सकते। जो ज्ञान सार्वभौम हो, अपरिवर्तन शील हो, जिसमें किसी देश, काल, वर्ग अथवा व्यक्ति से सम्बन्धित न हो और आदि सृष्टि से एक रूपता में चलता चला आ रहा हो वही ईश्वरीय ज्ञान हो सकता है और वह चारों वेद ही हैं, अन्य कोई ग्रन्थ नहीं। वेद की प्राकृतिक भाषा और लिपि देवनागरी है। लिपि की वर्णमाला का पहला अक्षर (अ) है। प्रथम वेद (ऋग्) है, ऋग्वेद का आरम्भ वर्णमाला के पहले अक्षर (अ) से होता है, दूसरा वेद (यजुः) है। यजुर्वेद का आरम्भ वर्णमाला के दूसरे अक्षर (इ) से होता है और अन्त (ह) पर होता है, वर्णमाला का अन्तिम अक्षर (ह) है। तीसरा वेद (साम) है। सामवेद का आरम्भ (अ) से होता है और चौथा वेद (अथर्व) है। अथर्ववेद का आरम्भ (य) से होकर (य) पर ही अन्त होता है। मेरे अपने अध्ययन के अनुसार संसार की अन्य ईश्वर कृत कही जाने वाली पुस्तकें जिनका अवतरण जिस लिपि में हुआ है उनका आरम्भ उस लिपि के पहले अक्षर से नहीं, दूसरे वह आदि काल से नहीं, तीसरे अपरिवर्तन शील भी नहीं। इस कसौटी के अनुसार केवल वेद ही एकमात्र ऐसा ग्रन्थ है जिसे ईश्वर कृत कह सकते हैं और संसार के अनेकानेक विद्वानों ने यह स्वीकार भी किया है।

चतुर्वेदारम्भ सूक्त

अग्निमीळे पुरोहितं यज्ञस्य देवमृत्विजम् ।
होतारं रत्नधातमम् ।।१।।

ऋग्वेद १।१।१

मैं (यज्ञस्य) यज्ञ, ब्रह्माण्ड सर्ग के (होतारम्) सम्पादन और धारण करने वाले, (पुरः-हितम्) पहले ही समस्त परमाणु, प्रकृति और सृष्टि को धारण करने वाले, (ऋत्विजम्) प्रति ऋतु अर्थात् प्रत्येक सृष्टि-उत्पत्ति काल में सृष्टि के घटक पदार्थों को मिलाने हारे, (रत्न-धातमम्) समस्त रमण करने योग्य, पृथिवी आदि लोकों को सर्वोत्तम धारण करने वाले, (देवम्) सब पदार्थों के दाता, द्रष्टा और प्रकाशक (अग्निम्) सबसे पूर्व विद्यमान, ज्ञानवान्, प्रकाशस्वरूप परमेश्वर की (ईडे) स्तुति करता हूँ ।

अग्निः पूर्वेभिर्ऋषिभिरीड्यो नूतनैरुत ।
स देवाँ एह वक्षति ।।२।।

ऋग्वेद १।१।२

वही ज्ञानस्वरूप, सब पदार्थों का प्रकाशक परमेश्वर (पूर्वेभिः) पूर्व के, शास्त्रों के विज्ञ विद्वानों (ऋषिभिः) मन्त्रार्थों के द्रष्टा ऋषियों, विद्वानों और तर्कों द्वारा (उत) और (नूतनैः) नये अर्थात् वेदार्थों के पढ़ने वाले ब्रह्मचारियों द्वारा (ईड्यः) स्तुति, वन्दना, ज्ञान, मनन और अन्वेषण करने योग्य है। (सः) वह ही (देवान्) सूर्य के समान ऋतुओं को, आत्मा के समान प्राणों को, भोक्ता के समान भोगों को, आचार्य के समान विद्यादि दिव्य गुणों को, (इह) इस जगत् में (आ वक्षति) धारण करता एवं सबको प्राप्त कराता है।

अग्निना रयिमश्नवत् पोषमेव दिवेदिवे ।
यशसं वीरवत्तमम् ॥३॥

ऋग्वेद १।१।३

(दिवेदिवे) प्रतिदिन मनुष्य (अग्निना) ज्ञानवान् परमेश्वर के भजन से (पोषम्) पुष्टि द्वारा सुख देने वाले या स्वयं निरन्तर बढ़ने और बढ़ाने वाले, (यशसं) कीर्तिजनक, (वीरवत्-तमम्) बहुत अधिक वीर, वीर्यवान् और विद्वान् पुरुषों से युक्त (रयिम्) ऐश्वर्य, धन समृद्धि को (अश्नवत्) प्राप्त करता है ।

अग्ने यं यज्ञमध्वरं विश्वतः परिभूरसि ।
स इद्देवेषु गच्छति ॥४॥

ऋग्वेद १।१।४

हे (अग्ने) ज्ञानवान् ! सबके अग्रणी, सर्वप्रकाशक परमेश्वर ! तू (यं) जिस (अध्वरं) हिंसा आदि दोषों से रहित, एवं कभी विनष्ट न होने वाले, नित्य, (यज्ञम्) प्रकृति के कारण तत्वों के परस्पर मिलने के सृष्टि, प्रलय आदि व्यवहारों से युक्त अन्तरिक्ष या ब्रह्माण्डमय जगत् सर्ग को (विश्वतः) सब ओर से और समस्त जल, पृथिवी आदि पदार्थों के भीतर और बाहर भी (परिभूः असि) व्यापक है, (सः, इत्) वह यज्ञ ही (देवेषु) समस्त दिव्य पदार्थों में सर्ग रूप से संयोग, विभाग और विद्वानों में उपासना रूप से (गच्छति) होता रहता है ।

अग्निर्होता कविक्रतुः सत्यश्चित्रश्रवस्तमः ।
देवो देवेभिरागमत् ॥५॥

ऋग्वेद १।१।५

(अग्निः) ज्ञानवान्, सर्व प्रकाशक, परमेश्वर, (होता) समस्त पदार्थों का दाता सबको अपने भीतर लेने वाला (कविक्रतुः) सर्वज्ञ होकर समस्त संसार को बनाने हारा, (सत्यः) सत् पदार्थों में व्यापक, सत्यस्वरूप (चित्रश्रवस्तमः) अद्भुत यश, कीर्ति और वेदमय ज्ञानोपदेश करने वालों में सबसे बड़ा (देवः) देव, दाता, सर्वप्रकाशक है। वह (देवेभिः) विद्वानों और दिव्य गुणों सहित (आ गमत्) हमें प्राप्त हो ।

इषे त्वोर्ज्जेत्वा वायव स्थ देवो वः सविता प्रार्पयतु श्रेष्ठतमाय कर्मणऽआप्यायध्वमघ्न्या ऽ इन्द्राय भागं प्रजावतीरनमीवा ऽ अयक्ष्मा मा व स्तेन ऽ ईशत माघशꣳसो ध्रुवा ऽ अस्मिन् गोपतौ स्यात बह्वीर्यजमानस्य पशून् पाहि ।६।

यजुर्वेद १।१

हे मनुष्य लोगो ! जो (सविता) सब जगत् की उत्पत्ति करने वाला सम्पूर्ण ऐश्वर्ययुक्त (देवः) सब सुखों के देने और सब विद्या के प्रसिद्ध करने वाला परमात्मा है। सो (वः) तुम, हम और अपने मित्रों के जो (वायवः) सब क्रियाओं के सिद्ध कराने हारे स्पर्श गुण वाले प्राण अन्तःकरण और इन्द्रियाँ (स्थ) हैं उनको (श्रेष्ठतमाय) अत्युत्तम (कर्मणे) करने योग्य सर्वोपकारक यज्ञादि कर्मों के लिए (प्रार्पयतु) अच्छी प्रकार संयुक्त करे। हम लोग (इषे) अन्न आदि उत्तम-उत्तम पदार्थों और विज्ञान की इच्छा और (ऊर्जे) पराक्रम अर्थात् उत्तम रस की प्राप्ति के लिए (भागम्) सेवा करने योग्य धन और ज्ञान के भरे हुए (त्वा) उक्त गुण वाले (त्वा) श्रेष्ठ पराक्रमादि गुणों के देने हारे आपका सब प्रकार से आश्रय करते हैं। हे मित्र लोगो ! तुम भी ऐसे होकर (आप्यायध्वम्) उन्नति को प्राप्त हो तथा हम भी हों। हे भगवान् ! जगदीश्वर ! हम लोगों के (इन्द्राय) परमैश्वर्य की प्राप्ति के लिए (प्रजावतीः) जिनके बहुत सन्तान हैं तथा जो (अनमीवाः) व्याधि और (अयक्ष्माः) जिनमें राजयक्ष्मा आदि रोग नहीं हैं वे (अघ्न्या) जो-जो गौ आदि पशु वा उन्नति करने योग्य हैं, जो कभी हिंसा करने योग्य नहीं, कि जो इन्द्रियाँ वा पृथिवी आदि लोक हैं उनको सदैव (प्रार्पयतु) नियत कीजिए। हे जगदीश्वर ! आपकी कृपा से हम लोगों में से दुःख देने के लिए कोई (अघशंसः) पापी वा (स्तेनः) चोर, डाकू (मा ईशत) मत उत्पन्न हो तथा आप इस (यजमानस्य) परमेश्वर और सर्वोपकारक धर्म के सेवन करने वाले मनुष्य के (पशून्) गौ, घोड़े और हाथी आदि तथा लक्ष्मी और प्रजा की (पाहि) निरन्तर रक्षा कीजिए जिससे इन पदार्थों के हरने को पूर्वोक्त कोई दुष्ट मनुष्य समर्थ न हो (अस्मिन्) इस धार्मिक (गोपतौ) पृथिवी आदि पदार्थों की रक्षा चाहने वाले सज्जन मनुष्य के समीप (बह्वीः) बहुत से उक्त पदार्थ (ध्रुवाः) निश्चल सुख के हेतु (स्यात) हों।

वसोः पवित्रमसि द्यौरसि पृथिव्यसि मातरिश्वनो
घर्मो ऽसि विश्वधा ऽअसि ।
परमेण धाम्ना द ँ ह्स्व मा ह्वार्मा ते यज्ञपतिर्ह्वार्षीत् ॥७॥

यजुर्वेद १।२

हे विद्यायुक्त मनुष्य ! तू जो (वसोः) यज्ञ (पवित्रम्) शुद्धि का हेतु (असि) है (द्यौः) जो विज्ञान के प्रकाश का हेतु और सूर्य की किरणों में स्थिर होने वाला (असि) है जो (पृथिवी) वायु के साथ देश देशान्तरों में फैलने वाला (असि) है जो (मातरिश्वनः) वायु को (घर्मः) शुद्ध करने वाला (असि) है जो (विश्वधाः) संसार का धारण करने वाला (असि) है तथा जो (परमेण) उत्तम (धाम्ना) स्थान से (द ँ ह्स्व) सुख का बढ़ाने वाला है, इस यज्ञ का (मा) मत (ह्वाः) त्याग कर। तथा (ते) तेरा (यज्ञपतिः) यज्ञ की रक्षा करने वाला यज्ञमान भी उसको (मा) न (ह्वार्षीत्) त्यागे। धात्वर्थ के अभिप्राय से यज्ञ शब्द का अर्थ तीन प्रकार का होता है, एक लोक और परलोक के सुख के लिए। दूसरा अच्छी प्रकार पदार्थों के गुण और विरोध के मेल का ज्ञान। तीसरे नित्य बिद्वानों का सत्संग और नित्य विद्या का दान करना है।

वसोः पवित्रमसि शतधारं वसोः पवित्रमसि सहस्रधारम् ।
देवस्त्वा सविता पुनातु वसोः पवित्रेण शतधारेण सुप्वा कामधुक्षः ।८।

यजुर्वेद १।३

जो (वसोः) यज्ञ (शतधारम्) असंख्यात संसार का धारण करने और (पवित्रम्) शुद्धि करने वाला कर्म (असि) है तथा जो (वसोः) यज्ञ (सहस्रधारम्) अनेक प्रकार के ब्रह्माण्ड को धारण करने (पवित्रम्) शुद्धि का निमित्त सुख देने वाला है (त्वा) उस यज्ञ को (देवः) स्वयं प्रकाश स्वरूप (सविता) वसु आदि तैंतीस देवों का उत्पत्ति करने वाला परमेश्वर (पुनातु) पवित्र करे। हे जगदीश्वर ! आप हम लोगों से सेवित (वसोः) जो यज्ञ है उस (पवित्रेण) शुद्धि के निमित्त, वेद के विज्ञान (शतधारेण) बहुत विद्याओं को धारण करने वाले वेद और (सुप्वा) अच्छी प्रकार पवित्र करने वाले यज्ञ से हम लोगों को पवित्र कीजिये। हे विद्वान् पुरुष वा जानने की इच्छा करने वाले मनुष्य ! तू (काम्) वेद की श्रेष्ठ वाणियों में से कौन-कौन वाणी के अभिप्राय को (अधुक्षः) अपने मन में पूर्ण करना अर्थात् जानना चाहिए।

सा विश्वायुः सा विश्वकर्मा सा विश्वधायाः ।
इन्द्रस्य त्वा भागँ सोमेनातनच्मि विष्णो हव्यँ रक्ष ॥९॥

यजुर्वेद १।४

हे (विष्णो) व्यापक ईश्वर ! आप जिस वाणी का धारण करते हैं (सा) वह (विश्वायुः) पूर्ण आयु की देने वाली (सा) वह (विश्वकर्मा) जिससे कि सम्पूर्ण क्रियाकाण्ड सिद्ध होता है और (सा) वह (विश्वधायाः) सब जगत् को विद्या और गुणों से धारण करने वाली हैं। पूर्व मन्त्र में जो प्रश्न है उसके उत्तर में यही तीन प्रकार की वाणी ग्रहण करने योग्य है, इसी से मैं (इन्द्रस्य) परमेश्वर का (भागम्) सेवन करने योग्य यज्ञ को (सोमेन) विद्या से सिद्ध किये रस अथवा आनन्द से (आतनच्मि) अपने हृदय में दृढ़ करता हूँ तथा हे परमेश्वर ! (हव्यम्) पूर्वोक्त यज्ञ सम्बन्धी देने-लेने योग्य द्रव्य वा विज्ञान की (रक्ष) निरन्तर रक्षा कीजिये।

अग्ने व्रतपते व्रतं चरिष्यामि तच्छकेयं तन्मे राध्यताम् ।
इदमहमनृतात् सत्यमुपैमि ॥१०॥

यजुर्वेद १।५

हे (व्रतपते) सत्य भाषण आदि धर्मों के पालन करने और (अग्ने) सत्य उपदेश करने वाले परमेश्वर ! मैं (अनृतात्) जो झूठ से अलग (सत्यम्) वेद विद्या, प्रत्यक्ष आदि प्रमाण, सृष्टिक्रम, विद्वानों का संग, श्रेष्ठ विचार तथा आत्मा की शुद्धि आदि प्रकारों से जो निर्भ्रम, सर्व-हित, तत्त्व अर्थात् सिद्धान्त के प्रकाश करने हारों से सिद्ध हुआ, अच्छी प्रकार परीक्षा किया गया (व्रतम्) सत्य बोलना, सत्य मानना और सत्य करना है, उसका (उपैमि) अनुष्ठान अर्थात् नियम से ग्रहण करने वा जानने और उसकी प्राप्ति की इच्छा करता है (मे) मेरे (तत्) उस सत्यव्रत को आप (राध्यताम्) अच्छी प्रकार सिद्ध कीजिए । जिससे कि (अहम्) मैं उक्त सत्यव्रत के नियम करने को (शकेयम्) समर्थ होऊँ और मैं (इदम्) इसी प्रत्यक्ष सत्यव्रत के आचरण का नियम (चरिष्यामि) करूँगा ।

अग्न आ याहि वीतये गृणानो हव्यदातये ।
नि होता सत्सि बर्हिषि ॥११॥

सामवेद पू० १।१।१।१।१

हे अग्ने ! (वीतये) सर्वत्र प्रकाशक और व्यापक होने और

(हव्यदातये) हव्य, दानयोग्य पदार्थों के प्रदान करने के लिए आप (आ याहि) हमारे समीप आइये। आपकी (गृणानः) सब स्तुति करते हैं। (होता) सब पदार्थों के देने वाले आप (बर्हिषि) यज्ञ में (नि सत्सि) विराजमान हों।

त्वमग्ने यज्ञाना ँ होता विश्वेषा ँ हितः।
देवेभिर्मानुषे जने ॥१२॥

सामवेद पू० १।१।१।२।२

हे अग्ने ! (त्वं) तू (विश्वेषां) समस्त (यज्ञानां) यज्ञों का (होता) होता और (देवेभिः) देवों ने (मानुषे जने) मनुष्य प्राणी में (हितः), तुझे नियुक्त किया है।

अग्निं दूतं वृणीमहे होतारं विश्ववेदसम्।
अस्य यज्ञस्य सुक्रतुम् ॥१३॥

सामवेद पू० १।१।१।३।३

हम (विश्ववेदसम्) सर्वज्ञानी, सर्वधनी (होतारं) होता (अस्य) इस (यज्ञस्य) यज्ञ के (सुक्रतुम्) सुक्रतु, उत्तमकर्त्ता विधाता और ज्ञाता (अग्निं) अग्नि को (दूतं) दूत (वृणीमहे) वरण करते हैं।

अग्निर्वृत्राणि जङ्घनद्द्रविणस्युर्विपन्यया।
समिद्धः शुक्र आहुतः ॥१४॥

सामवेद पू० १।१।१।४।४

(विपन्यया) विपन्या विशिष्ट उद्यम या स्तुति से (द्रविणस्युः) उपासकों के द्रव्य, बल की कामना करने वाला 'अग्नि' (समिद्धः) चमकता हुआ (शुक्रः) शुद्ध, कान्तिमान् (आहुतः) भली प्रकार से स्तुति किया, बुलाया गया, स्मरण किया हुआ (वृत्राणि) दुःख विघ्न, पाप, तम को (जंघनद्) नाश करे।

प्रेष्ठं वो अतिथि ँ स्तुषे मित्रमिव प्रियम्।
अग्ने रथं न वेद्यम् ॥१५॥

सामवेद पू० १।१।१।५।५

(वः) तुम्हारे (प्रेष्ठं) अति अधिक प्रिय (मित्रमिव प्रियं) मित्र

के समान प्यारे (अतिथिं) सर्वव्यापक, अतिथि के समान आदरणीय को (स्तुषे) स्तुति करता हूँ। हे अग्ने ! तू (रथं न वेद्यम्) रथ के समान समस्त पदार्थों का प्राप्त करने हारा है।

ये त्रिषप्ताः परियन्ति विश्वा रूपाणि बिभ्रतः ।
वाचस्पतिर्बला तेषां तन्वो अद्य दधातु मे ॥१६॥

अथर्ववेद १।१।१

(ये) जो (त्रिसप्ताः) तीन गुना सात अर्थात् इक्कीस पदार्थ (विश्वा) समस्त (रूपाणि) चेतन और अचेतन पदार्थों को (बिभ्रतः) धारण करते हुए (परि यन्ति) गति कर रहे हैं। (वाचः) वाणी का (पतिः) पालक (तेषां) उनके (वला) बलों को (अद्य) आज, सदा ही, (मे तन्वः) मेरे शरीर में (दधातु) धारण करावे।

पुनरेहि वाचस्पते देवेन मनसा सह ।
वसोष्पते नि रमय मय्येवास्तु मयि श्रुतम् ॥१७॥

अथर्ववेद १।१।२

हे (वाचस्पते) वेदरूप वाणी के पालक परमेश्वर ! आचार्य ! ब्रह्मन् ! (देवेन) प्रकाशयुक्त (मनसा) मनः शक्ति ज्ञान के (सह) साथ (पुनः) वार-बार (एहि) मुझे प्राप्त होइये, उपदेश कीजिये। हे (वसोः पते) 'वसु' प्राणियों के वास अर्थात् जीवन के सम्पादन पदार्थों या वसु अन्तेवासी शिष्यों के पालक विद्वान् ! ईश्वर ! अथवा प्राण के पालक आत्मन् ! (नि रमय) हमें सर्वथा सुखी करो हर्षित, तृप्त करो। (मयि अस्तु एव) आपके दिए ये ज्ञान आदि मुझमें अवश्य रहें और (मयि) मुझमें (श्रुतम्) गुरुपदेश और वेद का ज्ञान भी अवश्य रहे।

इहैवाभि वि तनूभे अर्त्नी इव ज्यया ।
वाचस्पतिर्नि यच्छतु मय्येवास्तु मयि श्रुतम् ॥१८॥

अथर्ववेद १।१।३

हे वाचस्पते ! (मयि) मुझमें (उभे) मेधा और सम्पत्ति, ज्ञान और कर्म दोनों को (एव) अवश्य (वि तनु) विशेष रूप से ऐसे विस्तृत कर, बढ़ा, प्रबल कर। जिस प्रकार (ज्यया) धनुष में लगी डोरी से (उभे अर्त्नी इव) धनुष के दोनों छोर ढीले न रहकर कस जाते हैं और

वे वाण को दूर फेंकने में समर्थ होते हैं, हम भी प्रखर तीक्ष्ण बुद्धि और कर्मशक्ति से बलवान् होकर सब विपत्तियों और कार्यों को साथ ले सकें। (वाचस्पतिः) वेद वाणी का पालक ईश्वर और विद्वान् (नि यच्छतु) समस्त इष्ट पदार्थ हमें दे। (मयि एव अस्तु, मयि श्रुतम्) उसके दिये ये ज्ञान आदि मुझमें स्थिर रहें और गुरूपदेश के श्रवण से प्राप्त वेद ज्ञान भी मेरे में रहे।

उपहूतो वाचस्पतिरुपास्मान् वाचस्पतिर्ह्वयताम्।
सं श्रुतेन गमेमहि मा श्रुतेन वि राधिषि ॥१९॥

अथर्ववेद १।१।४

(वाचस्पतिः) वेद वाणियों और ज्ञान वाणियों के परिपालक परमेश्वर और आचार्य की (उपहूताः) सेवा, शुश्रुषा और प्रार्थना, उपासना की जाय। (वाचः पतिः) वाचस्पति (अस्मान्) हमें (उपह्वयताम्) उत्तम ज्ञानों का उपदेश करे, जिससे हम (श्रुतेन) ज्ञानोपदेश से (सं गमेमहि) युक्त हों और (श्रुतेन) वेदशास्त्र के ज्ञान से मैं (मा वि राधिषि) कभी वियुक्त न होऊँ।

चतुर्वेदान्त सूक्त

संसमिद्युवसे वृषन्नग्ने विश्वान्यर्य आ ।
इळस्पदे समिध्यसे स नो वसून्या भर ॥१॥

ऋग्वेद १०।१९१।१

हे (वृषन्) समस्त सुखों के वर्षाने हारे ! हे (अग्ने) ज्ञान के प्रकाशक प्रभो ! तू (अर्यः) स्वामी (विश्वानि सं युवसे) समस्त प्राणियों और समस्त तत्त्वों को मिलाता है। तू (इडः पदे समिध्यसे) वाणी के परम प्राप्तव्य पद ओंकार रूप में प्रकाशित होता है। (सः) वह तू (नः) हमें (वसूनि) नाना ऐश्वर्य और लोक (आभर) प्राप्त करा।

सङ्गच्छध्वं सं वदध्वं सं वो मनांसि जानताम् ।
देवा भागं यथा पूर्वे सञ्जानाना उपासते ॥२॥

ऋग्वेद १०।१९१।२

हे मनुष्यो ! आप लोग (सं गच्छध्वं) परस्पर अच्छी प्रकार मिलकर रहो। (सं वदध्वम्) परस्पर मिलकर प्रेम से बातचीत करो। (वः मनांसि) आप लोगों के चित्त (सं जानताम्) एक समान होकर ज्ञान प्राप्त करें। (यथा) जिस प्रकार (पूर्वे देवाः) पूर्व के विद्वान् जन (भागं) सेवनीय और भजन करने योग्य प्रभु का (जानानाः) ज्ञान सम्पादन करते हुए (सम् उपासते) अच्छी प्रकार उपासना करते रहे हैं उसी प्रकार आप लोग भी ज्ञान सम्पन्न होकर (भागं सम उपासते) सेवनीय प्रभु की उपासना करो।

समानो मन्त्रः समितिः समानी समानं मनः सह चित्तमेषाम् ।
समानं मन्त्रमभि मन्त्रये वः समानेन वो हविषा जुहोमि ।।३।।

ऋग्वेद १०।१९१।३

(एषाम् मन्त्रः समानः) इन सबका विचार एक समान हो। (समितिः समानी) परस्पर संगति, मेलजोल भी एक समान हो। (मनः समानम्) इनका अन्तःकरण एक समान हो। (एषां चित्तं सह) इनका चित्त एक-दूसरे के साथ हो (वः समानम् मन्त्रम् अभि मन्त्रये) मैं आप लोगों को एक समान विचारवान् करता हूँ और (वः समानेन हविषा जुहोमि) एक समान अन्न से आप लोगों को पालित पोषित करता हूँ।

समानी व आकूतिः समाना हृदयानि वः ।
समानमस्तु वो मनो यथा वः सुसहासति ।।४।।

ऋग्वेद १०।१९१।४

(वः आकूतिः समानी अस्तु) आप लोगों का संकल्प, निश्चय और भाव अभिप्राय एक समान रहें। (वः हृदयानि समाना) आप लोगों के हृदय एक समान हों। (वः मनः समानम् अस्तु) आप लोगों के मन समान हों (यथा) जिससे (वः) आप लोगों का (सह सु असति) परस्पर का कार्य सर्वत्र एक साथ अच्छी प्रकार हो सके।

विद्यां चाविद्यां च यस्तद्वेदोभय ँसह
अविद्यया मृत्युं तीर्त्वा विद्यया ऽमृतमश्नुते ।।५।।

यजुर्वेद ४०।१४

(यः) जो विद्वान् (विद्याम्) पूर्वोक्त विद्या (च) और उसके सम्बन्धी साधन उपसाधनों (अविद्याम्) पूर्व कही अविद्या (च) और इसके उपयोगी साधन समूह को और (तत्) उस ध्यानगम्य मर्म (उभयम्) इन दोनों को (सह) साथ ही (वेद) जानता है वह (अविद्यया) शरीरादि जड़ पदार्थ समूह से किये पुरुषार्थ से (मृत्युम्) मरण दुःख के भय को (तीर्त्वा) उल्लंघन कर (विद्यया) आत्मा और शुद्ध अन्तःकरण के संयोग में जो धर्म उससे उत्पन्न हुए यथार्थ दर्शन रूप विद्या से (अमृतम्) नाशरहित अपने स्वरूप वा परमात्मा को (अश्नुते) प्राप्त होता है।

वायुरनिलममृतमथेदं भस्मान्त ँ शरीरम् ।
ओ३म् क्रतो स्मर । क्लिबे स्मर । कृत ँ स्मर ।।६।।

यजुर्वेद ४०।१५

हे (क्रतो) कर्म करने वाले जीव ! तू शरीर छूटते समय (ओ३म्) इस नाम वाच्य ईश्वर को (स्मर) स्मरण कर (क्लिबे) अपने सामर्थ्य के लिये परमात्मा और अपने स्वरूप का (स्मर) स्मरण कर (कृतम्) अपने किये का (स्मर) स्मरण कर। इस संस्कार का (वायु:) धनञ्जयादि रूप वायु (अनिलम्) कारणरूप वायु को, कारण रूप वायु (अमृतम्) अविनाशी कारण को धारण करता (अथ) इसके अनन्तर (इदम्) यह (शरीरम्) नष्ट होने वाला सुखादि का आश्रय शरीर (भस्मान्तम) अन्त में भस्म होने वाला होता है ऐसा जानो।

अग्ने नय सुपथा राये अस्मान्विश्वानि देव वयुनानि विद्वान् ।
युयोध्यस्मज्जुहुराणमेनो भूयिष्ठां ते नमउक्तिं विधेम ।।७।।

यजुर्वेद ४०।१६

हे (देव) दिव्यस्वरूप (अग्ने) प्रकाशस्वरूप करुणामय जगदीश्वर ! जिससे हम लोग (ते) आपके लिए (भूयिष्ठाम्) अधिकतर (नमउक्तिम्) सत्कारपूर्वक प्रशंसा का (विधेम) सेवन करें। इससे (विद्वान्) सबको जानने वाले आप (अस्मत्) हम लोगों से कुटिलता रूप (एन:) पापाचरण को (युयोधि) पृथक कीजिये (अस्मान्) हम जीवों को (राये) विज्ञान धन वा धन से हुए सुख के लिए (सुपथा) धर्मानुकूल मार्ग से (विश्वानि) समस्त (वयुनानी) प्रशस्त ज्ञानों को (नय) प्राप्त कीजिए।

हिरण्मयेन पात्रेण सत्यस्यापिहितं मुखम् ।
योऽसावादित्ये पुरुषः सोऽसावहम् । ओ३म् खं ब्रह्म ।।८।।

यजुर्वेद ४०।१७

हे मनुष्यो ! जिस (हिरण्मयेन) ज्योतिः स्वरूप (पात्रेण) रक्षक मुझसे (सत्यस्य) अविनाशी यथार्थ कारण के (अपिहितम्) आच्छादित (मुखम्) मुख के तुल्य उत्तम अंग का प्रकाश किया जाता (य:) जो (असौ) वह (आदित्ये) प्राण वा सूर्य मण्डल में (पुरुष:) पूर्ण परमात्मा है

(स:) वह (असौ) परोक्षरूप (अहम्) मैं (खम्) आकाश के तुल्य व्यापक (ब्रह्म) सबसे गुण कर्म और स्वरूप करके अधिक हूँ (ओ३म्) सब का रक्षक जो मैं उसका (ओ३म्) ऐसा नाम जानो।

यो नः स्वो ऽरणो यश्च निष्ठ्यो जिघांसति।
देवास्तं सर्वे धूर्वन्तु ब्रह्म वर्म ममान्तरं
शर्म्म वर्म्म ममान्तरम् ॥९॥

सामवेद उ० ९।३।८।३।१८७२

(य:) जो (न:) हमारा (स्व:) सम्बन्धी होकर भी या स्वयं (अरण:) अप्रियाचरण करने वाला है और जो (निष्ठय:) दूर रह कर भी छुपे रूप में (न:) हमें (जिघांसति) मारना चाहता है। (तं) उसके (सर्व) समस्त (देवा:) विद्वान् पुरुष (धूर्वन्तु) विनाश करें। (ब्रह्म) वेदज्ञान और परमेश्वर (मम) मेरा (अन्तरं) भीतरी (वर्मं) कवच या रक्षा साधन हो। (शर्म) वह सुखकारी आनन्दघन सबका शरणदाता ही (मम) मेरा (अन्तरम्) भीतर का एक मात्र रक्षक साक्षी है।

मृगो न भीमः कुचरो गिरिष्ठाः परावत आ जगन्था परस्याः।
सृकं सं शाय पविमिन्द्र तिग्मं वि शत्रून्ताढि वि मृधो नदस्व।१०।

सामवेद उ० ९।३।९।१।१८७३

हे इन्द्र परमेश्वर ! आप (गिरिष्ठा: कुचर: मृगो न भीम:) पर्वतों में रहने वाले, कुत्सित रूप से विचरण करने वाले, जंगली, हिंसक हाथी या सिंह के समान भयकारी हैं एवं आप (मृग:) योगियों से भीतरी गुफा में खोजने योग्य या आत्म परिशोधन करने योग्य हैं, आप (कुचर:) कहाँ नहीं व्यापक हो ? अर्थात् सर्व व्यापक हो, आप (गिरिष्ठा:) विद्वानों, वाणियों एवं वेदमन्त्रों में शब्द और उसके अर्थ रूप में विद्यमान हो और साथ ही सबके ऊपर शासक होने से सब के भयप्रद हो। (आ परस्या: परावत:) दूर से दूर देश अलभ्य मुक्ति धाम से हमारे हृदयों तक या 'परा' ब्रह्म-विद्या के भी (परावत:) निगूढ परम रहस्यमय भाग से आप (आजगन्थ) आते हो या प्रकट होते हो। हे इन्द्र ! परमात्मन् (सृकं) प्रसरणशील, (तिग्मं) तेजोमय, तीक्ष्ण (पविम्) परमपावन ज्ञानवज्र को (संशाय) अति तीक्ष्ण करके (शत्रून्) अन्त: शत्रुओं को राजा के समान (वितािढ)

विनाश करो और (मृधः) हमारा सर्वस्व अपहरण करने हारे चोर डाकुओं के समान तामस भावों को (विनुदस्व) परे करो, दूर हटाओ।

भद्रं कर्णेभिः शृणुयामदेवा भद्रं पश्येमाक्षभिर्यजत्राः।
स्थिरैरंगैस्तुष्टुवांसस्तनूभिर्व्यशेमहि देवहितं यदायुः ॥११॥

सामवेद उ० ९।३।९।२।१८७४

हे (देवाः) विद्वान् पुरुषो ! हम सब (कर्णेभिः) कानों से (भद्रं) कल्याणकारी एवं सदा सुखपूर्वक उत्तम उपदेशको (शृणुयाम) श्रवण करें और हे (यजत्राः) सदा यज्ञ आदि धर्म कार्यों का अनुष्ठान करने हारे भद्र पुरुषो ! हम सब (अक्षभिः) आँखों से (भद्रं) सुखकारी एवं कल्याणकारी पदार्थों का (पश्येम) दर्शन करें और (तुष्टुवांसः) ईश्वर का भजन एवं सत्य का वर्णन करते हुए (स्थिरैः) दृढ़ (अंगैः) अंगों और (तनूभिः) दृढ़ शरीरों से (यद्) जो (आयुः) आयु (देवहितं) विद्वानों के हित में लगे या देव परमात्मा जो दीर्घ आयु प्रदान करें उस दीर्घ आयु का हम (व्यशेमहि) भोग करें।

स्वस्ति न इन्द्रो वृद्धश्रवाः स्वस्ति नः पूषा विश्ववेदाः।
स्वस्ति नस्ताक्ष्यो अरिष्टनेमिः स्वस्ति नो बृहस्पतिर्दधातु ॥१२॥

सामवेद उ० ९।३।९।३।१८७५

(वृद्धश्रवाः) महान् यशस्वी और ज्ञानवान् (इन्द्रः) परमेश्वर (नः) हमारा (स्वस्ति दधातु) कल्याण करे। (विश्ववेदाः) सर्वज्ञ, सब पदार्थों का स्वामी, (पूषा) सब संसार का पालक, पोषक परमात्मा (नः स्वस्ति दधातु) हमारा कल्याण करे (अरिष्टनेमिः) जिसके कालरूप महान् शासन का कोई विनाश नहीं करता वह (ताक्ष्यः) सर्वशक्तिमान् परमेश्वर (नः स्वस्ति दधातु) हमारा कल्याण करे (बृहस्पतिः) वेदवाणी का स्वामी, पालक परमात्मा (नः स्वस्ति दधातु) हमारा कल्याण करे।

नू नो रयिं पुरुवीरं बृहन्तं दस्रा मिमाथामुभयेष्वस्मे।
नरोयद् वामश्विना स्तोममावन्त्सधस्तुतिमाजमील्हासो अग्मन्।१३।

अथर्ववेद २०।१४३।६

हे (दस्रा) दर्शनीय तथा दुःखों का क्षय करने हारे आप दोनों

(नः) हमारे (उभयेषु) स्त्री वर्ग और पुरुष वर्गों में (पुरुवीरम्) बहुत से वीर पुरुषों और पुत्रों से युक्त (वृहन्तं रयिम्) वड़े भारी ऐश्वर्य को (मिमाथाम्) उत्पन्न करो। (यत्) जब (वाम्) तुम्हारे (स्तोमम्) स्तुति समूहों को (नरः) समस्त पुरुष (आवन्) प्राप्त होते हैं तब (आजमील्हासः) धनाढ्य पुरुष भी (सधस्तुतिम्) तुम्हारी स्तुति उनके साथ ही (अग्मन्) करते हैं।

इहेह यद् वां समना पपृक्षे सेयमस्मे सुमतिर्वाजरत्ना।
उरुष्यतं जरितारं युवं ह श्रितः कामो नासत्या युवद्रिक् ॥१४॥

अथर्ववेद २०।१४३।७

हे (समना) समान चित्तवालो ! और हे (वाजरत्ना) ऐश्वर्य बल, वीर्य रूप रत्न को धारण करने वालो ! (यत्) जो उत्तम बुद्धि (इह इह) इन-इन नाना कर्मों में (पपृक्षे) तुम दोनों को प्राप्त है, (सा सुमतिः) वह उत्तम बुद्धि (अस्मे) हमें भी प्राप्त हो। (युवं) तुम दोनों ही (जरितारम्) गुण स्तवन करने वाले विद्वान् की (उरुष्यतम्) रक्षा करो। हे (नासत्या) सत्याचरण करने हारे विद्वानों ! (कामः) अभिलाषा (युवद्रिक्श्रितः) तुम्हारे आश्रय पर स्थित है।

मधुमतीरोषधीर्द्याव आपो मधुमन्नो भवत्वन्तरिक्षम्।
क्षेत्रस्य पतिर्मधुमान्नो अस्त्वरिष्यन्तो अन्वेनं चरेम ॥१५॥

अथर्ववेद २०।१४३।८

(नः) हमारे लिए (औषधीः) औषधियाँ (मधुमतीः) मधुर गुणवाली हों और (द्यावः) सूर्य की किरणें और प्रकाशमान अग्नि, सूर्य, चन्द्र आदि पदार्थ सुखकारी हों। (नः अन्तरिक्षम् मधुमद् भवतु) हमें अन्तरिक्ष सुखकर, उत्तम जलवायु के देने वाला हो। (नः) हमारा (क्षेत्रस्य) क्षेत्र का (पतिः) पालक किसान वर्ग भी (मधुमान् अस्तु) मधुर अन्नादि पदार्थों से समृद्ध हो। हम (अरिष्यन्तः) किसी प्रकार की हिंसा न करते हुए (एनम् अनु) कृषक वर्ग या क्षेत्र के स्वामी के हित और आज्ञा के अनुकूल होकर (चरेम्) वर्ताव करें।

पनाय्यं तदश्विना कृतं वां वृषभो दिवो रजसः पृथिव्याः ।
सहस्त्रं शंसा उत ये गविष्टौ सर्वां इत् ताँ उप याता पिबध्यै ।।१६।।

अथर्ववेद २०।१४३।६

हे (अश्विना) विद्वान् पुरुषो ! (वां) तुम दोनों का (तत्) वह नाना प्रकार का (कृतम्) किया हुआ कार्य (पनाय्यं) स्तुति करने योग्य है। (दिवः) द्यौलोक से (वृषभः) वर्षण करने वाला सूर्य, (रजसः वृषभः) अन्तरिक्ष से वर्षण करने वाला मेघ और उसके समान (पृथिव्या वृषभः) पृथिवी लोक का भी सर्वश्रेष्ठ सुखों का वर्षक, नरपति, (उत्) और (गविष्टौ) वाणी, पृथिवी और इन्द्रियों के प्राप्ति कार्य में (सहस्त्रं शंसाः) हजारों स्तुतिकर्त्ता ज्ञानप्रद विद्वान् पुरुष हैं (तान् सर्वान् उत्) उन सबको, (पिबध्यै) पान करने के लिए तथा ज्ञान-रस ग्रहण करने के लिए तुम सब लोग (उप यात) प्राप्त होओ।

मन: सूक्त

मन बड़ा ही चंचल है, इसकी शक्ति अति विलक्षण है। एक ही स्थान पर बैठे मानव का मन पल भर में सहस्रों मील की यात्रा करता हुआ कहीं से कहीं पहुँच जाता है। नाना प्रकार के संकल्प और विकल्पों में लगा रहता है। एक भी क्षण खाली नहीं रहता, यहाँ तक कि रात्रि को सोते समय भी स्वप्न के रूप में सुदूर भ्रमण करने चला जाता है। इसको स्थिर करना बड़ा कठिन है। जब यह स्थिर होकर शुभ संकल्पों की संगत में आ जाता है तो वह मानव देवत्व की ओर गति करके परम पद को प्राप्त कर लेता है, और जब दुष्ट विकल्पों की संगत में आ जाता हैं तो वह मानव से दानवता की ओर गति करके अपना अधःपतन कर लेता है। मन एक जड़ पदार्थ है, इस तरल पदार्थ का निर्माण भोजन के द्वारा होता है, हम जैसा भोजन पायेंगे हमारा मन वैसा ही बन जायगा।

अन्नमशितं त्रेधा विधीयते तस्य वः
स्यविष्ठो धातुस्तत् पुरीषं भवति,
यो मध्यम स्तन्मा ँ सं यो ऽ णिष्ठस्तन्मनः ।।

छान्दोग्य उपनिषद् ६।५।१

जब अन्न खाया जाता है, तो वह तीन प्रकार का बन जाता है, उसका सबसे स्थूल भाग मल बन जाता है, जो मध्य भाग हैं वह मांस और जो सूक्ष्म भाग है वह 'मन' बन जाता है। एक कहावत चरितार्थ है– 'जैसा खावे अन्न वैसा बने मन'। व्यवहार में भी यही देखने में आता है, जो मानव माँस आदि का भोजन पाते हैं उनका मन क्रूर, हिंसक और निर्दयी बन जाता है, जो मानव अण्डा प्याज आदि उत्तेजक पदार्थ खाते हैं वह अधिक विषयी बन जाते हैं और जो मानव कन्द-मूल,फल, दूध,

अन्न आदि का सात्विक आहार करते हैं वह हिंसा, क्रूरता, कामुकता आदि दोषों से दूर रह कर शान्त और सात्विक वृत्ति के बने रहते हैं। इसी कारण से छान्दोग्य उपनिषद् में आहार की शुद्धि पर बहुत बल दिया गया है।

आहार शुद्धौ सत्त्वशुद्धिः सत्त्वशुद्धौ ध्रुवा स्मृतिः।
स्मृतिलम्भे सर्वग्रन्थीनां विप्रमोक्षः ।।

छान्दोग्य उपनिषद् ७।२५।२

जब मनुष्य का आहार शुद्ध हो जाता है, तो स्मृति शुद्ध हो जाती है और जब स्मृति पक्की हो जाती है तब सारी गाँठें (ज्ञान तन्तु) खुल जाते हैं।

हमारा मन रोग रहित हो, शिव संकल्प वाला हो, शुद्ध हो, विकारों से रहित हो। इस पर ही इस सूक्त में विचार किया गया है।

सूक्त

यत्ते यमं वैवस्वतं मनो जगाम दूरकम्।
तत्त आ वर्तयामसीह क्षयाय जीवसे ।।१।।

ऋग्वेद १०।५८।१

हे मनुष्य ! (यत् ते मनः) जो तेरा मन (दूरकम्) दूर तक (वैवस्वतं यमं) विविध लोकों और ऐश्वर्यों के स्वामी, सर्वनियन्ता प्रभु को भी (जगाम) पहुँच जाता है (ते) तेरे (तत्) उसको भी हम लोग (इह क्षयाय जीवसे) यहाँ रहने और जीवन लाभ करने के लिए (आ वर्त्तयामसि) पुनः लौट आता है अर्थात् पुनः पाते हैं।

यत्ते दिवं यत्पृथिवीं मनो जगाम दूरकम्।
तत्त आ वर्तयामसीह क्षयाय जीवसे ।।२।।

ऋग्वेद १०।५८।२

हे मनुष्य ! (यत् ते मनः) जो तेरा मन (दिवं पृथिवीम् दूरकं जगाम) आकाश भूमि को वा दूरस्थ पदार्थ तक भी चला जाता है, उसको भी (इह जीवसे क्षयाय) यहाँ जीवन लाभ करने और ऐश्वर्य प्राप्त करने के लिए (आ वर्त्तयामसि) पुनः लौटा लेते हैं।

यत्ते भूमिं चतुर्भृष्टिं मनो जगाम दूरकम् ।
तत्त आ वर्तयामसीह क्षयाय जीवसे ॥३॥

ऋग्वेद १०।५८।३

हे जीव ! जो तेरा मन (यत् ते मनः चतुर्भृष्टिम् भूमिम् दूरकम् जगाम)चारों ओर भ्रंश वाली गोल भूमि को प्राप्त करके दूर चला जाता है, (तत्) उसको हम (इह क्षयाय) यहाँ ऐश्वर्य और निवास तथा (जीवसे) जीवन प्राप्त करने के लिए (ते आ वर्त्तयामसि) लौटा लेवें ।

यत्ते चतस्त्रः प्रदिशो मनो जगाम दूरकम् ।
तत्त आ वर्तयामसीह क्षयाय जीवसे ॥४॥

ऋग्वेद १०।५८।४

(यत् ते मनः) जो तेरा मन (चतस्त्रः प्रदिशः दूरकम् जगाम) चारों दिशाओं में दूर चला जावे (ते तत्) तेरे उस मन को (इह क्षयाय जीवसे) यहाँ ऐश्वर्य, निवास, जीवन आदि लाभ के लिए (आ वर्त्तयामसि) लौटा लेवें ।

यत्ते समुद्रमर्णवं मनो जगाम दूरकम् ।
तत्त आ वर्तयामसीह क्षयाय जीवसे ॥५॥

ऋग्वेद १०।५८।५

(यत् ते मनः अर्णवं दूरकं जगाम तत्त०) जो तेरा मन समुद्र तक दूर चला जाता है उसको हम यहाँ के ऐश्वर्य, निवास और जीवन सुख के लिए पुनः-पुनः लौटा लेवें ।

यत्ते मरीचीः प्रवतो मनो जगाम दूरकम् ।
तत्त आ वर्तयामसीह क्षयाय जीवसे ॥६॥

ऋग्वेद १०।५८।६

(यत् ते मनः प्रवतः मरीचीः दूरकं जगाम) जो तेरा मन व्यर्थ आकाश वाली मरुमरीचिका तुल्य तृष्णाओं को प्राप्त कर दूर-दूर चला जाता है उसको (इह क्षयाय जीवसे) यहाँ सत्पथ में रहने और सुख से जीवन व्यतीत करने के लिए (आ वर्त्तयामसि) पुनः लौटा लेवें ।

यत्ते अपो यदोषधीर्मनो जगाम दूरकम् ।
तत्त आ वर्तयामसीह क्षयाय जीवसे ॥७॥

ऋग्वेद १०।५८।७

(यत् ते मनः अपः ओषधीः दूरकं जगाम) जो तेरा मन जलों, औषधियों को प्राप्त करने की आशा से दूर-दूर तक जाता है उसको हम (इह क्षयाय जीवसे) यहाँ रहने और सुख पूर्वक जीवन व्यतीत करने के लिए (आ वर्त्तयामसि) लौटा लेवें ।

यत्ते सूर्यं यदुषसं मनो जगाम दूरकम् ।
तत्त आ वर्तयामसीह क्षयाय जीवसे ॥८॥

ऋग्वेद १०।५८।८

(यत् ते मनः सूर्यं उषसम् दूरकम् जगाम) जो तेरा मन सूर्य वा प्राभातिक वेला को लक्ष्य कर दूर चला जाता है, उसको (इह क्षयाय जीवसे तत् ते आ वर्त्तयामसि) यहाँ ऐश्वर्य प्राप्ति, निवास एवं सुखमय जीवन के लाभार्थ पुनः प्राप्त करें ।

यत्ते पर्वतान्बृहतो मनो जगाम दूरकम् ।
तत्त आ वर्तयामसीह क्षयाय जीवसे ॥९॥

ऋग्वेद १०।५८।९

(यत् ते मनः बृहतः पर्वतान् दूरकं जगाम) जो तेरा मन बड़े-बड़े पर्वतों को लक्ष्य कर दूर-दूर तक जाता है (ते तत् इह क्षयाय जीवसे) उसको यहाँ रहने और जीवन लाभ के लिए (आवर्त्तयामसि) लौटा लेवें ।

यत्ते विश्वमिदं जगन्मनो जगाम दूरकम् ।
तत्त आ वर्तयामसीह क्षयाय जीवसे ॥१०॥

ऋग्वेद १०।५८।१०.

(यत् ते मनः इदं विश्वं दूरकं जगाम) जो तेरा मन इस विश्व को लक्ष्य कर दूर तक चला जाता है उसको (तत् इह क्षयाय जीवसे आ वर्त्तयामसि) हम यहाँ रहने और जीवन के लिए पुनः लौटा लेवें ।

यत्ते पराः परावतो मनो जगाम दूरकम् ।
तत्त आ वर्तयामसीह क्षयाय जीवसे ।।११।।

ऋग्वेद १०।५८।११

(यत् ते मनः पराः परावतः दूरकं जगाम) जो तेरा मन दूर-दूर के देशों को लक्ष्य करके दूर चला जाता है (ते तत् इह क्षयाय जीवसे) तेरे उस चित्त को हम यहाँ रहने और जीने के लिए लौटाते हैं।

यत्ते भूतं च भव्यं च मनो जगाम दूरकम् ।
तत्त आ वर्तयामसीह क्षयाय जीवसे ।।१२।।

ऋग्वेद १०।५८।१२

(यत् ते मनः भूतं भव्यं च दूरकं जगाम) जो तेरा मन भूत और भविष्य काल के विषयों में दूर तक चला जाता है (ते तत् क्षयाय जीवसे) उसको यहाँ दीर्घ काल तक रहने और जीवन व्यतीत करने के लिए (आवर्त्तयामसि) लौटा लेते हैं।

अस्थिर चित्त वाले पुरुष का चित्त अस्थिरता की दशा में इधर-उधर दूर-दूर तक मनोहारी पदार्थों को देखकर भटकता है, उसको व्यर्थ न भटकाकर यहाँ उत्तम ऐश्वर्य सुख निवास और जीवन की सफलता के लिए ही पुनः आवर्त्तन कर लेना चाहिए। इसी को 'प्रत्याहार' का अभ्यास कहा जाता है।

नासदीय सृष्टि सूक्त

इस सूक्त में सृष्टि की पूर्व दशा का उल्लेख "जगत्सर्ग के पूर्व प्रलय अवस्था में अव्यक्त दशा। सबसे अधिक सूक्ष्म परमशक्ति तत्त्व का रूप। सृष्टि के पूर्व क्या था? तमस्तत्त्व। ईश्वरीय जगत् सर्ग, संकल्प रूप। असत् अम्भस् सलिलादि का विस्तार, उसमें अन्य शक्तियाँ और प्रभु की स्वधा शक्ति। जगत् का मूल कारण अज्ञेय। मूल तत्व को जानने वाला है तो एकमात्र परमेश्वर ही है" निम्न प्रकार है। इसी के साथ ही सृष्टि उत्पत्ति के काल का भी उल्लेख करते हैं।

सृष्टि की पूर्ण आयु 'चार अरब, बत्तीस करोड़ वर्ष' की है जिसमें एक हजार चतुर्युगियाँ होती हैं। सतयुग = 'सत्रह लाख, अठ्ठाईस हजार वर्ष' का। त्रेता = 'बारह लाख, छियानवे हजार वर्ष' का। द्वापर = 'आठ लाख, चौसठ हजार वर्ष' का। कलियुग = 'चार लाख, बत्तीस हजार वर्ष' का। सब मिलकर एक चतुर्युगी कहलाती है, जिसमें 'तैंतालीस लाख, बीस हजार वर्ष' होते हैं। 'इकहत्तर' चतुर्युगियों का एक मनवन्तर होता है। कुल चौदह मनवन्तर की एक सृष्टि अर्थात् एक ब्रह्म दिन होता है। १–स्वायंभव, २–स्वरोचिष, ३–औत्तमि, ४–तामस, ५–रैवत, ६–चाक्षुष, ७–वैवस्वत, ८–स्वार्वाणिक, ९–दक्ष सार्वाणि, १०–ब्रह्म सार्वाणि ११–धर्म सार्वाणि, १२–सार्वाणि, १३–रुचि, १४–भौम। यह 'चौदह' मनवन्तर अर्थात् नौ सौ चौराणवे चतुर्युगियों की एक मानव सृष्टि होती है। शेष छः चतुर्युगियों में से तीन चतुर्युगियाँ सृष्टि बनने के प्रारम्भ से मानव सृष्टि होने के दिन तक सृष्टि की सम्पूर्ण रचना में लग जाते हैं। इसी प्रकार मानव की प्रलय के दिन से शेष तीन चतुर्युगियाँ सृष्टि के सम्पूर्ण विलय

होने में लग जाती हैं। इन्हीं दोनों कालों को पूर्व सन्धिकाल और पश्चात् अर्थात् अन्त सन्धिकाल भी कहते हैं।

अबं तक छः मनवन्तर व्यतीत हो चुके हैं, जिसके 'एक अरब, चौरासी करोड़, तीन लाख, बीस हजार वर्ष' हुए और सातवें वैवस्वत मनवन्तर की सत्ताईस चतुर्युगियाँ व्यतीत हो चुकी हैं, जिसके 'ग्यारह करोड़ छियासठ लाख, चालीस हजार वर्ष हो चुके हैं, इसमें अट्ठाईसवीं चतुर्युगो के सत्युग, त्रेता, द्वापर के 'अड़तीस लाख, अट्ठासी हजार' वर्ष हो चुके, इसमें कलियुग के ५०८६ वर्ष व्यतीत हो चुके हैं, और 'चार लाख, छब्बीस हजार, नौ सौ, चौदह वर्ष' अभी शेष हैं। अर्थात् 'बारह करोड़, पाँच लाख, तैंतीस हजार, छियासी वर्ष' वैवस्वत मनवन्तर के व्यतीत हो चुके हैं। इस प्रकार मानव का निर्माण हुए 'एक अरव, छियानवे करोड़, आठ लाख, तरेपन हजार, छियासी' वर्ष व्यतीत हो चुके हैं और 'दो अरब, तैंतीस करोड़, बत्तीस लाख, छब्बीस हजार नौ सौ चौदह' वर्ष शेष हैं, इसमें 'दो करोड़, उनसठ लाख, बीस हजार' वर्ष सन्धिकाल के मिलाकर 'चार अरब, बत्तीस करोड़' वर्ष की एक सृष्टि होती है। मानव सृष्टि वेदकाल का ८७वाँ वर्ष, चैत्र शुक्ल प्रतिपदा विक्रम ,सम्वत् २०४३ तदनुसार १० अप्रेल सन् १९८६ ई० गुरुवार से प्रारम्भ हुआ है।

यजुर्वेद ७।३० में छः ऋतुओं का वर्णन है। यह छः ऋतुयें यदि संसार के किसी भू भाग पर होती हैं तो वह केवल 'आर्यवर्त' देश तदकालीन 'भारत वर्ष' ही है। १–वसन्त ऋतु = मधुः माधव (चैत्र, वैषाख) २–ग्रीष्म ऋतु = शुक्रः शुचिः (ज्येष्ठ, आषाढ़) ३–वर्षा ऋतु = नभः, नभस्य (श्रावण भादों) ४–शरद् ऋतु = इषः ऊर्ज (आश्विन, कार्तिक) ५–हेमन्त ऋतु = सहः, सहस्यः (मार्गशीष, पौष) ६–शिशिर ऋतु = तपः, तपस्यः (माघ, फाल्गुन) इस प्रकार छः ऋतुओं के १२ मास का एक वर्ष बनता है। वर्ष के दो पक्ष होते हैं एक 'उत्तरायन' जिसमें प्रारम्भ की तीन ऋतुऐं होती हैं और दूसरा 'दक्षिणायन' जिसमें अन्त की तीन ऋतुऐं होती हैं। यह ऋतुएं सूर्य की गति से बनती हैं। इसी प्रकार मास के भी दो पक्ष होते हैं। एक 'शुक्ल पक्ष' जिसमें चन्द्रमा की कलायें बढ़ती हैं, दूसरा 'कृष्ण पक्ष' जिसमें चन्द्रमा की कलायें घटती हैं, इस प्रकार चन्द्रमा की गति से मास की गणना होती है। तीन वर्ष की चन्द्रमास की गणना में ३७ चन्द्रमास बनते हैं। इसी कारण प्रत्येक तीसरे वर्ष मलमास जिसे वेद में 'अंहसस्पति' मास कहा है बनता है।

सप्ताह में सात दिन होते हैं जिस दिन सृष्टि की उत्पत्ति हुई उस समय ब्रह्ममुहूर्त के प्रथम प्रभात में पूर्व दिशा की ओर से उदित होते हुए प्रकाश के पुञ्ज सूर्य के सबने दर्शन किये, 'सूर्य' को 'रवि' भी कहते हैं इस लिये इस दिन का सम्बोधक नाम 'रविवार' रखा गया, अगले दिन सायंकाल के समय पश्चिम दिशा में दूज के चन्द्रमा की रेखा को देख कर इस दिन का सम्बोधक नाम 'चन्द्रवार' रखा गया, चन्द्रमा को सोम भी कहते हैं, इस कारण 'सोमवार' भी कहा जाता है। अगले दिन भूमि पर उगे हुए नाना प्रकार के सुन्दर और स्वादु पदार्थों को देखकर आनन्दित हो उठे, इस कारण इस दिन का सम्बोधक नाम 'भौमवार' रखा गया, समस्त पदार्थों को प्रदान करने वाली और मंगलकारी होने से इसे 'मंगलवार' भी कहते हैं। अगले दिन बुद्धि का विकास हुआ इस कारण इस दिन का सम्बोधक नाम 'बुद्धवार' रखा गया। अगले दिन अग्नि, वायु, आदित्य, अंगिरा ऋषियों के द्वारा वेद ज्ञान सुना और यहीं से गुरु-शिष्य की परम्परा का जन्म हुआ इसी कारण इस दिन का सम्बोधक नाम 'गुरुवार' रखा गया अगले दिन शुक्र की जागृति होने लगी स्त्री-पुरुष के सम्पर्क की इच्छा होने से इस दिन का सम्बोधक नाम 'शुक्रवार' रखा गया। अगले दिन स्वार्थ वृत्ति की भावना उमड़ पड़ी, तेरा मेरा होने लगा, बुद्धियों पर तामसपन छाने लगा, तमोगुण की अधिकता के कारण क्रोध की मात्रा बढ़ने लगी इसी कारण इस दिन का सम्बोधक नाम तमोगुण सूचक 'शनिवार' रखा गया।

इस प्रकार मनवन्तर से लेकर दिन तक का सम्पूर्ण विवरण आपके अवलोकनार्थ प्रस्तुत किया गया है।

सूक्त

नासदासीन्नो सदासीत्तदानीं नासीद्रजो नो व्योमा परो यत्।
किमावरीवः कुह कस्य शर्मन्नम्भः किमासीद्गहनं गभीरम् ॥१॥

ऋग्वेद १०।१२९।१

(तदानीम्) इस जगत् के उत्पन्न होने के पूर्व (न असत् आसीत्) न असत् था (नो सत् आसीत्) और न सत् था। (न रजः आसीत्) उस समय नाना लोक भी न थे। (नो व्योम) न आकाश था। (यत् परः) जो उससे भी परे है वह भी न था। उस समय (किम् आ अवरीवाः)

क्या पदार्थ सबको चारों ओर से घेर सकता था ? (कुह) वह सब फिर कहाँ था और (कस्य शर्मन्) किसके आश्रय में था। तो फिर (किम्) क्या (गहनं गभीरं अम्भः आसीत्) गहन और गम्भीर का समुद्री जल तो कहाँ ही था।

न मृत्युरासीदमृतं न तर्हि न रात्र्या अह्न आसीत्प्रकेतः।
आनीदवातं स्वधया तदेकं तस्माद्धान्यन्न परः किं चनास ॥२॥

ऋग्वेद १०।१२९।२

(मृत्युः न आसीत्) उस समय मृत्यु न थी,(तर्हि न अमृतम्) और उस समय न अमृतत्व था। अर्थात् जीवन की सत्ता, जीवन का लोम दोनों नहीं थे। (नः रात्र्याः प्रकेतः आसीत्) न रात्रि का ज्ञान था और (न अह्नः प्रकेतः आसीत्) न दिन का ज्ञान था। उस तत्व का स्वरूप (आनीत्) प्राणशक्ति रूप था, परन्तु (अवातम्) स्थूल वायु न थी। (तत् एकम्) वह एक (स्वधया) अपने ही बल से समस्त जगत् को धारण करने वाला अपनी शक्ति से युक्त था, (तस्मात् अन्यन) उससे दूसरा पदार्थ (किंचन) कुछ भी (परः न आस) उससे अधिक सूक्ष्म न था।

तम आसीत्तमसा गुळहमग्रे ऽ प्रकेतं सलिलं सर्वमा इदम् ॥
तुच्छयेनाभ्वपिहितं यदासीत्तपसस्तन्महिनाजायतैकम् ॥३॥

ऋग्वेद १०।१२९।३

(अग्रे) सृष्टि से पूर्व (तमः आसीत्) 'तमस्' था। यह सब (तमसा गूड़म्) तमस से व्याप्त था। वह (अप्र-केतम्) कुछ भी विशेष ज्ञानयोग्य न था। वह (सलिलम्) एक व्यापक गतिमत् तत्व था, जो (सर्वम् इदम् आ) इस समस्त को व्यापे हुए था। उस समय (यत्) जो था भी वह (तुच्छयेन) सूक्ष्म रूप से (आभ्-अपिहितम्) चारों ओर से ढका हुआ था (तत्) वह (तपसः महिना) तपस के महान् सामर्थ्य से (एकम्) एक (अजायत) प्रकट हुआ।

कामस्तदग्रे समवर्तताधि मनसो रेतः प्रथमं यदासीत्।
सतो बन्धुमसति निरविन्दन्हृदि प्रतीष्या कवयो मनीषा ॥४॥

ऋग्वेद १०।१२९।४

(अग्रे) सृष्टि से पूर्व (तत्) वह (मनसः अधि) मन से उत्पन्न होने

वाली (कामः) इच्छा के समान एक कामना ही (सम् अवर्तत) सर्वत्र विद्यमान थी, (यत् प्रथमम् रेतः आसीत्) जो सबसे प्रथम इस जगत् का प्रारम्भिक वीजवत् थी। (कवयः) क्रान्तदर्शी पुरुष (हृदि प्रति इष्य) हृदय में पुनः पुनः विचार कर (असति) अप्रकट तत्व में ही (सतः बन्धुम्) सत् रूप प्रकट तत्व को बाँधने वाला बल (निर् अविन्दन्) प्राप्त करते हैं।

तिरश्चीनो विततो रश्मिरेषामधः
स्विदासी ३ दुपरि स्विदासी३त्।
रेतोधा आसन्महिमान आसन्त्स्वधा
अवस्तात्प्रयतिः परस्तात् ॥५॥

ऋग्वेद १०।१२९।५

(एषाम्) इन पूर्वोक्त तत्वों की रश्मि (रश्मिः) सूर्य रश्मि के समान (तिरः चित् विततः) बहुत दूर-दूर तक व्याप्त हुई, (अधः स्वित् आसीत्) नीचे भी और (उपरिस्वित् आसीत्) ऊपर भी (रेतः-धाः आसन्) 'रेतस' को धारण करने वाले तत्व भी थे। (महिमानः आसन्) वे महान् सामर्थ्य वाले थे। (अवस्तात् स्वधा) 'स्वधा' अर्थात् प्रकृति नीची बनाई गई है और (परस्तात प्रयतिः) उससे ऊँची शक्ति प्रयत्न वाला आत्मा है।

को अद्धा वेद क इह प्र वोचत्कुत
आजाता कुत इयं विसृष्टिः।
अर्वाग्देवा अस्य विसर्जनेनाथा
को वेद यत आबभूव ॥६॥

ऋग्वेद १०।१२९।६

(अद्धा कः वेद) ठीक-ठीक जान सकता है? (इह कः प्रवोचत्) इस विषय में कौन उत्तम रीति से प्रवचन या उपदेश कर सकता है? (कुतः आ जाता) कि यह सृष्टि कहाँ से प्रकट हुई? (इयं विसृष्टिः) यह विविध प्रकार का सर्ग (कुतः) किस मूल कारण से और क्यों हुआ? (देवः) विद्वान लोग भी (अस्य वि-सर्जनेन) इस जगत् को विविध प्रकार

से रचने वाला मूल कारण के (अर्वाक) पश्चात् ही हुए हैं। (अथ कः वेद) तो फिर कौन उसको जानता है (यतः) जिससे यह (आ बभूव) चारों ओर प्रकट हुआ ?

इयं विसृष्टिर्यत आबभूत यदि
वा दधे यदि वा न।
यो अस्याध्यक्षः परमे व्योमन्त्सो
अङ्ग वेद यदि वा न वेद ॥७॥

ऋग्वेद १०।१२९।७

(इयं विसृष्टिः) यह विविध प्रकार की सृष्टि (यतः आ बभूव) जिस मूल तत्व से प्रकट हुई है, (यदि वा दधे) जो इस जगत् को धारण कर रहा है या यदि कोई (यदि वा न) इसे नहीं भी धारण कर रहा। (यः अस्य अध्यक्षः) जो इसका अध्यक्ष (परमे व्योमन्) परमपद में विद्यमान है, (सः अंग वेद) हे विद्वान्! वह सब तत्व जानता है। (यदि वा न वेद) चाहे और कोई भले ही न जाने।

मनस पाप शुद्धि सूक्त

मानव जीवन की सबसे बड़ी निधि चरित्र है, चरित्र का निर्माण आचरण की शुद्धि से होता है, आचरण व्यवहार को भी कहते हैं। यदि हम प्रत्येक कार्य और परस्पर व्यवहार को करते समय विचारपूर्वक आचरण की शुद्धि पर ध्यान रखें तो हम बहुत से दोषों, दुर्गुणों और दुर्व्यवहारों के करने से बच सकते हैं।

धन गया कुछ नहीं गया।
स्वास्थ्य गया कुछ गया।
चरित्र गया सब कुछ गया।

हमारे विचार कैसे हों, हमारा आचरण कैसे शुद्ध बने, हमारा परस्पर का व्यवहार कैसा हो, हम उत्तम चरित्र के स्वामी कैसे बनें। इन मन्त्रों में यही शिक्षा दी गई है। क्योंकि धनवान और राजा अपने राज्य में ही सम्मान को पाता है, परन्तु चरित्रवान सर्वत्र सम्मानित होता है। विचारवान, आचारवान, व्यवहारवान व्यक्ति मन और बुद्धि आदि की शुद्धि पर सदैव ध्यान रखते हुए चरित्रवान बनने के पथ पर अग्रसर होते हुए दृढ़ संकल्पी बनकर दानव से मानवता की ओर मानव से देवत्व की ओर बढ़ते हुए परमपद मोक्ष प्राप्ति के लक्ष्य को ग्रहण करते हैं।

सूक्त

पुनन्तु मा देवजनाः पुनन्तु मनसा धियः ।
पुनन्तु विश्वा भूतानि जातवेदः पुनीहि मा ॥१॥

यजुर्वेद १९।३९

(मा) मुझको (देवजना:) दानशील, गुरु आदि जन (पुनन्तु) पवित्र करें। (मनसा धिय:)मन, विज्ञान से किये कर्म मुझे पवित्र करें। (विश्वा) समस्त (भूतानि) प्राणिगण और पृथिवी, आप:, तेज, वायु आकाश, आदि पदार्थ और हे (जातवेद:) विद्वान और परमेश्वर ! ये सब (मा पुनन्तु) मुझे पवित्र करें।

पवित्रेण पुनीहि मा शुक्रेण देव दीद्यत् ।
अग्ने क्रत्वा क्रतूँ १ ऽ रनु ॥२॥

यजुर्वेद १९।४०

हे (देव) देव! आचार्य ! हे (दीद्यत्) दीप्यमान ! तेजस्विन् ! हे (अग्ने) ज्ञानवान ! (मा) मुझको (शुक्रेण) दीप्तिमय (पवित्रेण) अपने पवित्र ज्ञान के उपदेश से (पुनीहि) पवित्र कर और (क्रत्वा) ज्ञान और उत्तम कर्म से (अनु) तदनुसार किये (क्रतून्) हमारे कर्मों, ज्ञानों आचरणों को भी पवित्र कर।

यत्ते पवित्रमर्चिष्यग्ने विततमन्तरा ।
ब्रह्म तेन पुनातु मा ॥३॥

यजुर्वेद १९।४१

हे (अग्ने) परमेश्वर ! (ते) तेरे (अर्चिषि) शुद्ध तेज के (अन्तरा) बीच में (पवित्रम्) पवित्र, (ब्रह्म) वेद ज्ञान (विततम्) विस्तृत है (तेन मा पुनातु) उससे तू मुझे पवित्र कर। विद्वान् (अर्चिषि अन्तरा) ज्वाला के समान तेजस्वी मुख या जिह्वा पर स्थित (पवित्रं ब्रह्म विततम्) पवित्र ब्रह्म, वेद मन्त्रों के उपदेश से पवित्र करें।

पवमानः सो ऽ अद्य नः पवित्रेण विचर्षणिः ।
यः पोता स पुनातु मा ॥४॥

यजुर्वेद १९।४२

(य:) जो (अद्य) आज, नित्य ही, (विचर्षण:) सबका सूर्य के

समान द्रष्टा, (पवमानः) सबका पवित्रकर्त्ता एवं व्यापक, (पोता) अग्नि के समान शोधक परमेश्वर, विद्वान है (सः) वह (नः) हमें (पवित्रेण) ज्ञान और कर्म से (मा) मुझको (पुनातु) पवित्र करे।

यद्देवा देवहेडनं देवासश्चकृमा वयम्।
अग्निर्मा तस्मादेनसो विश्वान्मुञ्चत्व ँ हसः ॥५॥

यजुर्वेद २०।१४

हे (देवाः) विजिगीषु पुरुषो! (देवासः) विजयशील (वयम्) हम लोग (यत्) जो भी (देव-हेडनम्) ज्ञानी पुरुषो का अपराध (चकृम) करें (अग्निः) ज्ञानवान् परमेश्वर, आचार्य और राजा (मा) मुझको (तस्मात्, विश्वात्) उस प्रकार के सब (एनसः) पापों से (मुञ्चतु) मुक्त करे।

यदि दिवा यदि नक्तमेना ँ सि चकृमा वयम्।
वायुर्मा तस्मादेनसो विश्वान्मुञ्चत्व ँ हसः ॥६॥

यजुर्वेद २०।१५

(यदि) चाहे (दिवा) दिन के समय (यदि नक्तम्) चाहे रात्रि काल में (वयम्) हम लोग (एनांसि) अपराध और पाप (चकृम) करें तो भी (वायुः) व्यापक परमेश्वर, आप्त पुरुष एवं राजा (तस्मात् विश्वात् एनसः) उस सब अपराध से और (विश्वात् अंहसः) सब प्रकार के पाप से भी (मा मुञ्चतु) मुझे मुक्त करे।

यदि जाग्रद्यदि स्वप्न ऽ एना ँ सि चकृमा वयम्।
सूर्यो मा तस्मादेनसो विश्वान्मुञ्चत्व ँ हसः ॥७॥

यजुर्वेद २०।१६

(यदि जाग्रत्) यदि जागते और (यदि स्वप्ने) यदि सोते में भी (वयम्) हम (एनांसि) पाप (चकृम) करें तो (सूर्यः) तेजस्वी परमेश्वर, विद्वान, राजा (मा) मुझको (तस्मात् एनसः) उस पाप से और (विश्वात् अंहसः) समस्त प्रकार के पाप से (मुञ्चतु) मुक्त करे।

यद् ग्रामे यदरण्ये यत्सभायां यदिन्द्रिये।
यच्छूद्रे यदर्ये यदेमश्चकृमा वयं
यदेकस्याधि धर्मणि तस्यावयजनमसि ॥८॥

यजुर्वेद २०।१७

(वयम्) हम (यत्) जो (एनः) पाप (ग्रामे) ग्राम में, (यत् अरण्ये)

जो जंगल में, (यत् सभायाम्) जो सभा में और (यत् इन्द्रिये) जो अपराध परस्त्री दर्शन आदि से चित्त में और चक्षु आदि इन्द्रियों में, (यत् शूद्रे) जो सेवक जन पर (यद् अर्ये) और जो स्वामी के प्रति, (चकृम) करें और (यत्) जो अपराध हम (एकस्य) किसी भी पुरुष के (धर्मणि अधि) धर्म या कर्तव्य-पालन के भंग करने में करें (तस्य) उस अपराध का, हे परमेश्वर ! राजन ! तू (अवयजनम्) नाश करने वाला (असि) हो।

यद् विद्वांसो यदविद्वांस एनांसि चकृमा वयम् ।
यूयं नस्तस्मान्मुञ्चत विश्वे देवाः सजोषसः ॥९॥

अथर्ववेद ६।११५।१

(वयम्) हम (यद्) जब-जब (विद्वांसः) जानते हुए या (अविद्वांसः) बिना जाने हुए (एनांसि) पाप कर्म (चकृम) करें, हे (विश्वे देवाः) समस्त विद्वान् पुरुषो ! आप लोग (स जोषसः) एक मत होकर (तस्मात्) उस पाप से (नः) हमें (मुञ्चत) मुक्त कराओ।

यदि जाग्रद् यदि स्वपन्नेन एनस्यो ऽकरम् ।
भूतं मा तस्माद् भव्यं च द्रुपदादिव मुञ्चताम् ॥१०॥

अथर्ववेद ६।११५।२

(यदि) मैं (एनस्यः) पापी होकर (जाग्रद्) जागते हुए (यदि) या (स्वपन्) सोते हुए (एनः) पाप (अकरम्) करूँ तो जैसे (द्रुपदात् इव) द्रुपद अर्थात् खूंटे से बँधे हुए पशु को मुक्त कर दिया जाता है, वैसे ही मेरे साथ लगे (भूतम्) भूतकाल के और (भव्यं) भविष्यत् काल के पाप को (तस्यात्) उक्त प्रकार से मुझे (मुञ्चताम्) छुड़ाओ।

द्रुपदादिव मुमुचानः स्विन्नः स्नात्वा मलादिव ।
पूतं पवित्रेणेवाज्यं विश्वे शुम्भन्तु मैनसः ॥११॥

अथर्ववेद ६।११५।३

(द्रुपदात् मुमुचानःइव) जैसे पशु खूँटे से मुक्त हो जाता है और (स्विन्नः) पसीने से भीगा पुरुष (स्नात्वा) नहाकर (मलात्इव)जैसे मल से रहित हो जाता है और जैसे (पवित्रेण) पवित्र अर्थात् छानने के कपड़े से

(पूतम्) छान लिया गया (आज्यम्) घृत या जल पवित्र हो जाता है वैसे ही (विश्वे) समस्त विद्वान् पुरुष (मा) मुझे (एनसः) पाप से (शुम्भन्तु) शुद्ध करें।

वैवस्वतः कृणवद् भागधेयं
मधुभागो मधुना सं सृजाति।
मातुर्यदेन इषितं न आगन् यद्
वा पितापराद्धो जिहीडे ॥१२॥

अथर्ववेद ६।११६।२

(वैवस्वतः) राष्ट्र का स्वामी (भागधेयं कृणवत्) सबके हिस्सों का विभाग करता है और (मधु-भागः) अन्न का भाग लेने वाला राजा सबको (मधुना सं सृजाति) अन्न से युक्त करता है। राजा का भाग न देने से (यत्) प्रथम तो (मातुः) पृथिवी या प्रजा का (इषितम्) अभिलषित अन्न (नः) हमारे पास (एनः) पाप रूप में (आ गन्) आ जाता है। (वा) और दूसरा यह (यद्) कि (पिता) पालन करने वाला राजा (अपराद्धः) अपराध करने पर (जिहीडे) क्रोध करता है अतः जिसका जो भाग हो, उसको अवश्य देना चाहिये।

दाम्पत्य सूक्त

विवाह का लक्ष्य ! यौवन तरंगों के ज्वार को विवाह के तटबन्धों के बीच बाँधकर गृहस्थ जीवन अर्थात् एक पति एक पत्निव्रत धर्म की पवित्रता को स्थिर करने के लिए विवाहित युगल के मध्य काम का केन्द्रीयकरण कर देना एवं शेष स्त्री-पुरुषों को मात्र-पितृवत भाव की दृष्टि से देखना ही विवाह का लक्ष्य है। इसके पश्चात् ही दाम्पत्य जीवन का प्रादुर्भाव होता है। इस जीवन यात्रा का क्या लक्ष्य है, इसे कैसे सुखी बनाया जाय, इस जीवन का क्या-क्या उत्तरदायित्व होता है, इसमें क्या क्या सावधानियाँ रखनी चाहिए,आपसी व्यवहार कैसा हो, अन्य परिवार जनों के प्रति और सन्तान के प्रति कैसा व्यवहार होना चाहिये आदि-आदि विषयों पर इस सूक्त में विचार किया गया है।

सूक्त

सोमो वधूयुरभवदश्विनास्तामुभा वरा ।
सूर्यां यत् पत्ये शंसन्तीं मनसा सविताददात् ॥१॥

अथर्ववेद १४।१।९

जब (सोमः) वीर्यवान् पुरुष (वधूयुः) वधू की कामना से युक्त (अवभत्) होवे । तब (अश्विनौ) स्त्री और पुरुष (उभौ) दोनों (वरा) परस्पर एक-दूसरे का वरण करने वाले (आस्ताम्) होवें और (यत्) जब दोनों की अभिलाषा पूरी तरह से हो तब (पत्ये) पति की (शंसन्तीम्) अभिलाषा करने वाली (सूर्याम्) कन्या को (सविता) उसका उत्पादक पिता (मनसा) अपने मन संकल्प द्वारा (अददात्) दान करे, पति के हाथ सौंप दे ।

इहैव स्तं मा वि यौष्टं विश्वमायुर्व्यश्नुतम् ।
क्रीडन्तौ पुत्रैर्नप्तृभिर्मोदमानौ स्वस्तकौ ॥२॥

अथर्ववेद १४।१।२२

हे वरवधू ! तुम दोनों (इह एव) इस गृहस्थ आश्रम में (स्तं) रहो। (मा वि यौष्टम्) कभी वियुक्त न हुआ करो। (पुत्रैः) पुत्रों (नप्तृभिः) नातियों से (क्रीडन्तौ) खेलते हुए (मोदमानौ) आनन्द प्रसन्न रहते हुए (सु-अस्तकौ) उत्तम गृह से सम्पन्न होकर, (विश्वम् आयुः) अपनी पूर्ण आयु का (वि अश्नुतम्) विशेष रूप से या विविध प्रकार से भोग करो।

सुमङ्गली प्रतरणी गृहाणां सुशेवा पत्ये श्वशुराय शंभूः ।
स्योना श्वश्र्वै प्र गृहान् विशेमान् ॥३॥

अथर्ववेद १४।२।२६

(सुमंगली) उत्तम मंगलमय चिन्हों से युक्त और (गृहाणां प्रतरणी) गृह के जनों को दुःख से पार लगाने वाली, (पत्ये) पति की (सुशेवा) उत्तम रूप से सेवा करने हारी, (श्वशुराय) श्वशुर को (शम्भूः) कल्याण और सुख देने वाली, (श्वश्र्वै) सास को (स्योना) सुखी करने हारी होकर (इमान्) इन (गृहान्) गृहजनों के बीच में (प्रविश) प्रवेश कर।

स्योना भव श्वशुरेभ्यः स्योना पत्ये गृहेभ्यः ।
स्योनास्यै सर्वस्यै विशे स्योना पुष्टायैषां भव ॥४॥

अथर्ववेद १४।२।२७

हे नववधु ! (श्वशुरेभ्यः) श्वशुरों के लिये (स्योनाभव) सुखकारिणी हो, (पत्येगृहेभ्यः) पति तथा अन्य गृहजनों के लिये (स्योना) सुखकारिणी हो, (अस्यै) इस (सर्वस्यै) समस्त (विशे) प्रजा के लिए (स्योना भव) सुखकारिणी हो और (एषां) इन सबकी (पुष्टाय) पुष्टि समृद्धि के लिये (भव) हो।

आ रोह तल्पं सुमनस्यमानेह प्रजां जनय पत्ये अस्मै ।
इन्द्राणीव सुबुधा बुध्यमाना ज्योतिएना उषसः प्रति जागरासि ॥५॥

अथर्ववेद १४।२।३१

हे नव-वधू तू (सुमनस्यमाना) शुभ चित्तवाली होकर (तल्पम्)

सेज पर (आरोह) चढ़। (अस्मै पत्ये) इस पति के लिये (प्रजां जनय) प्रजा को उत्पन्न कर। तू (इन्द्राणी इव) परमेश्वर की परमशक्ति के समान (सुबुधा) तू उत्तम ज्ञान सम्पन्न होकर (ज्योतिःएनः) ताराओं वाली (उषसः) उषाओं में ही (बुध्यमाना) सचेत होकर (प्रति) प्रतिदिन (जाग रासि) जागाकर, अर्थात् प्रातःकाल सूर्य उगने से पूर्व नक्षत्रों के होते-होते पत्नी को जागना चाहिये।

स्योनाद्योनेरधि बुध्यमानौ हसामुदौ महसा मोदमानौ ।।
सुगू सुपुत्रौ सुगृहौ तराथो जीवावुषसो विभातीः ।।६।।

अथर्ववेद १४।२।४३

(स्योनाद्) सुखकारी (योनेः) सेज या शयन स्थान से (अधिबुध्यमानौ) जागकर उठते हुए, (हसामुदौ) परस्पर हँसी विनोद युक्त होकर और (महसा) तेज और बल से (मोदमानौ) परस्पर आनन्द विनोद करते हुए, (सुगू) उत्तम इन्द्रियों या गौओं से सम्पन्न और (सुपुत्रौ) अर्थात् उत्तम पुत्रों से युक्त और (सुगृहौ) उत्तम गृह से सम्पन्न होकर, (जीवौ) दोनों जीव, वर-वधू सुख से जीवन बिताते हुए, (विभातीः) विविध रूप से प्रकाशमान (उषसः) उषाओं, दिनों को (तराथः) व्यतीत करें।

इहे माविन्द्र सं नुद चक्रवाकेव दंपती ।
प्रजयैनौ स्वस्तकौ विश्वमायुर्व्यश्नुताम् ।।७।।

अथर्ववेद १४।२।६४

हे (इन्द्र) परमेश्वर ! (इमौ) इन दोनों (चक्रवाका इव) चकवा चकवी के समान परस्पर प्रेम से बँधें (दम्पती) पति-पत्नी भाव से मिले हुए जोड़े को (सं नुद) प्रेरणा कर कि (एनौ) वे दोनों (सु-अस्तकौ) उत्तम घर में रहते हुए (प्रजया) अपनी प्रजा सहित (विश्वम् आयुः) पूर्ण आयु को (वि अश्नुताम्) नाना प्रकार से भोग प्राप्त करें।

सहृदयं सांमनस्यमविद्वेषं कृणोमि वः ।
अन्यो अन्यमभि हर्यत वत्सं जातमिवाध्न्या ।।८।।

अथर्ववेद ३।३०।१

मैं प्रभु (वः) तुम सबको (सहृदयं) एक हृदयवाला (सांमनस्यं)

एक चित्तवाला, (अविद्वेषं) परस्पर द्वेष से रहित (कृणोमि) करता हूँ। (जातं वत्सं अघ्न्या इव) जिस प्रकार उत्पन्न हुए बछड़े के प्रति प्रेम से खिंचकर गाय दौड़ी हुई आती है। उस प्रकार (अन्यः अन्यम् अभि हर्यत) एक-दूसरे के पास मिलने के लिए प्रेम से खिंचकर जाओ।

अनुव्रतः पितुः पुत्रो मात्रा भवतु संमनाः।
जाया पत्ये मधुमतीं वाचं वदतु शान्तिवाम् ॥९॥

अथर्ववेद ३।३०।२

(पुत्रः) पुत्र (पितुः) पिता का (अनुव्रतः) आज्ञाकारी हो और (मात्रा) माता के साथ (सं मना) अनुकूल और सद्-हृदय वाला होकर (भवतु) रहे और (जाया) स्त्री अपने (पत्ये) पति के लिए सदा (मधुमतीम्) मधुर (शान्तिवाम् वाचम्) शान्तियुक्त, सुखप्रद, कल्याणी वाणी को (वदतु) बोले।

मा भ्राता भ्रातरं द्विक्षन्मा स्वसारमुत स्वसा।
सम्यञ्चः सव्रता भूत्वा वाचं वदत भद्रया ॥१०॥

अथर्ववेद ३।३०।३

(भ्राता भ्रातरं स्वसारम् मा द्विक्षत्) भाई-भाई से और बहिन से द्वेष न करे, (उत) और (स्वसा स्वसारं भ्रातरं मा) बहिन अपनी बहिन से और भाई से द्वेष न करे। हे प्रजाजनों! सब (सम्यञ्चः) एकत्र होकर (सव्रताः) एक-दूसरे के अनुकूल, एक चित्त और एक ही उद्देश्य में होकर (भद्रया) कल्याण और सुखप्रद रीति से (वाचं वदत) एक-दूसरे के प्रति वाणी बोला करो।

येन देवा न वियन्ति नो च विद्विषते मिथः।
तत्कृण्मो ब्रह्म वो गृह संज्ञानं पुरुषेभ्यः ॥११॥

अथर्ववेद ३।३०।४

(येन) जिस वेद ज्ञान को प्राप्त करके (देवाः) देवगण, विद्वान् लोग (न वि-यन्ति) एक-दूसरे का विरोध नहीं करते और (मिथः नो च विद्विषते) परस्पर भी द्वेष नहीं करते (पुरुषेभ्यः) समस्त पुरुषों को (सं ज्ञानं) उत्तम ज्ञान प्राप्त कराने वाले (तत्) (ब्रह्म) अर्थात् वेद विज्ञान के उपदेश को (वः गृहे) आप लोगों के घर में (कृण्मः) करते हैं।

ज्यायस्वन्तश्चित्तिनो मा वि
यौष्ट संराधयन्तः सधुराश्चरन्तः ।
अन्यो अन्यस्मै वल्गु वदन्त एत
सध्रीचीनान् वः संमनसस्कृणोमि ।।१२।।

अथर्ववेद ३।३०।५

हे मनुष्यो ! आप लोग (ज्यायस्वन्तः) एक-दूसरे से बड़े और श्रेष्ठ गुण सम्पन्न होकर भी (चित्तिनः) समान चित्त होकर (संराधयन्तः) समान कार्य का साधन करते हुए (सधुराः) एक ही प्रकार के भार उठाते हुए अथवा समान रूप से एक ही धुरा-केन्द्र में बद्ध होकर विचरण करते हुए (मा वियौष्ट) कभी एक-दूसरे से पृथक मत होओ और (अन्यः अन्यस्मै) एक-दूसरे के प्रति (वल्गु वंदन्तः) मनोहर वचनों का प्रयोग करते हुए (एत) एक-दूसरे से मिलो और आओ (सध्रीचीनान्) समान रूप से एक ही स्थान पर एकत्र हुए (वः) तुम लोगों को मैं (संमनसः) एक ही चित्त और मन वाला (कृणोमि) बनाता हूँ।

सयानी प्रपा सह वोन्नभागः समाने योक्त्रे सह वो युनज्मि ।
सम्यञ्चोऽग्निं सपर्यतारा नाभिमिवाभितः ।।१३।।

अथर्ववेद ३।३०।६

हे मनुष्यो ! (समानी प्रपा) आप लोगों की एक ही पानीयशाला हो जहाँ से सब समान रूप से जल पी सकें। (वः सह अन्न भागः) तुम लोगों का परस्पर प्रेम से एक साथ ही अन्न का भोजन हो इसी कारण (वः) तुम लोगों को मैं (समाने योक्त्रे) एक ही बन्धन में (युनज्मि) बाँधता हूँ, जोड़ता हूँ और (सम्यञ्चः) उत्तम रीति से एक फल को प्राप्त करने की अभिलाषा से एकत्र होकर ही (नाभिम् इव अभितः अरः) केन्द्र के चारों ओर अरों के समान (अग्निं) ज्ञानस्वरूप परमेश्वर और विद्वान्, गुरु और यज्ञाग्नि की (सपर्यत) उपासना करो।

सध्रीचीनान् वः संमनसस्कृणोम्येकश्नुष्टीन्त्संवननेन सर्वान् ।
दवा इवामृतं रक्षमाणाः सायंप्रातः सौमनसो वो अस्तु ।।१४।।

अथर्ववेद ३।३०।७

(सध्रीचीनान्) एक कार्य में उद्योग करने वाले एवं एक स्थान पर

एकत्र होने वाले (वः सर्वान्) आप सब लोगों को (संवननेन) एक दूसरे के प्रति प्रेम उत्पन्न करके और आप लोगों को समान द्रव्य भाग देकर (एकश्नुष्टीन्) एक जैसा भोजन करने और (संमनसः) समान चित्त वाले (कृणोमि) करता हूँ। आप सब लोग (अमृतं) अमृत = सत्य आत्मा की (रक्षमाणाः) रक्षा करते हुए (देवा इव) इन इन्द्रिय गणों के समान रहो और (वः) आप लोगों का (सायं-प्रातः) सायंकाल और प्रातःकाल दोनों समय (सौमनसः) उत्तम हृदय परस्पर आदर और प्रेम युक्त चित्त (अस्तु) रहे।

भूर्भुवः स्वः सुप्रजाः प्रजाभिः स्याᳬ सुवीरो वीरैः सुपोषः पोषैः।
नर्य प्रजां मे पाहि शᳬस्य पशून्मे पाह्यथर्य पितुम्मे पाहि ॥१५॥

यजुर्वेद ३।३७

(भू. भुवः स्वः) प्राण, उदान और व्यान इनके बल पर मैं पुरुष (प्रजाभिः) पुत्र आदि सन्तानों से (सु-प्रजाः) उत्तम सन्तान वाला (स्याम्) होऊँ। (वीरैः) वीर्यवान पुरुषों से मैं (सुवीरः स्याम्) उत्तम पुत्रों वाला होऊँ और (पोषैः) पुष्टिकारक अन्न आदि पदार्थों से मैं (सु-पोषः) पुष्टि युक्त होऊँ। हे (नर्य) पुरुषों के हितकारिन्! तू (मे प्रजाम् पाहि) मेरी प्रजा का पालन कर। हे (शंस्य) स्तुति योग्य (मे पशून् पाहि) मेरे पशुओं का पालन कर और हे (अथर्य) ज्ञानवान्! (मे पितुम् पाहि) मेरे अन्न की तू उत्तम रीति से रक्षा कर।

गृहा मा बिभीत मा वेपध्वमूर्ज्जं बिभ्रत ऽएमसि।
ऊर्ज्जं बिभ्रद्वः सुमनाः सुमेधा गृहानैमि मनसा मोदमानः ॥१६॥

यजुर्वेद ३।४१

हे (गृहाः) गृहस्थ पुरुषो! आप लोग (मा बिभीत) मत डरो (मा वेपध्वम्) दिल में मत घबराओ। जब हम (ऊर्जम्) विशेष बल विभ्रतः) धारण करते हुए (एमसि) आवे और मैं राजा या अधिकारी पुरुष भी (ऊर्जम्) बल (विभ्रत) धारण करता हुआ (सु-मनाः) शुभ मन से और (सु-मेधाः) उत्तम बुद्धि से युक्त होकर (मनसा मोदमानः) अपने मन से प्रसन्न होता हुआ (गृहान्) ग्रहों को, गृहस्थ पुरुषों को (एमि) प्राप्त होऊँ।

उपहूताऽइह गावऽउपहूताऽ अजावयः ।
अथोऽअन्नस्य कीलालऽउपहूतो गृहेषुनः ।
क्षेमाय वः शान्त्यै प्रपद्ये शिव ँ शग्म ँ शंयोः शंयोः ॥१७॥

यजुर्वेद ३।४३

(इह) यहाँ, राष्ट्र में और गृह में (गाव:) दुधार गौवें (उपहूता:) हमें प्राप्त हों। (अजावयः उप-हूता:) बकरियाँ और भेड़ें प्राप्त हों। (अन्नस्य) भोग्य पदार्थों में से (कीलाल:) अन्न आदि पदार्थ (नः) हमारे (गृहेषु) घरों में (उप-हूत.) प्राप्त हो। हे गृहो ! गृहस्थ पुरुषो ! (व:) तुम लोगो के पास मैं (क्षेमाय) कुशल क्षेम, रक्षा के लिये और (शान्त्यै) विघ्नों को शान्त करने और सुख प्रदान करने के लिये (प्र पद्ये) तुम्हें प्राप्त होऊँ। (शंयो: शंयो:) सुख शान्तिदायक उपाय से (शिवम् शग्मम्) कल्याण और सुख प्राप्त हो ।

संजीवन सूक्त

(मृत्युञ्जय)

शरीरम् व्याधि मन्दिरम्

शरीर को व्याधियों का मन्दिर कहा है, प्रत्येक मानव को कोई न कोई शारीरिक व्याधि लगी रहती है जिस कारण वह अपनी बहुत-सी सार्थक योजनाओं वा कार्यक्रमों को भी सफल बनाने में असमर्थ ही दीखता है और व्याधिओं से घिरा हुआ शरीर अल्पकाल में ही स्वर्ग सिधार जाता है। रोगी शरीर और अल्प आयु यह दोनों ही महान कष्टदायी होते हैं। प्रत्येक मानव इनसे बचना चाहता है, और चाहता है कि मुझे आरोग्यता प्राप्त हो, स्वस्थ जीवन हो और पूर्ण आयु भी प्राप्त हो। यह सब कुछ अपने प्रयत्नों के साथ-साथ प्रभु कृपा से हो प्राप्त होता है, क्योंकि हम अल्पज्ञ हैं, हमसे जाने-अनजाने भूलें होती ही रहती हैं, जिसका फल भी हमें मिलता रहता है, यही फल हमें सन्मार्ग पर चलाने के लिए वरदान सिद्ध हो जाते हैं। इसी को प्रभु कृपा और दयालुता भी कहते हैं और इस कृपा प्राप्ति के लिए ही संजीवन सूक्त का संचय किया गया है।

ताम्र के हवन कुण्ड में आम और नीम की समिधाओं से, सामग्री-गूगल, सफेद चन्दन चूरा, गिलोय, बाबची, शतावर, पुष्प गुलाब, चीनी, देसी घी समान भाग लेकर सामग्री बना लें। इस सामग्री और देसी घी के द्वारा संजीवन सूक्त से नित्य प्रति यज्ञ करें। यज्ञ कुण्ड की भस्मी को रात्रि में कंच के एक गिलास जल में घोल दें। अगले दिन प्रातः यज्ञादि कर्म से निवृत्त होकर सावधानी के साथ ऊपर के जल को नितार कर कपड़े में छान लें और इसका पान करें। इससे निरोगिता प्राप्त होगी।

सूक्त

त्र्यम्बकं यजामहे सुगन्धिं पुष्टिवर्धनम् ।
उर्वारुकमिव बन्धनान्मृत्योर्मुक्षीय मामृतात् ।।

त्र्यम्बकं यजामहे सुगन्धिं पतिवेदनं ।
उर्वारुकमिव बन्धनादितो मुक्षीय मामुतः ।।१।।

यजुर्वेद ३।६०

(त्रि-अम्बकम्) तीन शक्तियों से सम्पन्न (सुगन्धिम्) उत्तम मार्ग में प्रेरणा करने वाले (पुष्टिवर्धनम्) प्रजा के पोषण को बढ़ाने वाले राजा को हम (यजामहे) सत्संग करें, साथ दें। जिससे मैं प्रजाजन (मृत्योः बन्धनात्) मृत्यु के बन्धन से (उर्वारुकम् इव) लता के बन्धन से पके खरबूजे के समान (मुक्षीय) स्वयं मुक्त रहूँ, (अमृतात् मा) अमृत अर्थात् जीवन वा मोक्ष से मुक्त न होऊँ।

इसी प्रकार (सुगन्धिम्) उत्तम मार्ग में प्रेरणा करने वाले (पति-वेदनम्) पालक पति को प्राप्त करने वाले (त्र्यम्बकम्) वेदत्रयी रूप ज्ञान से युक्त राजा का (यजामहे) हम आदर करते हैं। जिससे मैं (उर्वारुकम् इव) लता बन्धन से खरबूजे के समान (इतः बन्धनात्) इस लोक के बन्धन से (मुक्षीय) मुक्त हो जाऊँ। (मा अमुतः)उस पारमार्थिक सम्बन्ध से न छूटूँ।

सर्वो वै तत्र जीवति गौरश्वः पुरुषः पशुः ।
यत्रेदं ब्रह्म क्रियते परिधिर्जीवनाय कम् ।।२।।

अथर्ववेद ८।२।२५

(यत्र) जिस देश और काल में (इदम्) यह (कम्) सुखकारी (ब्रह्म) वेद ज्ञान (जीवनाय) जीवन की रक्षा के लिए (परिधिः) दुर्ग के समान (क्रियते) बना लिया जाता है (तत्र) वहाँ (वै) निश्चय से (गौः अश्वः पुरुषः पशुः) गौ, अश्व, मनुष्य और पशु सब जीव (जीवति) जीते रहते हैं, समय से पूर्व नहीं मरते, क्योंकि वेदों में इन सबके जीवन के उपायों का वर्णन है।

तनूपा ऽ अग्ने ऽसि तन्वं मे पाह्यायुर्दा ऽ अग्ने ऽ स्यायुर्मे देहि
वर्चोदा ऽ अग्नेसि वर्चो मे देहि ।
अग्ने यन्मे तन्वा ऊनं तन्म ऽ आपृण ॥३॥

यजुर्वेद ३।१७

हे (अग्ने) परमेश्वर ! तू (तनूपाः असि) हमारे शरीरों की रक्षा करने हारा है। तू (मे) मेरे (तन्वम्) शरीर की (पाहि) रक्षा कर। हे (अग्ने) अग्ने ! (आयुर्दा असि) तू आयु, जीवन का देने वाला है (मे आयुः देहि) मुझे आयु प्रदान कर। हे (अग्ने) अग्ने (वर्चोदाः असि) तू वर्चस्, तेज को देने वाला है तू (मे वर्चः देहि) मुझे तेज प्रदान कर। (यत् मे तन्वः) और जो मेरे शरीर में (ऊनं) न्यूनता हो (मे) मेरी (तत्) उस न्यूनता को (आ पृण) पूर्ण कर। शरीर रक्षक, जीवन रक्षक, बल तेज के दाता, राजा से भी ऐसी प्रार्थना सम्भव है। वह हमारे शरीर के न्यून बल की पूर्ति, अपनी सद्-व्यवस्था से करे। निर्बलों का बल राजाओं का राजा परमात्मा है।

इन्धानास्त्वा शत ँ हिमा द्युमन्त ँ समिधीमहि
वयस्वन्तो वयस्कृत ँ सहस्वन्तः सहस्कृतम् ।
अग्ने सपत्नदम्भनमदब्धासो ऽ अदाभ्यम् ।
चित्रावसो स्वस्ति ते पारमशीय ॥४॥

यजुर्वेद ३।१८

हे राजन ! (द्युमन्तं) तेजस्वी, (वयस्कृतम्) आयु के बढ़ाने वाले (सहस्कृतम्) बल देने वाले (सपत्न-दम्भनम्) शत्रुओं के नाशक, (अदाभ्यम्) सर्वविजयी। (त्वा) तुझको (वयस्वन्तः) हम दीर्घायु, (सह स्वन्तः) बलवान् और (अदब्धासः) शत्रुओं से कभी न मारे जाकर, (शतंहिमाः) सौ वर्षों तक (इन्धानाः) तुझे प्रदीप्त करते हुए (सम् इधीमहि) तुझे बराबर बढ़ाते और कीर्ति में उज्ज्वल ही करते रहें। हे (चित्रावसो) नाना प्रकार के ऐश्वर्य वाले (स्वस्ति) तेरा कल्याण हो। (ते) तेरे (पारम्) पालन और पूर्ण करने वाले सामर्थ्य का मैं सदा (अशीय) भोग करूँ।

**पुनर्मनः पुनरादुर्म ऽ आगन् पुनः प्राणः पुनरात्मा म ऽ आगन् पुनश्चक्षुः पुनः श्रोत्रम्म ऽ आगन् ।
वैश्वानरो ऽअदब्धस्तनूपाऽअग्निर्नः पातु दुरितादवद्यात् ॥५॥**

यजुर्वेद ४।१५

शयन के बाद (मे मनः) मेरा मन (पुनः आ अगन्) मुझे पुनः प्राप्त होता है। (पुनः प्राणः) प्राण मुझे पुनः प्राप्त होता है। (पुनः चक्षुः) चक्षु मुझे फिर प्राप्त होता है। (मे श्रोत्रम् पुनः आ अगन्) मुझे श्रोत्र, कान पुनः प्राप्त होता है। (वैश्वानरः) समस्त नर देहों में प्राणों के नेतारूप से विद्यमान जीवात्मा (अदब्धः) अविनाशी (तनूपा) शरीर का स्वामी (अग्निः) अग्रणी राजा के समान है, वह (नः) हमें (अवद्यात्) निन्दनीय (दुरितात्) दुष्टाचरण से (पातु) बचावें।

**ऋचं वाचं प्र पद्ये मनो यजुः प्र पद्ये साम प्राणं प्र पद्ये
चक्षुः श्रोत्रं प्र पद्ये। वागोजः सहौजो मयि प्राणापानौ ॥६॥**

यजुर्वेद ३६।१

(ऋचं वाचं प्रपद्ये) मैं स्तवनशील वाणी के तुल्य ऋग्वेद को प्राप्त होऊँ। (मनो यजुः प्रपद्ये) मैं मननशील अन्तःकरण के तुल्य यजुर्वेद को प्राप्त होऊँ। (साम प्राणं प्रपद्ये) प्राण और योगाभ्यासादि उपासना के निर्देशक सामवेद को प्राण के तुल्य जानूं। (चक्षुः श्रोत्रं प्रपद्ये) 'चक्षु' वेद अर्थात् अथर्ववेद को 'श्रोत्र' कर्ण के समान जानकर धारण करूँ। (वाग् ओजः) वाणी, मानस बल और (सह) उनके साथ (ओजः) शरीर बल और (प्राणापानौ) प्राण और अपान उच्छ्वास और निःश्वास दोनों (मयि) मुझमें विद्यमान रहें।

प्राणश्च मे ऽपानश्च मे व्यानश्च मे ऽसुश्च मेचित्तं चं म ऽआधीतं च मे वाक् च मे मनश्च मे चक्षुश्च मे श्रोत्रं च मे दक्षश्च मे बलं च मे यज्ञेन कल्पन्ताम् ॥७॥

यजुर्वेद १८।२

(मे) मुझे (प्राणः च) प्राण, जो शरीर में नाभि से ऊपर गति करता है, (अपानः च) अपान, जो नाभि से विचरता है,(व्यानः च) व्यान, शरीर की सब संधियों में व्यापक और मुख्य नाभिदेश में स्थित है,

(असु: च) असु, नाग कूर्म आदि नाम वायु जो वमन आदि वेग करता; रोग-परमाणुओं को बल से बाहर फेंकता है, (चितं च) चित्त स्मरण करने वाली शक्ति, (आधीतं च) निश्चयकारिणी बुद्धि, (वाक् च) वाक् इन्द्रिय (मन: च) संकल्प विकल्प करने वाली शक्ति, (चक्षु: च) देखने वाली इन्द्रिय, (श्रोत्रं च) कर्णेन्द्रिय, (दक्ष: च) ज्ञानेन्द्रियों का बल और (बलं च) कर्म इन्द्रियों का कौशल (च च) उदान, समान, धनञ्जय आदि अन्य वायुएं धारण, श्रवण, अहंकार, प्रमाण, सामयिकमान आदि पदार्थ भी (यज्ञेन) आत्मसामर्थ्य, ज्ञानाभ्यास और उपासना से (मे कल्पन्ताम्) मुझे प्राप्त हों।

ओजश्च मे सहश्च मे ऽ आत्मा च मे तनूश्च में शर्म च मे वर्म च मे ऽ ङ्गानि च मे ऽ स्थीनि च मे परू ँ षि च मे शरीराणि च म ऽ आयुश्च मे जरा च मे यज्ञेन कल्पन्ताम् ।।८।।

यजुर्वेद १८।३

(ओज: च) ओज, शरीर में स्थित तेजोमय धातु, (सह: च) शत्रु पराजय का बल, (आत्मा च) परमात्मा या इन्द्रियगण, (तनू: च) उत्तम दृढ़ शरीर (शर्म च) गृहोचित सुख, (वर्म च) शरीर रक्षक कवच, शस्त्रास्त्र, (अंगानि च) देह के अंग उपांग,(अस्थीनि च) छोटी-बड़ी समस्त अस्थियाँ, (परूंषि च मे) अंगुली आदि पोरू, (शरीराणि च) शरीर के अन्य अवयव अथवा मेरे अन्यों के शरीर और सूक्ष्म देह, (आयु च मे) पूर्णायु (जरा च) वृद्धावस्था और यौवन आदि भी (यज्ञेन) सत् कर्मानुष्ठान और परमेश्वर कृपा से (मे कल्पन्ताम्) मुझे प्राप्त हों।

ऋतं च मेऽ मृतं च मे ऽ यक्ष्मं च मे ऽ नामयश्च मे जीवातुश्च मे दीर्घायुत्वं च मे ऽ नमित्रं च मे ऽ भयं च मे सुखं च मे शयनं च मे सूषाश्च मे सुदिनं च मे यज्ञेन कल्पन्ताम् ।।९।।

यजुर्वेद १८।६

(ऋतं च) सत्य विज्ञान, वेद शास्त्र, (अमृतं च) मोक्ष और पूर्ण आयु (अयक्ष्मं च) तपेदिक आदि रोगों से रहित स्वस्थता, (अनामय: च) रोगों का अभाव, (जीवातु: च) जीवनप्रद अन्न, औषधि आदि, (दीर्घायुत्वं च) दीर्घ आयु, (अनमित्रं च) शत्रु का न होना, (अभयं च)

निर्भयता, (सुखं च) सुख, (शयनं च) निद्रा, (सूषा च) उषाकाल, (सुदिनं च) उत्तम दिन, ये सब (मे) मेरे (यज्ञेन कल्पन्ताम्) यज्ञ, राष्ट्र पालन, धर्माचरण और ईश्वरोपासना से प्राप्त हों।

तेजोऽसि तेजो मयि धेहि। वीर्यमसि वीर्यं मयि धेहि।
बलमसि बलं मयि धेहि। ओजोऽस्योजो मयि धेहि।
मन्युरसि मन्युं मयि धेहि। सहोऽसि सहो मयि धेहि ॥१०॥

यजुर्वेद १९।९

हे राजन्! तू (तेज: असि) तीक्ष्ण पराक्रम स्वरूप है। (मयि तेज: धेहि) मुझ प्रजाजन में भी तेज को धारण करा। तू (वीर्यम् असि) सब अंगों में स्फूर्ति उत्पन्न करने वाला है। तू (मयि) मुझ में भी उस (वीर्यम्) वीर्य को (धेहि) धारण करा। (बलम् असि) तू अंगों में दृढ़ता उत्पन्न करने वाला है। (मयि) मुझ प्रजाजन में भी (बलम् धेहि) उस बल को धारण करा। (ओज: असि) शरीर में जैसे ओज, अष्टम्, धातु, कान्ति उत्पन्न करने वाला है। वैसे ही (ओज:) प्राण सामर्थ्य को (मयि धेहि) मुझ में धारण करा। (मन्यु: असि) तू शत्रु को न सहन करने वाला क्रोधरूप है उसी प्रकार के (मन्युम्) मन्यु को (मयि धेहि) मुझमें धारण करा। (सह: असि) हे राजन्! तू शत्रुओं को पराजित करने में समर्थ शक्ति हैं। तू (सह: मयि धेहि) मुझमें भी वैसी शक्ति प्रदान कर।

विश्व में परमात्मा और शरीर में आत्मा, तेज:, वीर्य, बल, ओज:, मन्यु और सह: स्वरूप हैं उनसे तेज, वीर्य, बल, ओज:, मन्यु और सह: मिले।

तत्त्वा यामि ब्रह्मणा वन्दमानस्तदाशास्ते यजमानो हविर्भिः।
अहेडमानो वरुणेह बोध्युरुशंस मा न आयुः प्रमोषीः ॥११॥

यजुर्वेद १८।४९

हे (वरुण) वरण करने योग्य परमेश्वर! (ब्रह्मणा) वेद द्वारा (त्वा वन्दमान:) तेरी स्तुति करता हुआ मैं (त्वा यामि) तुझसे याचना करता हूँ, (यजमान:) उपासना करने हारा (हविर्भि:) हवियों और स्तुतियों से भी (तत्) उसी परम प्रेम की (आशास्ते) कामना करता है कि, हे (उरुशंस) बहुतों से स्तुति किये जाने हारे। तू (अहेडमान:) कभी अनादर न किया जाकर, सौम्य भाव से (इह) यहां (बोधि) ज्ञान प्रदान कर और (न: आयु:) हमारे जीवन (मा प्र मोषी:) मत अपहरण कर।

प्राणं मे पाह्यपानं मे पाहि व्यानं मे पाहि
चक्षुर्म ऽ उर्व्या विभाहि श्रोत्रं मे श्लोकय ।
अपः पिन्वौषधीर्जिन्व द्विपादव चतुष्पात्
पाहि दिवो वृष्टिमेरया ॥१२॥

यजुर्वेद १४।८

हे प्रभो ! (मे प्राणं पाहि) मुझ प्रजागण के प्राण की रक्षा कर। (मे अपानं पाहि) मेरे अपान की रक्षा कर । (मे व्यानं पाहि) मेरे व्यान की रक्षा कर। (मे चक्षुः) मेरे चक्षु को (उर्व्या) विस्तृत दर्शन शक्ति से (विभाहि) प्रकाशित कर। (मे श्रोत्रम्) मेरे श्रोत्र को (श्लोकय) श्रवण समर्थ कर। (अपः पिन्व)जलों के समान प्राणों को सेचन कर। (ओषधीः) औषधियों को (जिन्व) पुष्ट कर, (द्विपात्) दो पाँव के मनुष्यों की रक्षा कर । (चतुष्पात् पाहि) चौपायों की रक्षा कर। (दिवः) द्यौलोक से (वृष्टिम् आईरय) वृष्टि को प्रेरित कर।

परं मृत्यो अनु परेहि पन्थां यस्ते ऽ अन्य ऽ इतरो देवयानात् ।
चक्षुष्मते शृण्वते ते ब्रवीमि मा नः
प्रजा ँ रीरिषो मोत वीरान् ॥१३॥

यजुर्वेद ३५।७

हे (मृत्यो) दुष्टों के मारने वाले राजन् ! (यः) जो (ते) तेरा (देवयानात्) देवों-विद्वानों के गमन करने योग्य मार्ग से (इतरः) कोई और भिन्न मार्ग है तू उस (परं पन्थाम् अनु) दूसरे मार्ग को लक्ष्य करके (परा इहि) दूर हट जा। (चक्षुष्मते) आँखों वाले, बुद्धिमान् और (शृण्वते) कानों वाले, प्रजाहितैषी (ते) तुझे (ब्रवीमि) उपदेश करता हूँ कि तू (नः) हमारी (प्रजाम्) प्रजा को मत मार उनका नाश मत कर।

इमं जीवेभ्यः परिधिं दधामि मैषां नु गादपरो ऽ अर्थमेतम् ।
शतं जीवन्तु शरदः पुरूचीरन्तर्मृत्युं दधतां पर्वतेन ॥१४॥

यजुर्वेद ३५।१५

(जीवेभ्यः) जीवों की रक्षा के लिए मैं राजा (इमम्) इस (परिधिम्) नगर के चारों ओर परकोट के समान रक्षा के साधन

(दधामि) स्थापित करता हूँ। जिससे (अपरः) शत्रु पुरुष (एषाम्) मेरे प्रजाजनों के (एतम्) इस (अर्थम्) धन को (मा नु गात्) प्राप्त न करे। वे प्रजाजन (पुरूचीः) बहुत से ऐश्वर्य प्राप्त करने वाले होकर (शतं शरदः जीवन्तु) सौ-सौ वर्ष जीवें। (पर्वतेन) शत्रु को जैसे पर्वत आदि अलङ्घ्य पदार्थ से परे रखा जाता है वैसे ही (मृत्युम्) मृत्यु, उसके कारण रूप शत्रु और हिंसक शत्रुओं को भी (पर्वतेन) पालन-पोषण सामर्थ्यों से युक्त राजा द्वारा (अन्तः दधताम्) दूर करें।

भद्रं कर्णेभिः शृणुयाम देवा भद्रं पश्येमाक्षभिर्यजत्राः।
स्थिरैरंगैस्तुष्टुवा ँ सस्तनूभिर्व्यशेमहि देवहितं यदायुः ॥१५॥

यजुर्वेद २५।२१

हे (देवः) विद्वान् पुरुषो ! (कर्णेभिः) कानों से (भद्रम्) कल्याणकारी वचनों का (शृणुयाम्) श्रवण करें। हे (यजत्राः) ईश्वरोपासक पुरुषो ! हम सदा (भद्रम्) कल्याणजनक पदार्थ को ही (अक्षभिः) आँखों से देखें। हम (स्थिरैः) दृढ़ (अंगैः) अंगों से (तुष्टुवांसः) ईश्वर की स्तुति करते हुए (तनूभिः) शरीरों से (देवहितम्) ईश्वर व विद्वानों द्वारा 'हित' अर्थात् निश्चित की हुई (यत्) जो (आयुः) सौ वर्ष की आयु को (वि अशेमहि) विशेष रूप से प्राप्त करें।

तच्चक्षुर्देवहितं पुरस्ताच्छुक्रमुच्चरत्। पश्येम शरदः
शतं जीवेम शरदः शत ँ शृणुयाम शरदः शतं प्र ब्रवाम
शरदः शतमदीनाः स्याम शरदः शतं भूयश्च शरदः शतात् ॥१६॥

यजुर्वेद ३६।२४

(तत्) वह (देवहितम्) विद्वानों का हितकारक (पुरस्तात्) सर्वत्र समक्ष (शुक्रम्) शीघ्र कार्य करने में कुशल एवं तेजस्वी, (चक्षुः) आँख के समान सबका निरीक्षक होकर (उत् चरत्) उत्तम पद पर विराजे। वैसे ही परमेश्वर भी (पुरस्तात्) पूर्वकाल से ही शुद्ध सर्वज्ञ देवों विद्वानों का हितकारी (उत् चरत्) सबसे उच्च है। वह सर्वद्रष्टा, सबको आँख के समान पदार्थ निदर्शक रहकर शुद्ध तेज प्रदान करता है। उसी के प्रताप से हम (शरदः शतम्) सौ वर्षों तक (पश्येम) देखें। (शरदः शतं शृणुयाम) सौ वर्षों तक श्रवण करें। (शरदः शतं प्र ब्रवाम)

सौ वर्ष तक बोलें। (अदीनाः स्याम शरदः शतम्) सौ बरसों तक दीनता रहित होकर रहें। (भूयः च शरदः शतात्) और सौ बरसों से भी अधिक बरसों तक हम देखें, जीवें, सुनें, बोलें और अदीन होकर रहें।

पश्येम शरदः शतम् ॥१७॥ अथर्ववेद १९।६७।१

हम (शरदः शतम्) सौ वर्षों तक (पश्येम) देखते रहें।

जीवेम शरदः शतम् ॥१८॥ अथर्ववेद १९।६७।२

हम (शरदः शतम्) सौ वर्षों तक (जीवेम) जीवें।

बुध्येम शरदः शतम् ॥१९॥ अथर्ववेद १९।६७।३

हम (शरदः शतम्) सौ वर्षों तक (बुध्येम) ज्ञानवान बने रहें।

रोहेम शरदः शतम् ॥२०॥ अथर्ववेद १९।६७।४

हम (शरदः शतम्) सौ वर्षों तक (रोहेन) वृद्धि को प्राप्त करें।

पूषेम शरदः शतम् ॥२१॥ अथर्ववेद १९।६७।५

हम (शरदः शतम्) सौ वर्षों तक (पूषेम) पुष्टि प्राप्त करें।

भवेम शरदः शतम् ॥२२॥ अथर्ववेद १९।६७।६

हम (शरदः शतम्) सौ वर्षों तक (भवेम) समर्थ होकर रहें।

भूयेम शरदः शतम् ॥२३॥ अथर्ववेद १९।६७।७

हम (शरदः शतम्) सौ वर्षों तक (भूयेम) सत्तावान होकर रहें।

भूयसी शरदः शतात् ॥२४॥ अथर्ववेद १९।६७।८

(शतात्) सौ से भी (भूयसीः शरदः) बहुत अधिक वर्षों तक हम देखें, जीवें, समझें, बढ़ें, पुष्ट हों, समर्थ रहें और सत्तावान् बने रहें।

शतमिन्नु शरदो अन्ति देवा यत्रा नश्चक्रा जरसं तनूनाम् ।
पुत्रासो यत्र पितरो भवन्ति मा नो मध्या रीरिषतायुर्गन्तोः ॥२५॥

यजुर्वेद २५।२२

हे (देवाः) विद्वान् पुरुषो ! (अन्ति) आप लोगों के समीप (यत्र) जब, (शतम् शरदः) सौ वर्ष (इत् नु) का ही जीवन कम से कम (नः) हमारे (तनूनाम्) शरीरों की (जरसम्) वृद्धावस्था को (चक्रः) बनावे, अर्थात् विद्वानों के सत्संग से हम सौ वर्षों के वृद्ध हों और (यत्र) जब (पुत्रासः) बुढ़ापे के कष्ट से बचाने वाले पुत्र और शिष्य लोग (पितरः) बच्चों के माता-पिता और पालक (भवन्ति) हो जायें तब तक आप लोग (गन्तोः) गुजरते हुए (नः) हमारी (आयुः) आयु को (मध्या) बीच में (मा रीरिषत) मत विनष्ट करो ।

त्र्यायुषं जमदग्नेः कश्यपस्य त्र्यायुषम् ॥
यद् देवेषु त्र्यायुषं तन्नो ऽ अस्तु त्र्यायुषम् ॥२६॥

यजुर्वेद ३।६२

(जमदग्नेः) देदीप्यमान चक्षु वाले तत्वदर्शी पुरुष को जो (त्र्यायुषम्) बाल्य, यौवन, वार्धक्य आदि तीनों अथवा तिगुणी आयु प्राप्त होती है और (कश्यपस्य) कश्यप अर्थात् ज्ञान के पालक पुरुष को जो (त्रि आयुषम्) त्रिगुण बाल्य, आदि तीनों आयु प्राप्त होती हैं (यत्) और जो (देवेषु) विद्वान् पुरुषों में (त्रि-आयुषम्) त्रिगुण आयु है (तत्) वह (त्रि-आयुषम्) त्रिगुण आयु (नः अस्तु) हमें भी प्राप्त हो ।

पुत्रेष्टि यज्ञ

चाहे कोई व्यक्ति धनी हो या निर्धनी अथवा किसी भी देश-देशान्तर का निवासी हो। सभी चाहते हैं कि हम अपने परिवार के प्रांगण में पुत्र रत्न को किलोल करते देखें। ऐसा क्यों ? संसार का प्रत्येक व्यक्ति जानता है कि वंशवृद्धि पुत्र के ही द्वारा होती है। कन्या तो दूसरे घर का धन है। जिस प्रकार धान की पौध जहाँ लगाई जाती है वहाँ फल नहीं देती, फल उसी पौध को दूसरे खेत में लगाने पर देती है। इसी प्रकार कन्या जन्म कहीं लेती है और फलती-फूलती कहीं और है।

त्रेता युगे चतुर्विंशे रावणस्तपसः क्षयात्।
रामं दाशरथिं प्राप्य सगणः क्षयमीयावान्॥

वायु पुराण ७०।४८

आचार से पतित होने के कारण रावण चौबीसवें त्रेता युग में दशरथनन्दन श्री राम के साथ युद्ध करके बन्धु-बान्धवों सहित मारा गया।

वायु पुराण में श्री राम जी का काल वैवस्वत मन्वन्तर के चौबीसवें त्रेता युग को माना है। २४वें त्रेता से २८वें त्रेता तक चार चतुर्युगियाँ व्यतीत हो चुकीं। एक चतुर्युगी में ४३,२०,००० वर्ष होते हैं इसे चार से गुणा करने पर १,७२,८०,००० वर्ष बने। इसमें द्वापर के ८,६४,००० वर्ष और अब तक के कलियुग के ५०८७ वर्ष मिलाकर सब १,८१,४६,०८७ वर्ष बने, यही काल राजा दशरथ और याजक सुपुत्र श्री रामचन्द्र जी का बनता है। आज से उक्त अवधि पूर्व राजा दशरथ को अपनी वंश वृद्धि के मार्ग को पुत्र प्राप्ति के न होने के कारण वंशोच्छेदन के रूप में परिवर्तित होते देखकर अत्यन्त पीड़ा हुई। वशिष्ठ मुनि के परामर्श से शृंगी ऋषि द्वारा पुत्रेष्ठि यज्ञ कराकर पुत्र प्राप्ति के

लक्ष्य की सिद्धि प्राप्त कर राम, लक्ष्मण, भरत और शत्रुघ्न चार पुत्रों को पाया।

यस्मिन्नृणं सन्नयतियेन चानन्त्यमश्नुते।
स एव धर्मजः पुत्रः कामजानितरान्विदुः ॥

मनु ९।१०७

जिसके उत्पन्न होने से पितृऋण दूर होता है और मोक्ष प्राप्त होती हैं उसी को धर्मज पुत्र जाने। औरों को कामज कहते हैं।

उपरोक्त कथनों से स्पष्ट है कि पुत्र की प्राप्ति न होने से प्रथम वंशोच्छेदन होता है, द्वितीय पितृऋण से मुक्ति नहीं मिलती, तृतीय मोक्ष प्राप्त नहीं होती। यह तीनों ही अभाव मनुष्य जीवन के लिए पुत्र की प्राप्ति न होने के कारण अभिशाप ही होते हैं। इसी कारण संसार में प्रत्येक मनुष्य पुत्र की कामना करता है। यहाँ एक और जटिल प्रश्न उठ जाता है, कि पुत्र कैसा हो ? जिसका उत्तर प्रत्येक व्यक्ति नहीं दे सकता। क्योंकि वह नहीं जानता कि उसको कैसा पुत्र चाहिये ? वह तो केवल पुत्र चाहता है। क्या वह सुन्दर, विद्वान और भाग्यवान पुत्र नहीं चाहता ? नहीं ! वह पुत्र को सुन्दर, विद्वान् और भाग्यवान ही चाहता है, परन्तु वह कर कुछ नहीं सकता। क्योंकि ऐसे दम्पति के सामने केवल पुत्र प्राप्ति का ही लक्ष्य होता है। जब सतत प्रयत्नों के द्वारा उसे कुसंस्कारी पुत्र प्राप्त हो जाता है और वह बड़ा होकर कुबुद्धि, कुमार्गी, कुव्यसनी आदि दोषों से ग्रसित होकर धन का नाश करता ही चला जाता है और समझाने पर भी नहीं मानता तो उसके माता-पिता क्या कहते हैं। क्या आप नहीं जानते ? नहीं सब जानते हैं। वह कहते हैं—"हे भगवान ! इससे तो हम पुत्र विहीन ही अच्छे थे, उस समय पुत्र न होने का दुःख था और आज कुल की लाज न बचने का दुःख है। हमें सुख न मिला।"

एकोऽपि गुणवान् पुत्रो निर्गुणैश्च शतैर्वरः।
एकश्चन्द्रस्तमो हन्ति न च ताराः सहस्त्रशः ॥

चाणक्य नीति ४।६

सैकड़ों गुण रहित पुत्रों की अपेक्षा एक ही गुणी पुत्र श्रेष्ठ है, एक ही चन्द्रमा अन्धकार को नष्ट कर देता है, सहस्रों तारे नहीं।

संस्कार विहीन पुत्र से यश कीर्ति के स्थान पर अपयश और

कलंक ही मिलता है। इसलिए पुत्र की प्रबल आकाँक्षा के साथ-साथ अपने देश और कुल की लाज रखने वाले पुत्र की इच्छा करें।

साधुं पुत्रम् हिरण्ययम् ॥

अथर्ववेद २०।१२९।५

तेजस्वी श्रेष्ठ पुत्र।

गुणिगणगणनारम्भे न पतति कठिनी सुसम्भ्रमाद् यस्य।
तेनाम्बा यदि सुतिनी वद बन्ध्या कीदृशी नाम ॥

हितोपदेश प्रस्ताविका १५

गुणियों के समुदाय की गिनती के आरम्भ में यदि किसी व्यक्ति पर सहसा अंगुली नहीं उठती तो उस पुत्र से क्या लाभ। उस पुत्र से यदि माँ पुत्रवती कहलाती है तो बताइये वन्ध्या स्त्री किसको कहा जायगा।

इसकी पूर्ति अपने ही आत्मज से ही हो सकती है, गोदादि द्वारा प्राप्त किया हुआ अन्य के पुत्र से नहीं हो सकती। अधिकाँश देखने में आया है कि ऐसे पुत्र, कुपुत्र बन जाते हैं वेद में आज्ञा है–

नहि ग्रभायारणः सुशेवोऽन्योदर्यो मनसा मन्तवाउ।

ऋग्वेद ७।४।८

हे मनुष्य ! जो रमण न करता हुआ सुन्दर सुख से युक्त दूसरे के उदर से उत्पन्न हुआ हो वह अन्तःकरण से (पुत्र रूप में) ग्रहण के लिए नहीं मानने योग्य है। इसी मन्त्र में वेद ने समाधान करते हुए और आगे कहा कि—"नवीन अच्छा सहनशील विज्ञान वाला पुत्र हमको प्राप्त हो।" संस्कारी पुत्र की प्राप्ति ही इन सब लक्षों की पूर्ति का उपाय है। इन उपायों के समस्त साधनों को समझने के लिए पढ़िये–"इच्छानुसार सन्तान"।

पुत्रेष्टि यज्ञ सूक्त के द्वारा श्रृंगी ऋषि ने पुत्रेष्टि यज्ञ कराया था। इस अप्राप्त सूक्त को हमने बड़े परिश्रम से चारों वेदों से में संग्रहीत कर जन साधारण के हितार्थ प्रकाशित किया है।

पुत्रेष्टि यज्ञ सूक्त से संकल्प के साथ एक निश्चित स्थान और एक निश्चित समय पर नित्य प्रति श्रद्धापूर्वक यज्ञ करने से पूर्ण रूपेण अवश्य ही मंगलमयी सफलता प्राप्त होगी।

स्थान=स्वच्छ कमरा न बहुत बड़ा न बहुत छोटा, इतना अवश्य हो जिसमें दोनों विश्राम कर सकें। इसी कमरे में बैठ कर दोनों हल्का प्राणायाम भी किया करें।

आसन=इस यज्ञ में पत्नी, पति के वाम् भाग में बैठे। दोनों के मन काम-भावना से दूर रहें, क्योंकि रज: वीर्य द्रवित होकर स्वप्नावस्था में भी खण्डित न हो सके।

आचार्य=सदाचारी, सत्यवादी, वेद पाठी तथा क्रिया पूर्ण सफल सिद्ध होने के समय तक पूर्ण ब्रह्मचर्य का पालन करने वाला, यजमान के प्रति करुणा एवं सफलता की सद्भावना का इच्छुक होना चाहिए।

पुत्रेष्टि यज्ञ कराने के लिए आचार्य किस प्रकार का होना चाहिये इस पर वशिष्ठ मुनि ने अत्यन्त सूक्ष्म दृष्टि से विचार किया, वह चाहते थे कि इस यज्ञ को ऐसा आचार्य सम्पन्न कराये जिसने स्वप्न में भी पर-स्त्री का दर्शन न किया हो अर्थात् मनसा, वाचा, कर्मणा किसी भी प्रकार से पर-स्त्री गमन न किया हो और पूर्ण २५ वर्ष तक निरन्तर किसी भी रूप में स्त्री का दर्शन न किया हो। यज्ञ की समस्त व्यवस्था और चारों वेदों में से पुत्रेष्टि यज्ञ मन्त्रों को संग्रहीत कर सब कुछ संचित कर लिया था, केवल आचार्य के लिए स्थान रिक्त था। उनका ध्यान शृंगी ऋषि की ओर गया। शृंगी ऋषि ने उस समय तक यह जाना ही नहीं था कि स्त्री किसको कहते हैं और गृहस्थ जीवन क्या होता है। ऐसे अछूते व्यक्ति के द्वारा पुत्रेष्टि यज्ञ को सम्पन्न कराने के लिए चुना। आज के युग में शृंगी ऋषि जैसा आचार्य मिलना असम्भव है। परन्तु अत्यन्त शुद्ध आचरण वाले और उच्चकोटि के चरित्रवान व्यक्ति के द्वारा इस यज्ञ को सम्पन्न कराना चाहिए।

यज्ञ कुण्ड=चतुष्कोण ताम्र का।

यज्ञ समिधायें=ढाक और गूलर की सूखी स्वच्छ घुन आदि से रहित हों।

सामग्री=काकोली, क्षीर काकोली, जीवक, ऋषभक, मेदा, महामेदा, ऋद्धि, वृद्धि, विदारी कन्द, बाराही कन्द, शिकाकुल मिश्री, सालव लम्बा, काली मूसली, वहमन सफेद, शतावर, असगन्ध, सैमर की मूसली, सफेद मूसली, सालब पंजा, कौंच बीज छिलका उतार कर, गोखरू, शिवलिंगी, बीज बन्द, तालमखाना, लाजवन्ती, उटंगन, यह सब १०-१० ग्राम। सारिवा खरैंटी, कंघी, गिलोय, आँवला, अशोक की छाल,

बबूल की फली, बबूल का गोंद, बबूल की कोपलें (बबूल को कीकड़ भी कहते हैं) पीपल के फल गुलरियाँ, पीपल की दाढ़ी, बढ़ के फल गुलरियाँ, बढ़ की दाढ़ी, बादाम, छुआरा, किशमिश, गोला यह सब २०–२० ग्राम। हरी इलायची, जायफल, जावित्री, लौंग, शिलाजीत, यह सब १०-१० ग्राम। केशर ५ ग्राम, गूगल, चन्दन चूरा, नागर मोथा, कपूर कचरी, शुद्ध मधु, बूरा (चीनी) शुद्ध देसी घी। यह सब २००–२०० ग्राम। मोटा-मोटा कूट कर सबको मिलाकर सामग्री बना लें। आवश्यकता अनुसार जितनी सामग्री चाहिए इसी अनुपात से तैयार करें। पत्नी सामग्री की तथा पति शुद्ध घी की आहुति दें।

पूर्व लिखित विधि अनुसार सपत्नीक यज्ञ की प्रारम्भिक सामान्य क्रिया करने के पश्चात् पुत्रेष्टि यज्ञ सूक्त से यज्ञ करें। सायंकाल के समय यज्ञ भस्मी को यज्ञ कुण्ड से निकाल कर उसे एक चाँदी के पात्र में जल डालकर घोल दें। घण्टा-आधा घण्टा पश्चात् २–३ बार चला दिया करें। अगले दिन प्रातः ठिके हुए जल को सावधानी के साथ नितार कर स्वच्छ वस्त्र से छान कर उक्त चाँदी के पात्र में शेष क्षार को निकालकर पृथक कर स्वच्छ करके उसी में छने हुए जल को रख लें। १० ग्राम शुद्ध सुवर्ण की एक सेन्टीमीटर चौड़ी और पाँच सेण्टीमीटर लम्बी एक शलाका को बनवा कर रख लें। यज्ञ की समाप्ति के पश्चात् यज्ञाग्नि में सुवर्ण शलाका को रख दें। जब वह अग्नि के समान लाल हो जाय तो उसे निकाल कर चाँदी के पात्र में रखे पूर्व दिन की यज्ञ भस्मी के क्षार रूप जल में डालकर चाँदी के पात्र से ढक दें। पाँच मिनट पश्चात् इस जल को आधा-आधा पति-पत्नी दोनों नित्य पान किया करें। जल अधिक होने पर दिन में २–३ बार पान करें। नष्ट न करें। सुवर्ण शलाका और चाँदी के पात्र को स्वच्छ करके रख लें। अगले दिन फिर इनसे कार्य लेना है। यह क्रिया नित्य प्रति करनी चाहिए। रजो दर्शन काल में पत्नी यज्ञ पर न बैठे परन्तु जल का पान करती रहे। पति ही क्रम से घी और सामग्री की आहुति दें। रजोदर्शन से शुद्ध होने के पश्चात् पुनः यज्ञ पर बैठें। रजोदर्शन के प्रारम्भिक दिन से ८वीं रात्रि और १२वीं रात्रि में गर्भाधान संस्कार करें। अगले मास तक प्रतीक्षा करें, परन्तु यज्ञ और यज्ञ भस्मी जल के पान की क्रिया नित्य करते रहें। यदि गर्भाधान क्रिया निष्फल हो तो निराश न हों, २–४ मास में समस्त दोषों का निवारण होकर निश्चित रूपसे पूर्ण सफलता प्राप्त होगी।

पुत्रेष्टि सूक्त

स इन्नु रायः सुभृतस्य चाकनन्मदं यो अस्य रंह्यं चिकेतति।
त्वावृधो मघवन्दाश्वध्वरो मक्षू स वाजं भरते धना नृभिः ॥१॥

ऋग्वेद १०।१४७।४

(यः) जो विद्वान पुरुष (अस्य) इस विद्युत के (रंह्यं मदं) वेग उत्पन्न करने वाले चमत्कार को (चिकेतति) जानता है, (सः इत्नु) वह ही (अस्य सु भृतस्य रायः) इस उत्तम रीति से धारण करने योग्य ऐश्वर्य की (चाकनन्) कामना करता है। हे (मघवन्) ऐश्वर्य वाले ! (त्वावृधः) तेरे बल से बढ़ने वाला, (दाशु-अध्वरः) दान रूप अखण्ड यज्ञ करने वाला, (मक्षु) अति शीघ्र ही (नृभिः) ले जाने वाले रथादि साधनों से (धना भरते) नाना धन प्रदान करता है।

ऐषु चाकन्धि पुरुहूत सूरिषु वृधासो ये मघवन्नानशुर्मघम्।
अर्चन्ति तोके तनये परिष्टिषु मेधसाता वाजिनमह्रये धने ॥२॥

ऋग्वेद १०।१४७।३

हे (पुरुहूत) बहुत-सी प्रजाओं द्वारा बुलाये गये प्रभो ! (ये) जो (वृधासः) बढ़ने हारे विद्वान जन (मघम् आनशुः) उत्तम धन सम्पदा को प्राप्त कर लेते हैं, (एषु) उन (सूरिषु) विद्वान पुरुषों में तू (आचाकन्धि)

सर्व प्रकार से चमकता है। हे (मघवन्) धनैश्वर्य के स्वामिन्! वे लोग (वाजिनम्) बल, ज्ञान, वेग तथा ऐश्वर्य के स्वामी तुझको ही, (तोके तनये) पुत्र, पौत्र तथा (परिष्टिषु) नाना अन्य वाञ्छिनीय फलों को प्राप्त करने के लिए और (मेध-साता) लाभ कृषि आदि के लिए और (आ हूये धने) लज्जा को दूर करने वाले धन को प्राप्त करने के लिए (अर्चन्ति) पूजते हैं।

ब्रह्मणाग्निः संविदानो रक्षोहा बाधतामितः।
अमीवा यस्ते गर्भं दुर्णामा योनिमाशये ॥३॥

ऋग्वेद १०।१६२।१

(ब्रह्मणा सं-विदानः) वेद विधि द्वारा (रक्षोहा अग्निः) रोग-कीटादि कारण का नाश करने वाला अग्नि नामक औषधि (इतः) इस शरीर से (बाधताम्) उस रोग को दूर करे, (यः) जो (दुर्नामा) बुरे रूप वाला (अमीवा) रोग (ते गर्भं योनिम् आशये) तेरे गर्भ और योनि में गुप्त रूप से पहुँचे हैं।

यस्ते गर्भममीवा दुर्णामा योनिमाशये।
अग्निष्टं ब्रह्मणा सह निष्क्रव्यादमनीनशत् ॥४॥

ऋग्वेद १०।१६२।२

(यः) जो (दुर्णामा) बुरे रूप वाला (अमीवा) रोग (ते गर्भं योनिम् आशये) तेरे गर्भ और योनि भाग में गुप्त रूप से है, (अग्निः) अग्नि नामक औषधि (तं क्रव्यादम्) उस मांस खाने वाले रोगकारक कीटाणु [केशाद] को (निःअनीनशत्) सर्वथा नष्ट करे।

यस्ते हन्ति पतयन्तं निषत्स्नुं यः सरीसृपम्।
जातं यस्ते जिघांसति तमितो नाशयामसि ॥५॥

ऋग्वेद १०।१६२।३

(यः) हे स्त्री! जो रोग (ते पतयन्तं) तेरे गर्भाशय में जाते हुए वीर्यांश का (हन्ति) नाश करता है, वा (नि सत्स्नु) गर्भाशय में स्थिर होते हुए गर्भ का (हन्ति) नाश करता है, (यः) जो (सरीसृपं) सरकते, हिलते डोलते गर्भ का नाश करता है, (यः ते जातं जिघांसति) जो रोग तेरे उत्पन्न बालक का नाश करना चाहता है, (तम्) उस रोग को हम (इतः) इस स्थान से (नाशयामसि) दूर करें।

यस्त ऊरू विहरत्यन्तरा दम्पती शये ।
योनिं यो अन्तरारेळिह तमितो नाशयामसि ।।६।।

ऋग्वेद १०।१६२।४

हे स्त्री ! (यः) जो रोगकारी कारण (ते ऊरू विहरति) तेरे दोनों जांघों के बीच रहता है और (दम्पती अन्तरा शये) स्त्री पुरुष दोनों में से किसी के देह में भी गुप्त रूप से है और (यः) जो(योनिम् अन्तः आरे लिह) गर्भाशय के बीच में प्रविष्ट होकर गर्भ को चाट जाता है, (तम् इतः नाशयामसि) उस रोग-कारण रूप कीटाणु आदि को हम यहाँ से दूर करें ।

यस्त्वा भ्राता पतिर्भूत्वा जारो भूत्वा निपद्यते ।
प्रजां यस्ते जिघांसति तमितो नाशयामसि ।।७।।

ऋग्वेद १०।१६२।६

हे स्त्री ! (यः) जो (त्वा) तेरे पास (भ्राता) तेरे भाई रूप से वा (पतिः) पति रूप से वा (जारो भूत्वा) प्रेमी होकर (निपद्यते) प्राप्त होता है और (यः ते प्रजां जिघांसति) जो प्रजा को नष्ट करना चाहता है (तम् इतः नाशयामसि) हम उसको यहाँ से दूर करें ।

यस्त्वा स्वप्नेन तमसा मोहयित्वा निपद्यते ।
प्रजां यस्ते जिघांसति तमितो नाशयामसि ।।८।।

ऋग्वेद १०।१६२।६

(यः) जो (त्वा) तुझे (स्वप्नेन) निद्रा से (मोहयित्वा) बेहोश कर (निपद्यते) तेरे पास आता है, (यः ते प्रजां जिघांसति) जो तेरी प्रजा को नष्ट करना चाहता है (तम् इतः नाशयामसि) उसको हम यहाँ से नष्ट करें ।

उषा अप स्वसुस्तमः सं वर्तयति वर्तनिं सुजातता ।।९।।

ऋग्वेद १०।१७२।४

(उषा) उत्तम कान्तिमती स्त्री (स्वसुः) अपने पुत्रादि को उत्पन्न करने वाले पुरुष के (तमः) शोक क्लेश आदि को (अप वर्त्तयति) दूर करती है और उसके (वर्तनिं) मार्ग या गृह-व्यापार को (सुजातता) उत्तम पुत्र से वा उत्तम कुल-शील-चरित्र से (सं वर्त्तयति) साथ मिलकर ठीक प्रकार से चलावें ।

अपश्यं त्वा मनसा चेकितानं तपसो जातं तपसो विभूतम् ।
इह प्रजामिह रयिं रराणः प्र जायस्व प्रजया पुत्रकाम ॥१०॥

ऋग्वेद १०।१८३।१

हे पुरुष ! मैं (त्वा) तुझे (मनसा चेकितानं) चित्त से नाना संकल्प-विकल्प करते हुए और ज्ञानवान् होते हुए (अपश्यम्) देखती हूँ और तुझे (तपसः जातम्) तप से उत्पन्न और (तपसः विभूतम्) तप से व्याप्त देखती हूँ। हे (पुत्र-काम) पुत्र की कामना हारे युवा पुरुष! (इह) इस गृहस्थ आश्रम में (प्रजां) प्रजा को और (रयिम्) ऐश्वर्य, वल, वीर्य को (रराणः) प्रदान करता हुआ, (प्रजया प्र जायस्व) उत्तम सन्तान के रूप में स्वयं उत्पन्न हो अर्थात् तेरी सन्तान में तेरा रूप और तेरे सद्गुण चमकें।

अपश्यं त्वा मनसा दीध्यानां स्वायां तनू ऋत्व्ये नाधमानाम् ।
उप मामुच्चा युवतिर्बभूयाः प्र जायस्व प्रजया पुत्रकामे ॥११॥

ऋग्वेद १०।१८३।२

हे युवति ! मैं पुरुष (त्वा) तुझे (मनसा) मन से (दीध्यानां) ध्यान करती हुई (अपश्यं) देखूँ और (स्वायां तनू) अपनी देह में (ऋत्व्ये) ऋतुकाल में (नाधमानां) सौभाग्य से सम्पन्न होती हुई भी देखूँ। तू (युवतिः) यौवन से युक्त होकर (माम् उप उच्चा बभूयाः) मेरे समीप अति आदर को प्राप्त हो और हे (पुत्र कामे) पुत्र की कामना करने हारी ! तू (प्रजया प्रजायस्व) प्रजा द्वारा उत्तम सन्तान की माता बन।

अहं गर्भमदधामोषधीष्वहं विश्वेषु भुवनेष्वन्तः ।
अहं प्रजा अजनयं पृथिव्यामहं जनिभ्यो अपरीषु पुत्रान् ॥१२॥

ऋग्वेद १०।१८३।३

(अहम्) मैं चन्द्रमा तुल्य होकर (ओषधीषु) औषधि वनस्पतियों के बीच (गर्भम् अदधाम) गर्भ को धारण कराऊँ। (विश्वेषु भुवनेषु अन्तः) समस्त भुवनों के बीच सूर्य के तुल्य वीर्यधारक पत्नि में गर्भ धारण कराऊँ। (अहं पृथिव्याम्) मैं पृथिवी में मेघ या जल के तुल्य अपनी पृथिवी रूप जाया में (प्रजाः अजनयम्) सन्ततिएँ उत्पन्न करूँ और (अहं) मैं (जनिभ्यः) सन्तान उत्पन्न करने वाली धर्मपत्नि से और (अपरीषु) जो पर की न हो, अपनी हो, उसमें ही (पुत्रान् अजनयम्) पुत्रों को उत्पन्न करूँ।

विष्णुर्योनिं कल्पयतु त्वष्टा रूपाणि पिंशतु ।
आ सिञ्चतु प्रजापतिर्धाता गर्भं दधातु ते ।।१३।।

ऋग्वेद १०।१८४।१

(विष्णुः) गृहस्थ में प्रवेश करने वाला पुरुष (योनिं कल्पयतु) उत्तम गृह बनावे और (त्वष्टा) शिल्पी पुरुष (रूपाणि) नाना रुचिकर पदार्थ (पिंशतु) बनावे। (प्रजापतिः) प्रजा का पालक (आ सिञ्चतु) वीर्य का आसेचन करे। (धाता) हे स्त्री ! तेरा धारण-पोषण करने वा गर्भ आधान करने वाला पुरुष (गर्भं दधातु) तेरे गर्भ का भरण-पोषण करे।

गर्भं धेहि सिनीवालि गर्भं धेहि सरस्वति ।
गर्भं ते अश्विनौ देवावा धत्तां पुष्करस्रजा ।।१४।।

ऋग्वेद १०।१८४।२

हे (सिनीवाली) बन्धन में बाँधने वाली और पुरुष को वरण करने वाली ! तू (गर्भं धेहि) गर्भ को धारण कर। हे (सरस्वति) उत्तम ज्ञानवति ! तू (गर्भं धेहि) गर्भ को धारण कर। (पुष्कर-स्रजौ) पुष्टिकारक वीर्य और रजः को उत्पन्न करने वाले, (अश्विनौ) परस्पर व्याप्त होने वाले (देवौ) दोनों के कामयुक्त अंग (ते गर्भं आधत्ताम्) तेरे भीतर गर्भ को धारण करावें।

हिरण्ययी अरणी यं निर्मन्थतो अश्विना ।
तं ते गर्भं हवामहे दशमे मासि सूतवे ।।१५।।

ऋग्वेद १०।१८४।३

(यं) जिस (गर्भं) गर्भ को (हिरण्ययी अरणी) हित और रमण योग्य सुख से युक्त दो अरणि के मन्थन से अग्नि उत्पन्न हो जाती है (अश्विना) उसी प्रकार संगत रूप से स्त्री-पुरुष मिलकर (निर्मन्थतः) अग्नि के तुल्य बालक रूप से उत्पन्न करते हैं, (तं) उस (ते गर्भं) तेरे गर्भस्थ सन्तान को हम (दशमे मासि सूतवे) दसवें मास में प्रसव होने के लिए (हवामहे) सब प्रकार से स्वीकार करें।

अहाव्यग्ने हविरास्ये ते स्रुचीव घृतं चम्वीव सोमः ।
वाजसनिं रयिमस्मे सुवीरं प्रशस्तं धेहि यशसं बृहन्तम् ।।१६।।

ऋग्वेद १०।९१।१५

हे (अग्ने) अग्रणी ! तेजस्विन ! (स्रुचि घृतम् इव) स्रुच में जिस

प्रकार यज्ञिय घृत और हवि डाली जाती है उसी प्रकार (ते आस्ये) तेरे मुख में (हविः अहावि) उत्तम ग्राह्य वचन हों और (घृतम्) मुख पर तेज हो। (चम्वि इव सोमः) चमस में सोम के तुल्य (चम्वि) तेरी सेना के आधार पर तेरा (सोमः) ऐश्वर्य हो। तू (अस्मे) हमें (वाजसनिं रयिम्) बल और अन्न देने वाला ऐश्वर्य, (प्रशस्तं सु-वीरम्) प्रशंसा योग्य, सुखदायी वीर जन, और (बृहन्तं यशसम्) महान् यश (धेहि) प्रदान कर।

मक्षू कनायाः सख्यं नवग्वा ऋतं वदन्त ऋतयुक्तिमग्मन् ।
द्विबर्हसो य उप गोपमागुरदक्षिणासो अच्युता दुदुक्षन् ।।१७।।

ऋग्वेद १०।६१।१०

जो विद्वान् होकर (कनायाः सख्यं) कन्या का सख्य प्राप्त करते, सत्य वचन बोलते और (ऋत-युक्ति) ऋतुकाल में भोग करते हैं वे अपने वंश के रक्षक पुत्र को प्राप्त करते हैं और अच्युत, अमोघ फल प्राप्त करते हैं।

मक्षू कनायाः सख्यं नवीयो राधो न रेत ऋतमित्तुरण्यन् ।
शुचि यत्ते रेक्ण आयजन्त सबर्दुघायाः पय उस्रियायाः ।।१८।।

ऋग्वेद १०।६१।११

कन्या के नवीन सख्य, धनवत, ब्रह्मचर्य पालन द्वारा वीर्य और गुरु-शुश्रूषा से सत्यज्ञान को जो प्राप्त करते हैं, वे ही गाय के दूध के समान (शुचि रेक्णः) शुद्ध सन्तति का भी लाभ करते हैं।

इमां त्वमिन्द्र मीढ्वः सुपुत्रां सुभगां कृणु ।
दशास्यां पुत्राना धेहि पतिमेकादशं कृधि ।।१९।।

ऋग्वेद १०।८५।४५

हे (इन्द्र) ऐश्वर्यवन् ! हे (मीढ्वः) वीर्य सेचन करने हारे ! (त्वम्) तू (इमां) इसको (सु-भगां) उत्तम ऐश्वर्य से युक्त (सु-पुत्रां) उत्तम पुत्रों की माता (कृणु) कर। (दश पुत्रान् आ धेहि) दस पुत्रों का आधान कर और तू (पतिम्) पतिरूप अपने आपको (एकादशं कृधि) पुत्रों के बीच ग्यारहवाँ बन।

अप्सु धूतस्य हरिवः पिबेह नृभिः सुतस्य जठरंपृणस्व ।
मिमिक्षुर्यमद्रय इन्द्र तुभ्यं तेभिर्वर्धस्व मदमुक्थवाहः ।।२०।।

ऋग्वेद १०।१०४।२

हे (हरिवः) शक्तिशाली लोकों के स्वामिन् ! (अप्सु धूतस्य) देह

के रक्त, रसों वा प्राणों के आश्रय पर संचालित और (नृभिः सुतस्य) पुरुषों द्वारा गर्भ में उत्पन्न जीव के (जठरम्) उदर को (इह) इस लोक में (पृणस्व) तू ही रक्षा करता है। हे (इन्द्र) जल अन्न के देने हारे ! (यम्) जिस (मदम्) सुखप्रद जल वा अन्न को (अद्रयः)मेघगण (मिमिक्षुः) पृथ्वी पर बरसाते हैं वह भी (तुभ्यम्) तेरा ही है और हे (उक्थ-वाहः) उत्तम वाणी वेद को धारण करने वाले ! (तेभिः वर्धस्व) उनसे तू बढ़। उसके कारण तू महान है।

तमोषधीर्दधिरे गर्भमृत्वियं तमापो अग्निं जनयन्त मातरः।
तमित्समानं वनिनश्च वीरुधोऽन्तर्वतीश्च सुवते च विश्वहा ॥२१॥

ऋग्वेद १०।९१।६

(ओषधीः ऋत्वियं गर्भम्) औषधियें जिस प्रकार ऋतु अनुसार प्राप्त गर्भ को धारण करती हैं, और (आपः अग्निम्) जिस प्रकार जलतत्व अपने भीतर अग्नितत्व को वा मेघस्थ जल विद्युत अग्नि को धारण करते और (जनयन्त) प्रकट करते हैं, (वनिनः वीरुधः तम् अग्निम्) और जिस प्रकार की वन औषधिएँ उस अग्नि को अपने में धारण करती हैं, उसी प्रकार (ओषधीः मातरः) वीर्य को धारण करने वाली मातायें (तम्) उस (अग्निम्) स्वप्रकाश, (समानम्) ज्ञान से युक्त आत्मा को (ऋत्वियम् गर्भम्) ऋतु अनुसार प्राप्त गर्भ के रूप में (दधिरे जनयन्त) धारण और उत्पन्न करती हैं और (अन्तर्वती) वे गर्भिणी होकर (विश्वहा च सुवते) सर्वदा उत्पन्न करती रहें।

उशन्ति घा ते अमृतास एतदेकस्य चित् त्यजसं मर्त्यस्य।
नि ते मनो मनसि धाय्यस्मे जन्युः पतिस्तन्व १ मा विविश्याः ।२२॥

ऋग्वेद १०।१०।३

(ते अमृतासः) वे नाश को प्राप्त न होने वाले दीर्घायु पुरुष (एतत् उशन्ति घ) ऐसा अवश्य चाहते हैं कि (एकस्य मर्त्यस्य चित् त्यजसं) एक मनुष्य का भी उत्तम पुत्र हो। और (ते मनः अस्मे निधायि) तेरा मन मेरे मन में निहित है। तू (जन्युः पतिः) पुत्रोत्पादक स्त्री का पति है। तू ही (तन्वम् आ विविश्याः) देह में गर्भ रूप से प्रविष्ट हो।

ता मन्दसाना मनुषो दुरोण आ धत्तं रयिं सहवीरं वचस्यवे ।
कृतं तीर्थं सुप्रपाणं शुभस्पती स्थाणुं पथेष्ठामप दुर्मतिं हतम् ॥२३॥

ऋग्वेद १०।४०।१३

हे (शुभस्पती) शोभायुक्त पदार्थों के रक्षक स्त्री पुरुषों ! (ता) आप दोनों (मनुषः दुरोणे) मननशील विद्वान के गृह में रहकर (मन्दसाना) अन्न और ज्ञान से अपने को तृप्त करते हुए, (वचस्यवे) उत्तम वेदज्ञाता विद्वान् पुरुष के (राये) ज्ञान रूप धन को (आधत्तम्) सब प्रकार से धारण करो और (सह-वीरं) वीर पुत्र से युक्त (रयिं धत्तम्) ऐश्वर्य को प्राप्त करो। आप दोनों (शुभस्पती) शोभायुक्त उत्तम गुणों वाले (सु-प्र-पाणं तीर्थं) सुख से जलपान योग्य नदी धारा के समान (सुप्रपाणं तीर्थं) व्रत पालन कराने वाले गुरु को (कृतम्) करो। आप (पथेष्ठाम् स्थाणुम्) मार्ग में स्थित वृक्ष के समान आश्रय देने वाले, आश्रयदाता जन को स्वीकार करो । और (दुर्मतिम् अप हतम्) विपरीत ज्ञान दूर करो ।

स त्वं विप्राय दाशुषे रयिं देहि सहस्रिणम् ।
अग्ने वीरवतीमिषम् ॥२४॥

ऋग्वेद ८।४३।१५

हे (अग्ने) ज्ञानवान् ! विद्वान् ! तेजस्विन् ! (सः त्वं) वह तू (दाशुषे) ज्ञानादि देने वाले (विप्राय) मेधावी विद्वान् को (सहस्रिणं रयिं) सहस्रों की संख्या से युक्त ऐश्वर्य और (वीरवतीम् इषम्) वीरों और पुत्रों से युक्त अन्न, (देहि) प्रदान कर । इसी प्रकार परमेश्वर जीव को (सहस्रिणम्) सुखों और बलयुक्त प्राणों से युक्त 'रयिं' मूर्त्तदेह और (वीरवतीम् इषम्) प्राणों वाली इच्छा शक्ति देता है ।

प्र यं राये निनीषसि मर्तो यस्ते वसो दाशत् ।
स वीरं धत्ते अग्न उक्थशंसिनं त्मना सहस्रपोषिणम् ॥२५॥

ऋग्वेद ८।१०३।४

हे (वसो) सब जगत् के रक्षक, आच्छादक, सब में बसने वाले सर्व व्यापक ! (यं) जिसको तू (राये निनीषसि) ऐश्वर्य प्राप्ति के लिए सन्मार्ग से ले जाता है और (यः मर्त्तः ते दाशत्) जो मरणशील जीव

अपने को तुझे सौंप देता है, हे (अग्ने) सर्वज्ञ ! अग्रनायक ! मार्ग प्रकाशक ज्योर्तिमय ! (सः) वह (त्मना) अपने आप, (उक्थ-शंसिनम्) वेद वचनों के वक्ता (सहस्र-पोषिणं) सहस्रों के पोषक (वीरं) वीर पुत्र, विविध विद्योपदेष्टा, तुमको (धर्त्ते) हृदय से धारण कराता है।

प्र सो अग्ने तवोतिभिः सुवीराभिस्तिरते वाजभर्मभिः ।
यस्य त्वं सख्यमावरः ॥२६॥

ऋग्वेद ८।१९।३०

हे (अग्ने) सर्व प्रकाशक ! व्यापक प्रभो! स्वामिन् ! (वाजभर्मभिः) ज्ञान, बल अन्नादि को पोषण करने वाली (सुवीरभिः) उत्तम वीरों, पुत्रों से युक्त, (तवऊतिभिः) तेरी रक्षाओं और दीप्तियों से (सः प्र तिरते) वह बढ़ा करता है (यस्य सख्यं) जिसके मित्र भाव को (त्वं आवरः) तू स्वीकार कर लेता है।

पुत्रिणा ता कुमारिणा विश्वमायुर्व्यश्नुतः ।
उभा हिरण्यपेशसा ॥२७॥

ऋग्वेद ८।३१।८

आप दोनों पति-पत्नी (पुत्रिणा) पुत्रों वाले और (कुमारिणा) प्रथम वयस में वर्तमान, कुमारों, सन्तानों के माता-पिता होकर (विश्वम् आयुः) पूर्ण आयु का (वि अश्नुतः) भोग करें और (उभा) दोनों (हिरण्यपेशसा) सुवर्ण के उत्तम अलंकार धारण करने वाले हों।

यो गर्भमोषधीनां गवां कृणोत्यर्वताम् ।
पर्जन्यः पुरुषीणाम् ॥२८॥

ऋग्वेद ७।१०२।२

(यः) जो (ओषधीनाम्) मेघ के समान औषधियों के (गवाम्) गौओं, (अर्वताम्) अश्वों और (पुरुषोणाम्) मानव स्त्रीयों के (गर्भम् कृणोति) गर्भ उत्पन्न करता है, वही (पर्जन्यः) सबका, सबसे उत्तम उत्पादक परमेश्वर आप ही हो।

जनीयन्तो न्वग्रवः पुत्रीयन्तः सुदानवः ।
सरस्वन्तं हवामहे ॥२९॥

ऋग्वेद ७।९६।४

(जनीयन्तः) शुभ सन्तान की इच्छा करते हुए (पुत्रीयन्तः)

पुत्र वाले होने की इच्छा करते हुए (सुदानवः) दानी लोग (अग्रवः) ब्रह्म की समीपता चाहने वाले (नु) आज (सरस्वन्तम्) सरस्वती के पुत्र रूपी ज्ञान को (हवामहे) आवाहन करते हैं।

इन्द्रासोमा युवमङ्ग तरुत्रमपत्यसाचं श्रुत्यं रराथे।
युवं शुष्मं नर्यं चर्षणिभ्यः सं विव्यथुः पृतनाषाहमुग्रा ॥३०॥

ऋग्वेद ६।७२।५

हे (अंग) श्रेष्ठ अंगों वाले! और हे (इन्द्रासोमा) ऐश्वर्ययुक्त सूर्यवत् तेजस्विन्! एवं सोम्य गुण युक्त चन्द्रवत् सुन्दर युगल स्त्री-पुरुष जनों! (युवम्) आप दोनों (तरुत्रम्) पार उतारने वाले (अपत्य-साचं) पुत्रादि सन्तान युक्त, (श्रुत्यं) श्रवण करने योग्य ज्ञान को (रराथे) प्रदान करो। आप दोनों (उग्रा) बलवान् होकर (चर्षणिभ्यः) मनुष्यों के हितार्थ (नर्यं) नायकोचित (पृतना-षाहम्) सैन्यों वा संग्रामों को भी जीतने वाले (शुष्मं) बल वा बलवान् पुत्र को (सं विव्यथुः) सन्तान रूप से उत्पन्न करो।

यो वामृजवे क्रमणाय रोदसी मर्तो ददाश धिषणे स साधति
प्र प्रजाभिर्जायते धर्मणस्परि युवोः सिक्ता विषुरूपाणि सव्रता।३१।

ऋग्वेद ६।७०।३

हे (धिषणे) एक दूसरे को धारण करने वाले, बुद्धिमान् (रोदसी) सूर्य भूमि के समान तेजस्वी और दृढ़ स्त्री पुरुषों! (वां) आप दोनों में से (यः मर्तः) जो मनुष्य (ऋजवे क्रमणाय) धर्म मार्ग पर चलने के लिए (ददाश) अपने को समर्पित करता है (सः साधति) वही वस्तुतः सन्मार्ग पर जाता और वही उद्देश्य साधता है। वही (युवोः) आप दोनों के बीच (धर्मणः परि) धर्मानुसार (प्रजाभिः प्र जायते) उत्तम प्रजा और सन्तानों द्वारा उत्पन्न होता है। (युवोः) आप दोनों के (सिक्ता) वीर्य से उत्पन्न सन्तान (विषु रूपाणि) नाना प्रकार के (सव्रता) समान शुभाचरण युक्त उत्पन्न होते हैं।

रुद्रस्य ये मीळ्हुषः सन्ति पुत्रा यांश्चो नु दाधृविर्भरध्यै।
विदे हि माता महो मही षा सेत्पृश्निः सुभ्वे ३ गर्भमाधात्।३२।

ऋग्वेद ६।६६।३

(ये) जो (रुद्रस्य) वायु के समान बलवान्, (मीढहुषः) वीर्य

सेचन में समर्थ पूर्ण युवा पुरुष के (पुत्राः) पुत्र होते हैं (यान् च) और जिनको (नु) शीघ्र ही (भरध्यै) भरण-पोषण के लिए (विदे) प्राप्त करती है वे ही (महः) गुणों से महान् होते हैं। और (सा माता) वह माता (मही) बड़ी पूज्य होती है। (सा इत्) वह माता ही (पृश्निः) अन्तरिक्ष, पृथ्वी के समान दूध मिलाकर पालने-पोषने में समर्थ माता (सुभ्वे) उत्तम वीर्यवान् पुरुष की वंश वृद्धि के लिए (गर्भम् आधात्) गर्भ धारण करती और इसी प्रकार (पृश्नि) वृष्टिकारक सूर्यवत् वीर्य सेचन में समर्थ पुरुष भी (शुभे) उत्तम भूमि के समान उत्तम सन्तानोत्पादक स्त्री के शरीर में (गर्भम् आ आधात्) गर्भ धारण करावे।

स मे वपुश्छदयदश्विनोर्यो रथो विरुक्मान्मनसा युजानः।
येन नरा नासत्येषयध्यै वर्तिर्याथस्तनयाय त्मने च ॥३३॥

ऋग्वेद ६।४९।५

(यत् रथः) जो रमणीय, सुखजनक व्यवहार (विरुक्मान्) विविध रुचियों से समृद्ध, (मनसा युजानः) चित्त से जुड़ने वाला है (येन) जिससे (नरा) स्त्री और पुरुष दोनों (न-असत्या) कभी परस्पर असत्याचरण न करते हुए वा नासिका अर्थात् मुख्य स्थान पर विराजते हुए (तनयाय त्मने च) पुत्र लाभ और अपने जीवन या आत्मा के हितार्थ (वर्त्तिः याथः) जीवन-मार्ग व्यतीत करते हैं वह (विरुक्मान् रथः) विशेष कान्तिमान रथ के समान आश्रय (मेवपुः छदयत्) मेरे शरीर को आश्रय, बल देता हुआ उसकी रक्षा करे।

वद्मा सूनो सहसो नो विहाया अग्ने तोकं तनयं वाजि नोदाः।
विश्वाभिर्गीर्भिरभि पूर्त्तिमश्यां मदेम शतहिमाः सुवीराः ॥३४॥

ऋग्वेद ६।१३।६

हे (अग्ने) अग्नि के समान तेजस्विन्! हे (सहसः सूनो) सैन्य बल के संचालक! तू (विहायाः) महान् होकर (नः) हमारा (वद्मा) उपदेष्टा हो और (नः) हमें (वाजि) अन्न, बल, ऐश्वर्यादि सम्पन्न धन तथा (तोकं) वंश को बढ़ाने और दुःख के नाश करने वाले पुत्र तथा (तनयम्) पौत्र सन्तान (दः) दे। वा हमें (वाजिनः) ज्ञानी और बलवान् नाना पुरुष तथा पुत्रादि सन्तान प्रदान कर। मैं (विश्वाभिः गीर्भिः)

समस्त उत्तम प्राणियों से (पूर्त्तिम् अभि अश्याम्) पूर्णता को प्राप्त करूँ। हम सब (सुवीराः) उत्तम वीर होकर (शतहिमाः) सौ वर्षों तक (मदेम) आनन्द लाभ करें।

समश्विनोरवसा नूतनेन मयोभुवा सुप्रणीती गमेम ।
आ नो रयिं वहतमोत वीराना विश्वान्यमृता सौभगानि ।।३५।।

ऋग्वेद ५।७६।५

हम लोग (अश्विनीः) विद्याओं को जानने वाले, जितेन्द्रिय स्त्री-पुरुषों को (नूतनेन) सदा नवीन, रमणीय (मयोभुवा) सुखप्रद (अवसा) ज्ञान और रक्षा से वा प्रेम से और (सु-प्र-णीती) उत्तम, प्रेम व्यवहार और उत्कृष्ट नीति से (सं गमेम) संगति लाभ करें। वे दोनों (नः) हमें (रयिम्) ऐश्वर्य (आ वहतम्) प्राप्त करावें, (उत वीरान् आ वहतम्) और वीर पुत्रों को प्राप्त करें, और (विश्वानि) सब प्रकार के (अमृता) उत्तम जलों, अन्नों और अविनाशी दीर्घायु जीवनों और न नष्ट होने वाले (सौभगानि) उत्तम ऐश्वर्यों को (आ वहतम्) प्राप्त करें, करावें।

अग्निस्तुविश्रवस्तमं तुविब्रह्माणमुत्तमम् ।
अतूर्तं श्रावयत्पतिं पुत्रं ददाति दाशुषे ।।३६।।

ऋग्वेद ५।२५।५

(अग्निः) विद्वान्, आचार्य एवं अग्रणी नायक वा परमेश्वर (दाशुषे) दानशील पुरुष को (तुविश्रवस्तमम्) बहुत प्रकार के अन्नों, श्रवण योग्य ज्ञानों से युक्त और (तुवि-ब्रह्माणम्) बहुत से विद्वान् पुरुषों, धनों और चारों वेद ज्ञानों से युक्त, (उत्तमं) उत्तम (अतूर्तं) अपीड़ित, दीर्घायु, (श्रावयत्-पतिं) ज्ञानोपदेश श्रवण कराने वाले पालक से युक्त विद्वान् वा उपदेष्टाओं का पालक, (पुत्रं) उत्तम पुत्र (ददाति) प्रदान करता है।

यस्ते अग्ने नमसा यज्ञमीट्ट ऋतं स पात्यरुषस्य वृष्णः ।
तस्य क्षयः पृथुरा साधुरेतु प्रसस्राणस्य नहुषस्य शेषः ।।३७।।

ऋग्वेद ५।१२।६

हे (अग्ने) अग्रणी नायक ! राजन् ! ज्ञानवान् ! विद्वान् ! (यः) जो (अरुषस्य) तेजस्वी, अहिंसक, रोषरहित, प्रेम युक्त (वृष्णः) मेघवत् ज्ञान ऐश्वर्य के देने वाले, उदार (ते) तेरे (यज्ञम्) सत्संग को (नमसा ईट्टे)

आदर विनय से प्राप्त करता है। (सः) वही (ऋतम्) धन और ज्ञान-समृद्धि को (पाति) पाता और रखता है। (तस्य प्र-सस्रणिस्य) तेरी परिचर्या करते हुए उसका (क्षयः पृथुः) रहने का भी विशाल गृह और उस (नहुषस्य) पुरुष का (शेषः साधुः) पुत्र आदि भी उत्तम (आ एतु) प्राप्त होता है।

नू नो रयिं पुरुवीरं बृहन्तं दस्रा मिमाथामुभयेष्वस्मे।
नरो यद्वामश्विना स्तोममावन्त्सधस्तुतिमाजमीळहासो अग्मन् ॥३८॥

ऋग्वेद ४।४४।६

हे (दस्रा) परस्पर के कष्टों को दूर करने वाले (अश्विना) जितेन्द्रिय-स्त्री पुरुषों ! आप दोनों (अस्मे) हमारी वृद्धि और कल्याण के लिए (उभयेषु) राजा प्रजा, वा स्त्री-वर्ग पुरुष-वर्ग दोनों के निमित्त (पुरुवीरं) बहुत से वीरों वा पुत्रों से युक्त (बृहन्तं रयिं नु मिमाथाम्) बहुत बड़ा ऐश्वर्य उत्पन्न करो। (यत्) क्योंकि (अजमीढहासः नरः) 'अज', अविनाशी आत्माओं वा दुष्ट वृत्तियों को परे फेंकने वाले जितेन्द्रियों में मेघ तुल्य ज्ञान की वृष्टि करने वाले विद्वान् लोग (वाम्) तुम दोनों के लिए (स्तोमं) उत्तम उपदेश (आवन्) करते और (सधस्तुतिं आ अग्मन्) एक साथ ही स्तुति, उपदेश का विधान करते हैं।

इळामग्ने पुरुदंसं सनिं गोः शश्वत्तमं हवमानाय साध।
स्यान्नः सूनुस्तनयो विजावाग्ने सा ते सुमतिर्भूत्वस्मे ॥३९॥

ऋग्वेद ३।१।२३

हे (अग्ने) विद्वान् (गोः) वाणी का (शश्वत्तमम्) अनादि भूत शब्दार्थ सम्बन्ध (हवमानाय) आनन्द के लिए (पुरुदंसम्) जिससे बहुत कर्म बनते हैं (सनिम्) अलग-अलग की हुई (इडाम्) स्तुति करने वाली वाणी को आप (साध) सिद्ध कीजिये। हे (अग्ने) विद्वान् ! जो (ते) तुम्हारी (सुमतिः) उत्तम बुद्धि होती है (सा) वह (अस्मे) हम लोगों के लिये (भूतु) हो जिससे (नः) हमारे (विजावा) विशेष करके उत्पन्न हुआ हो ऐसा (तनयः) विस्तीर्ण बुद्धिवाला (सूनुः) पुत्र (स्यात्) हो।

अबोध्यग्निर्ज्म उदेति सूर्यो व्यु १ षाश्चन्द्रा मह्यावो अर्चिषा ।
आयुक्षातामश्विना यातवे रथं प्रासावीद्देवः सविता जगत्पृथक् ।४०।

ऋग्वेद १।१५७।१

(अग्निः) अग्नि जिस प्रकार (अबोधि) प्रज्वलित होता और (ज्मः) पृथिवी से भिन्न उसको प्रकाशित करने वाला (सूर्यः) सूर्य जैसे उदय को प्राप्त होता है वैसे विनयी शिष्य अपनी विद्याभूमि आचार्य से विद्वान् हो सूर्य के समान तेजस्वी होकर (उद्-एति) उदय को प्राप्त हो। (चन्द्रा) जैसे आल्हादकारिणी, सुखप्रद (उषाः) प्रभात वेला (मही) अति(अर्चिषा) कान्ति सहित (आ अवः) प्रकट होती है। उसी प्रकार आदरणीय, कान्तिमती कन्या तेज से विविध गुणों को प्रकट करे। तब ठीक इसी प्रकार (अश्विना) विद्या से व्यापक और विद्या के बल से जगत् के सुखों को भोगने वाले विद्वान् स्त्री-पुरुष मिलकर (यातवे) संसार के मार्ग पर चलने के लिये (रथं) उत्तम आनन्द देने और वेग से चलने वाले गृहस्थ रूप रथ को (आ अयुक्षाताम्) युक्त करें। जैसे (सविता देवः) सर्वैश्वर्यवान्, सर्वप्रेरक तेजस्वी सूर्य (जगत्) सब जंगम प्राणि संसार को (पृथक प्र असावीत्) पृथक प्रेरित कर सबको उनकी प्रकृति के अनुसार चलाता और उनको जीवन देता है। उसी प्रकार उत्पादक (देवः) कामनावान् पुत्रैषी, प्रिय पुरुष सन्तान को उत्पन्न करे।

युवं ह गर्भं जगतीषु धत्था युवं विश्वेषु भुवनेष्वन्तः ।
युवमग्निं च वृषणावपश्च वनस्पतीरँश्विनावैरयेथाम् ।।४१।।

ऋग्वेद १।१५७।५

हे (वृषणा) उत्तम वृष्टि करने वालो सूर्य चन्द्र ! या सूर्य और वायु ! और उसके समान तेजस्वी और बलवान् स्त्री पुरुषो ! जिस प्रकार सूर्य और वायु (जगतीषु गर्भम्) भूमियों में और प्राणि योनियों में ऋत्वनुसार गर्भ धारण कराते हैं और (जगतीषु) तीनों लोकों में (गर्भ) वृष्टि योग्य जल को सूक्ष्म रूप से धारण करते हैं उसी प्रकार से हे स्त्री-पुरुषो ! आप दोनों (वृषणौ) कामनाओं, सुखों, वीर्यों के सेचन और वीर्य के रक्षण करने हारो ! आप (जगतीषु) गमन योग्य रात्रियों में ही (गर्भधत्थः) गर्भाधान क्रिया द्वारा गर्भ धारण करो। इससे अतिरिक्त निषिद्ध रात्रियों में नहीं। और (जगतीषु) आप दोनों प्रजाओं में (गर्भ)

वशकारी प्रधान पुरुष को (धत्थः) धारण या स्थापन करो। (युवं) आप दोनों (विश्वेषु भुवनेषु) सब लोकों के बीच सुख से रहें। (युवम्) आप दोनों (अग्निम्) अग्नि, और (अपः च) जलों को और (वनस्पतीन् च) वनस्पतियों को भी (ऐरयेथाम्) कार्य में लाओ। अथवा (अग्निम्) अग्रणी नायक और विनीत पुत्र, विद्वान् ज्ञानी, (अपः च) आप्त पुरुषों और (वनस्पतीन्) वृक्ष के समान सबके शरणदाता और सेना के दलपतियों और ऐश्वर्य पालकों को (ऐरयेथाम्) सदा अपने योग्य कार्यों पर नियुक्त करो।

त्वन्नो अग्ने तव देव पायुभिर्मघोनो रक्ष तन्वश्च वन्द्य।
त्राता तोकस्य तनये गवामस्यनिमेषं रक्षमाणस्तव व्रते ॥४२॥

ऋग्वेद १।३१।१२

हे (अग्ने) ज्ञानवान् परमेश्वर! अग्रणी नायक राजन्! सभाध्यक्ष! हे (देव) सुख देने हारे, राष्ट्र का विजय करने वाले! (त्वं) तू (मघोनः) ऐश्वर्य से युक्त (नः) हम सम्पन्न प्रजाजनों की और (नः तन्वः च) हमारे शरीरों और (तोकस्य) हमारे सन्तानों के (तन्वः च) शरीरों की अपने (पायुभिः) पालनकारी साधनों से (रक्ष) रक्षा कर। तू (तनये) हमारे पुत्र पौत्रादि सन्तति के निमित्त (तव व्रते) अपने नियम शासन व्यवस्था में (अनिमेषं) बिना किसी प्रमाद के, निरन्तर (रक्षमाणः) उनके प्राणों की रक्षा करता हुआ भी उनकी (गवाम्) गौ आदि पशुओं और चक्षु आदि इन्द्रियों का (त्राता असि) पालक है। उत्पादक वीर्य पालनकारी गुणों से सन्तति प्रसन्तति और उनके हस्त, पाद, चक्षु आदि तक की निरन्तर पालना करता है। वीर्य आदि में दोष होने से ही सन्तति प्राप्त नहीं होती।

यस्मै त्वं सुद्रविणो ददाशोऽनागास्त्वमदिते सर्वताता।
यं भद्रेण शवसा चोदयासि प्रजावता राधसा ते स्याम ॥४३॥

ऋग्वेद १।९४।१५

हे (अदिते) अखण्ड! अखण्ड शासन वाले बलवान् राजन्! (त्वं) तू (सुद्रविणः) उत्तम ऐश्वर्यवान् है। तू (यस्मै) जिसको (सर्वताता) समस्त कार्यों में (अनागाःत्वम्) पापरहितता, शुद्ध आचरण का (ददाशः) उपदेश प्रदान करता है और (यं) जिसको तू (शवसा) बल और ज्ञान से

(चोदयति) सन्मार्ग में चलाता है। वह (प्रजावता) उत्तम पुत्र पौत्रों (राधसा) और ऐश्वर्य से युक्त हो जाता है। हम भी (ते) तेरे लिए (शवसा) ज्ञान, बल और (प्रजावता राधसा) प्रजा से समृद्ध, ऐश्वर्य ,से युक्त (स्याम) हों।

आधत्त पितरो गर्भं कुमारं पुष्करस्रजम्।
यथेह पुरुषोऽसत् ॥४४॥

यजुर्वेद २।३३

गृहस्थ जनो! आप लोग (गर्भम्) गर्भ का (आधत्त) आधान करो और फिर (पुष्कर स्रजम्) पुष्टिकर पदार्थों के द्वारा बने शरीर वाले, सुन्दर (कुमारम्) बालक का (आधत्त) पालन-पोषण करो (तथा) जिससे (इह) इस लोक में वह एवं बालक ही (पुरुषः असत्) पूर्ण पुरुष रूप हो जाय।

भूर्भुवः स्वः सुप्रजाः प्रजाभिः स्याᳫँ सुवीरो वीरैः सुपोषः पोषैः।
नर्य प्रजां मे पाहि शᳫँस्य पशून्मे पाह्यथर्य पितुंमे पाहि ॥४५॥

यजुर्वेद ३।३७

(भूःर्भु वः स्वः) प्राण, उदान और व्यान इनके बल पर मैं पुरुष (प्रजाभिः) पुत्र आदि सन्तानों से (सु-प्रजाः) उत्तम सन्तान वाला (स्याम्) होऊँ। (वीरैः) वीर्यवान् पुरुषों से मैं (सुवीरः स्याम्) उत्तम पुत्रों वाला होऊँ और (पोषैः) पुष्टिकारक अन्न आदि पदार्थों से मैं (सुपोषः) पुष्टि युक्त होऊँ। हे (नर्य) पुरुषोंके हितकारिन! तू (में प्रजाम् पाहि) मेरी प्रजा का पालन कर। हे (शंस्य) स्तुति योग्य (मे पशून्पाहि) मेरे पशुओं का पालन और हे (अथर्य) ज्ञानवान्! (में पितुम् पाहि) मेरे अन्न की तू उत्तम रीति से रक्षा कर।

ओषधयः प्रतिगृभ्णीत पुष्पवतीः सुपिप्पलाः।
अयं वो गर्भऽऋत्वियः प्रत्नᳫँ सधस्थमासदत् ॥४६॥

यजुर्वेद ११।४८

जैसे (पुष्पवतीः) फूलों वाली और (सुपिप्पलाः) उत्तम फल देने वाली (ओषधयः) औषधियाँ गर्भ ग्रहण करती हैं। वैसे ही हे (ओषधयः) वीर्य को धारण करने में समर्थ स्त्रियो! आप सभी (पुष्पवतीः) रजस्वला

एवं (सुपिप्पलाः) सफल होकर (प्रतिगृभ्णीत) पृथक-पृथक गर्भ ग्रहण करो। (वः) तुम्हारा (अयं) यह (गर्भः) ग्रहण किया हुआ गर्भ (ऋत्वियः) ऋतुकाल में प्राप्त होकर (प्रत्नम्) अपने प्रथम प्राप्त (सधस्थम्) स्थान पर ही (आसदत्) स्थिर रहे।

सिनीवाली सुकपर्दा सुकुरीरा स्वौपशा।
सा तुभ्यमदिते मह्योखां दधातु हस्तयोः ॥४७॥

यजुर्वेद ११।५६

हे (अदिते) प्रजातन्तु रूप आनन्द वाली गृहणी ! हे (महि) पूजनीय ! जो (सिनीवाली) प्रेम बन्धन से युक्त, (सु-कपर्दा) उत्तम केश वाली, (सु-कुरीरा) उत्तम आभूषण वाली, (स्वौपशा) उत्तम अंगों वाली है (सा) वह (तुभ्यम्) तेरे लिए (हस्तयोः) हाथों में (उखाम् इव) पात्र के समान (उखाम्) 'उखा' अर्थात् प्रजापति के सन्तान प्रसव के क्रम को (आदधातु) धारण करे।

उखां कृणोतु शक्त्या बाहुभ्यामदितिर्धिया ।
माता पुत्रं यथोपस्थे साग्निं बिभर्त्तु गर्भऽआ।
मखस्य शिरोऽसि ॥४८॥

यजुर्वेद ११।५७

शिल्पी जैसे (बाहुभ्याम्) अपनी बाहुओं से (उखां कृणोप्ति) मिट्टी से हांडी बनाता है। वैसे ही परमेश्वर (धिया) आकर्षण करने वाली (शक्त्या) शक्ति से (उखां) इस पृथ्वी को (कृणोतु) बनाता है और (यथा) जैसे (माता) माता (उपस्थे) अपनी गोद में (पुत्रं आ बिभर्त्ति) पुत्र को धारण करती है वैसे ही (सः) वह (उखा) पृथ्वी (गर्भे) अपने भीतर (अग्निम्) अग्नि के समान तेजस्वी राजा को (आ बिभर्त्तु) धारण करे और वैसे ही (सा) वह पृथ्वी के समान (उखां) उत्तम सन्तान उत्पन्न करने में समर्थ स्त्री भी (गर्भे) अपने गर्भ में (अग्निम्) तेजस्वी वीर्य को (आ बिभर्त्तु) प्रेम से धारण करे। हे गृहपते ! तू (मखस्य शिरः असि) यज्ञ और ऐश्वर्यमय राष्ट्र का शिर है। इसी प्रकार हे गर्भगत वीर्य ! तू (मखस्य) शरीर रचना रूप यज्ञ का (शिरः असि) मुख्य अंश है।

सत्यं च मे श्रद्धा च में जगच्च में धनं च मे विश्वं च मे महश्च मे क्रीडा च मे मोदश्च मे जातं च में जनिष्यमाणं च मे सूक्तं च मे सुकृतं च में यज्ञेन कल्पन्ताम् ॥४६॥

यजुर्वेद १८।५

(सत्यं च) सत्य भाषण, (श्रद्धा च) सत्य धारणा, (जगत् च) जंगम सम्पत्ति, (धनं च) सुवर्णादि धन, (विश्वं च) समस्त स्थावर पदार्थ, (क्रीडा च) विनोद के साधन, (मोदः च) आनन्द, हर्ष, (जातं च) उत्तम पुत्र पौत्रादि, (जनिष्यमाणं च मे) आगे उत्पन्न होने वाले ऐश्वर्य (सूक्तं च) सुभाषित, (सुकृतं च) पुण्याचरण, (मे) मुझे (यज्ञेन कल्पन्ताम्) धर्मानुष्ठान, यज्ञ द्वारा प्राप्त हो।

यन्ता च मे धर्ता च में क्षेमश्च मे धृतिश्च मे विश्वं च मे महश्च मे संविच्च मे ज्ञात्रं च मे सूश्च मे प्रसूश्च मे सीरं च मे लयश्च मे यज्ञेन कल्पन्ताम् ॥५०॥

यजुर्वेद १८।७

(यन्ता च) नियमकर्त्ता, नियम में रखने वाला और (धर्त्ता च) धारण-पोषण करने वाला पुरुष, (क्षेमः च) राष्ट्र आदि सम्पदा का संरक्षण, (धृतिः च) धैर्य, (विश्वं च) समस्त अनुकूल पदार्थ, (महः च) आदर, (संवित् च) उत्तम प्रतिज्ञा (ज्ञात्रम्) ज्ञान साधन (सूःच) पुत्र और भृत्यादि को आज्ञा करने का सामर्थ्य और (प्रसूः) पुत्र आदि उत्पन्न करने का सामर्थ्य, (सीरं च) कृषि के साधन हल आदि और (लयः च) कृषि की बाधाओं के विनाशक साधम ये सब (मे) मुझे (यज्ञेन) यज्ञ द्वारा प्राप्त हों।

अश्याम तं काममग्ने तवोतीऽअश्याम रयिँ रयिवः सुवीरम्। अश्याम वाजमभि वाजयन्तोऽश्याम द्युम्नमजराजरं ते ॥५१॥

यजुर्वेद १८।७४

हे (अग्ने) अग्नि के समान तेजस्विन् ! सेनापते ! (तव ऊती) तेरे रक्षण सामर्थ्य से हम (तम् कामम्) उस-उस अभिलाषा को (अश्याम) प्राप्त करें। हे (रयिवः) ऐश्वर्यवान् ! हम (सुवीरम्) उत्तम वीर पुत्रों से युक्त (रयिम्) राष्ट्र समृद्धि को (अश्याम) पावें। (अभि वाजयन्तः)

शत्रु के ऊपर संग्राम करते हुए (वाजम्) ऐश्वर्य को (अश्याम) पावें। हे (अजर) अविनाशिन् ! (ते) तेरे (अजरम्) अविनाशी (द्युम्नम्) ऐश्वर्य को हम (अश्याम) प्राप्त करें।

त्वन्नो ऽ अग्ने तव देव पायुभिर्मघोनो रक्ष तन्वश्च वन्द्य।
त्राता तोकस्य तनये गवामस्यनिमेष ँ रक्षमाणस्तव व्रते ॥५२॥

यजुर्वेद ३४।१३

हे (अग्ने) तेजस्विन ! राजन् ! हे (देव) दानशील ! सर्वद्रष्टा ! (तव व्रते) तेरे नियम व्रत में रहने वाले (नः) हमें (त्वम्) तू (तव पायुभिः) अपने पालनकारी सामर्थ्यों से (नः मघोनः) हमारे धन सम्पन्न पुरुषों और (तन्वः च) हमारे शरीरों को भी (रक्ष) पालन कर। हे (वन्द्य) वन्दनीय ! हे स्तुति करने योग्य ! तू हमारे (तोकस्य) पुत्र का (त्राता) रक्षक और (तनये) पौत्रादि सन्तति और (गवाम्) गौ आदि पशुओं का भी (अनिमेषम्) निरन्तर (रक्षमाणः) रखवाला (असि) है।

उषस्तच्चित्रमा भरास्मभ्यं वाजिनीवति ।
येन तोकं च तनयं च धामहे ॥५३॥

यजुर्वेद ३४।३३

हे (वाजिनीवति) वाजिनी अर्थात् अश्व रथ आदि सेना से युक्त (उषः) शत्रुओं का नाश करने वाली दण्डशक्ते ! तू (अस्मभ्यम्) हमारे हित के लिए (तत्) उस नाना प्रकार के (चित्रम्) अद्भुत धन को (आ भर) प्राप्त करा (येन) जिससे हम लोग (तोकं च) दुःखों के नाशक पुत्रों और (तनयं च) सन्तति के विस्तार करने वाले पौत्र आदि को भी (धामहे) धारण करें।

प्र यो राये निनीषति मर्तो यस्ते वसो दाशत् ।
स वीरं धत्ते अग्न उक्थशंसिनं त्मना सहस्रपोषिणम् ॥५४॥

सामवेद पू० १।२।६।४।५८

(प्र) उत्तम (यः) जो (राये) परमधन के लिए (निनीषति) प्राप्त करना चाहता है (मर्तः) मनुष्य (यः) जो (ते) तेरी सेवा में (वसो) हे सब को बसाने वाले (दाशत्) अपने को समर्पण करता है। (सः) वह (वीरं) वीर पुत्र (धत्ते) प्राप्त करता है (अग्ने) हे परमेश्वर ! (उक्थशंसिनम्)

वेदों का वक्ता (त्मना) अपनी शक्ति से (सहस्र-पोषिणम्) हजारों का पालन करने वाला होता है।

ईश्वर को स्मरण करने और उसको आत्म-समर्पण करने वाला यज्ञशील धर्मात्मा के घर में विद्वान्, वेदवक्ता और सहस्रों को पालने-पोषने में समर्थ पुत्र प्राप्त होता है।

अयमग्नि सुवीर्यस्येशे हि सौभगस्य।
राय ईशे स्वपत्यस्य गोमत ईशे वृत्रहथानाम् ॥५५॥

सामवेद पू० १।२।६।६।६०

(अयम्) यह (अग्निः) परमेश्वर (सुवीर्यस्य) सुन्दर शक्ति का (ईशे) अधिष्ठाता है (हि) निश्चय ही (सौभगस्य) सुन्दर भाग्य का (रायः) सारी सम्पदाओं का (ईशे) अधिष्ठाता है। (स्वपत्यस्य) सुशील सन्तान का (गोमतः) जितेन्द्रिय (ईशे) अधिष्ठाता है। (वृत्रहथानाम्) अज्ञान दूर करने वालों का।

इडामग्ने पुरुदंसं सनिं गोः शश्वत्तमं हवमानाय साध।
स्यान्नः सूनुस्तनयो विजावाग्ने सा ते सुमतिर्भूत्वस्मे ॥५६॥

सामवेद पू० १।२।८।४।७६

(अग्ने) हे प्रकाशस्वरूप परमात्मन् आप (इडाम्) पृथिवी को (पुरुदंसं) बहुत कर्मों के सिद्ध करने वाली और (सनिम्) दान देने वाली (गौः) वाणी को (शश्वत्तमम्) चिरकाल तक (हव मानाय) मन वचन और कर्म से उपासक के (साध) सिद्धि के लिए (स्यात्) हो। और (नः सूनुः) हमारे पुत्र (तनयः) पौत्र (विजाता) वंश का विस्तार करने वाले हों। हे (अग्ने) अग्रणी परमेश्वर (सा) वह तेरी (सुमतिः) उत्तम बुद्धि (अस्मे) हमारे लिए (भूतु) 'भवतु' होवे।

आ वंसते मघवा वीरवद्यशः समिद्धो द्युम्न्याहुतः।
कुविन्नो अस्य सुमतिर्भवीयस्यच्छा वाजेभिरागमत् ॥५७॥

सामवेद उ० २।२।१७।२।८७९

(मघवा) हे समस्त सम्पदाओं के स्वामी जो (वीरवद्) पुत्र आदि से युक्त (समिद्धः) तेजस्वरूप (यशः) यश को (आवंसते) सब प्रकार

से देता है। (द्युम्नी) यशस्वी (आहुतः) भली प्रकार ध्यान किया हुआ और (भवी यसी) प्राप्त होने वाला (सुमतिः) उत्तम ज्ञान एवं (अच्छा) श्रेष्ठ (वाजेभिः) अन्न आदि पदार्थ (आगमत) प्राप्त हों।

आ पवस्व महीमिषं गोमदिन्दो हिरण्यवत्।
अश्ववत्सोम वीरवत् ॥५८॥

सामवेद उ० ३।१।३।४।८९५

(मही) महान् (इषं) अन्न आदि भोग्य पदार्थ को (गोमत्) गाय आदि पशुओं से युक्त (इन्दो) हे सर्वेश्वर (हिरण्यवत्) सुवर्ण से युक्त (अश्ववत्) घोड़े से युक्त (सोम) हे परमेश्वर (वीरवत्) वीर पुत्र आदि से (आपवस्व) से युक्त करो।

त्वां शुष्मिन्पुरुहूत वाजयन्तमुप ब्रवे सहस्कृत।
स नो रास्व सुवीर्यम् ॥५९॥

सामवेद उ० ४।२।१३।३।११७१

(शुष्मिन्) हे बलशाली (पुरुहूत) बहुतों से पुकारे गये (वाजयन्तम्) सत्य-असत्य के ज्ञान कराने वाले (त्वाम् उपब्रुवे) तेरी स्तुति करता हूँ (सहस्कृत) हे बलदाता (सः) वह तू (नः) हमें (सुवीर्यम्) उत्तम बल, वीर्य, तेजस्वी पुत्र और यश (रास्व) प्रदान करो।

महोनोराय आ भर पवमान जही मृधः।
रास्वेन्दो वीरवद्यशः ॥६०॥

सामवेद उ० ५।१।७।३।१२१४

हे (पवमान) शुद्ध स्वरूप परमात्मन् (मृधः) हिंसक मनोवृत्तियों को (जही) नाश करके (नः) हमें (महः) तेज और (रायः) धन (आभर) प्रदान करो। हे (इन्दो) परमऐश्वर्यवान् प्रभो (वीरवद्-यशः) पुत्र पौत्रादिकों सहित यश भी (रास्व) प्रदान करो।

येन वेहद् बभूविथ नाशयामसि तत् त्वत्।
इदं तदन्यत्र त्वदप दूरे नि दध्मसि ॥६१॥

अथर्ववेद ३।२३।१

हे नारी! (येन) जिस कारण से (वेहद्) तू बाँझ या पुत्र को

उत्पन्न करने में असमर्थ (बभूविथ) है (तत्) उस कारण को (त्वत्) तुझसे (नाशयामसि) हम दूर करते हैं। (इदं) इस (तद्) उस अप्रत्यक्ष कारण को (त्वद् अन्यत्र अप नि दध्मसि) तुझसे दूर कर देते हैं।

आ ते योनिं गर्भ एतु पुमान् बाण इवेषुधिम् ।
आ वीरोऽत्र जायतां पुत्रस्ते दशमास्यः ।।६२।।

अथर्ववेद ३।२३।२

बन्ध्यापन का कारण दूर हो जाने पर—

(ते योनिं) हे स्त्री ! तेरे बालक उत्पन्न करने के स्थान, गर्भाशय भाग में (गर्भः) रजःकण से गर्भित हुआ (पुमान्) डिम्ब अर्थात् पुमान् वीर्य-कण (इषुधिम्) तर्कस में सुरक्षित (बाण-इव) बाण के समान (एतु) प्राप्त हो और फिर (अत्र) इस गर्भ में (वीरः) पूर्ण वीर्यवान् (पुत्रः) पुत्र (दश-मास्यः) दस मासों तक पुष्टि को प्राप्त होकर (जायतां) उत्पन्न हो।

पुमांसं पुत्रं जनय तं पुमाननु जायताम् ।
भवासि पुत्राणां माता जातानां जनयाश्च यान् ।।६३।।

अथर्ववेद ३।२३।३

हे नारी ! तू (पुमांसम् पुत्रम् जनय) पुमान् पुत्र को उत्पन्न कर और (तम् अनु पुमान् जायताम्) उसके बाद भी पुनः पुमान् पुत्र ही उत्पन्न हो और (यान् जनयाः) जिन पुत्रों को तू उत्पन्न करे (जातानाम्) उत्पन्न हुए उन सब (पुत्राणाम्) पुत्रों की (माता भवासि) तू माता है।

यानि भद्राणि बीजान्यृषभा जनयन्ति च ।
तैस्त्वं पुत्रं विन्दस्व सा प्रसूर्धेनुका भव ।।६४।।

अथर्ववेद ३।२३।४

(ऋषभाः) वीर्य सेचन में समर्थ, उत्तम पुरुष (यानि) जिन (भद्राणि) कल्याणकारी (बीजानि) बीजों को (जनयन्ति) अपने शरीर में उत्पन्न करें एवं गर्भ में आहित करें (तैः) उन (अमोघ) बीजों से (त्वं) तू (पुत्रं विन्दस्व) पुत्र प्राप्त कर (सा) वह तू (प्रसूः) उत्तम रीति से पुत्रों को उत्पन्न करके (धेनुका भव) दूध पिलाने वाली सच्ची माता बन।

कृणोमि ते प्राजापत्यमा योनिं गर्भ एतु ते।
विन्दस्व त्वं पुत्रं नारि यस्तुभ्यं शमसच्छमु तस्मै त्वं भव ।।६५।।

अथर्ववेद ३।२३।५

हे नारि ! (ते) तेरे लिए मैं (प्राजापत्यम्) प्रजापति का कार्य अर्थात् पुत्रोत्पत्ति या बीजवपन का कार्य (कृणोमि) करता हूँ। (योनिम्) योनिस्थान में (गर्भः) गर्भ, गर्भित डिम्ब (आ एतु) आवे। हे नारि ! (त्वम् पुत्रम् विन्दस्व) तू ऐसे पुत्र को प्राप्त कर (यः) जो (तुभ्यं) तुझे (शम् असत्) कल्याण और सुख का देने हारा हो। हे नारि ! (तस्मै) उस पुत्र के लिए (त्वं उ शम् भव) तू भी शान्तिदायक, कल्याणकारिणी और सुखकारी माता हो।

यासां द्यौष्पिता पृथिवी माता समुद्रो मूलं वीरुधां बभूव।
तास्त्वा पुत्रविद्याय दैवीः प्रवन्त्वोषधयः ।।६६।।

अथर्ववेद ३।२३।६

(यासां) जिन (वीरुधाम्) लताओं का (पिताः) परिपालक (द्यौः) सूर्य और (माता पृथिवी) माता पृथिवी और (समुद्रः) जलधाराओं का बरसाने वाला मेघ (मूलं) मूल (बभूव) है (ताः) वे (दैवीः) दिव्य औषधियाँ हे नारि ! (ओषधयः) रस वीर्य विपाक को धारण करने वाली होकर (त्वा) तेरी और तेरे गर्भ की (पुत्र-विद्याय) पुत्र लाभ के लिये (प्र अवन्तु) रक्षा करें।

पर्वतात् दिवो योनेरङ्गादङ्गात् समाभृतम्।
शेपो गर्भस्य रेतोधाः सरौ पर्णमिवा दधत् ।।६७।।

अथर्ववेद ५।२५।१

(पर्वतात्) मेघ से जिस प्रकार स्थान-स्थान से जल बरसता है या जिस प्रकार पर्वत से रिस कर स्रोत प्रवाहित होता है, (दिवः) कारण भूत सूर्य से जिस प्रकार तेज निकलता है उसी प्रकार (योनेः) शरीर के (अंगात-अंगात) प्रत्येक अंग से (सम् आभृतम्) लाकर एकत्र किये गये (शेषः) वीर्य सामर्थ्य को (गर्भस्थ) गर्भ का (रेतोधाः) मूलभूत बीज का स्थापन करने वाला पुरुष (आदधत्) गर्भाशय में इस प्रकार आधान करे जैसे (सरौ पर्णम् इव) आकाश में सूर्य को ईश्वर ने स्थापित किया है।

यथेयं पृथिवी मही भूतानां गर्भमादधे ।
एवा दधामि ते गर्भं तस्मै त्वामवसे हुवे ॥६८॥

अथर्ववेद ५।२५।२

(यथा) जिस प्रकार (मही) विशाल (पृथिवी) पृथिवी (भूतानां) समस्त प्राणियों को (गर्भम्) अपने गर्भ में (आदधे) धारण करती है। इसी प्रकार मैं पति (ते) तुझ पत्नी के शरीर में (गर्भम्) गर्भ को (दधे) धारण कराता हूँ, पत्नी ही मानव को गर्भ में धारण करने हारी भूमि के समान है (तस्मै) उस गर्भ की (अवसे) रक्षा करने के लिए ही मैं (त्वाम् हुवे) तुझे बुलाता हूँ या उपदेश करता हूँ ।

गर्भं धेहि सिनीवालि गर्भं धेहि सरस्वति ।
गर्भं ते अश्विनोभा धत्तां पुष्करस्रजा ॥६९॥

अथर्ववेद ५।२५।३

हे (सिनीवालि) सिनीवालि ! भूमे, जाये ! (गर्भं धेहि) तू गर्भ को धारण कर। हे (सरस्वति) सुभगे ! (गर्भं धेहि) तू गर्भ को धारण कर। (उभौ) दोनों (पुष्करस्रजा) पुष्कर अर्थात् पुष्टि करने वाले और स्रज अर्थात् सर्जन करने वाले मूलकारण को धारण करने वाले (अश्विनौ) परस्पर व्याप्त मातृ-पितृ अंश दोनों (ते गर्भम् धत्तां) तेरे भीतर गर्भ को धारण करावें ।

गर्भं ते मित्रावरुणौ गर्भं देवो बृहस्पतिः ।
गर्भं त इन्द्रश्चाग्निश्च गर्भं धाता दधातु ते ॥७०॥

अथर्ववेद ५।२५।४

(मित्रावरुणौ) मित्र और वरुण (ते गर्भं) तेरे गर्भ को पुष्ट करें (देवः) प्रकाशमान (बृहस्पतिः) सूर्य (गर्भं) गर्भ को पुष्ट करे और (इन्द्रः च अग्निः च) इन्द्र=वायु और अग्नि भी (ते गर्भं) तेरे गर्भ को पुष्ट करे और (धाता) पोषक परमात्मा भी (ते गर्भं) तेरे गर्भ को (दधातु) पालित-पोषित करे ।

विष्णुर्योनिं कल्पयतु त्वष्टा रूपाणि पिंशतु ।
आ सिंचतु प्रजापतिर्धाता गर्भं दधातु ते ॥७१॥

अथर्ववेद ५।२५।५

(विष्णुः) शरीर में व्यापक रुधिर-शक्ति (योनिम्) गर्भ के स्थान

को (कल्पयतु) गर्भ धारण में समर्थ बनावे और (त्वष्टा) शरीर को विशेष रूपवान् बनाने वाली शक्ति (रूपाणि) गर्भाशय में रूप को सांचे को या स्त्री योनि में स्थित विशेष डिम्बों को (पिंशतु) छोटे-छोटे कणों के रूप में उत्पन्न करे और (प्रजापतिः) प्रजा का पालक पति (आसिंचतु) वीर्य का योनि में आ सेचन करे और (धाता) मातृ-शरीर में विद्यमान पोषक प्राणशक्ति (ते) तेरे उस (गर्भम्) गर्भ को (दधातु) धारण, पोषण, पालन करे। अर्थात् गर्भपात एवं विकृत होने से बचावे।

यद् वेद राजा वरुणो यद् वा देवी सरस्वती ।
यदिन्द्रो वृत्रहा वेद तद् गर्भकारणं पिब ।।७२।।

अथर्ववेद ५।२५।६

हे स्त्री ! (यद्) जिसको (राजा वरुणः) राजा वरुण=अपान, ब्यान, वायु और गर्भ धारक भाग (वेद) जानता है। (यद् वा) और जिसको (देवी सरस्वती) देवी सरस्वती, मानस शक्ति वा स्वतः स्त्री, (वेद) जानती है और (यत्) जिसको (वृत्रहा) विघ्नों का नाशक (इन्द्रः) ऐश्वर्यशील इन्द्र, वीर्य, प्राण (वेद) जानता है उस (गर्भ करणं) गर्भ के विधायक, गर्भ के पोषक औषधि का तू (पिब) पान कर।

गर्भो अस्योषधीनां गर्भो वनस्पतीनाम् ।
गर्भो विश्वस्य भूतस्य सो अग्ने गर्भमेह धाः ।।७३।।

अथर्ववेद ५।२५।७

हे अग्ने ! तू (ओषधीनां गर्भः असि) औषधियों का भी गर्भ है, उनके भीतर सार रूप से विद्यमान है और (वनस्पतीनाम् गर्भम् असि) वनस्पति=विशाल वृक्षों का गर्भ है, उसका भी सार है। हे अग्ने और तू (विश्वस्य भूतस्य) समस्त उत्पन्न जगत् का भी (गर्भः) गर्भ=ग्रहण करने वाला आश्रय है। (सः) वह तू (इह) इस योनि में भी (गर्भ) गर्भ को (आ धाः) पूर्ण रूप से धारण पोषण कर।

अधि स्कन्द वीरयस्व गर्भमा धेहि योन्याम् ।
वृषासि वृष्ण्यावन् प्रजायै त्वा नयामसि ।।७४।।

अथर्ववेद ५।२५।८

हे वीर पुरुष ! (अधि-स्कन्द) अपने वीर्य में आ, (वीरयस्व)

विशेष नियम से अंग में प्रवेश कर और (योन्याम्) योनिभाग में (गर्भम्) गर्भ को (आ धेहि) स्थापन कर (वृषा असि) तू वीर्य सेचन में समर्थ है। हे (वृष्ण्यावन्) वीर्य सेचन में समर्थ पुरुष! (प्रजायै) प्रजा के उत्पन्न करने के लिये ही (त्वा) तुझको हम स्त्रियां (नयामसि) प्राप्त करती हैं अथवा हम अनुभवी पुरुष (त्वा नयामसि) तुझ योग्य पत्नी के पास प्राप्त कराते हैं।

वि जिहीष्व बार्हत्सामे गर्भस्ते योनिमा शयाम्।
अदुष्टे देवाः पुत्रं सोमपा उभयाविनम् ॥७५॥

अथर्ववेद ५।२५।९

हे (बार्हत्सामे) वृहद साम को जानने वाली! जाये! (वि जिहीष्व) तू भी विशेष रूप से प्रयत्न कर, जिससे (गर्भः) वीर्य रूप गर्भ (ते) तेरी (योनिम्) गर्भ स्थान के कमलनाभि में (आ-शयाम्) अच्छी प्रकार चला जाय। (देवाः) देवगण, विद्वान्गण (सोम-पाः) वीर्य का पालन करने वाले, (ते) तुझे ऐसा (उभयाविनं) हमारा तुम्हारा दोनों का सम्मिलित (पुत्रं) पुत्र (अदुः) प्रदान करें।

धातः श्रेष्ठेन रूपेणास्या नार्या गवीन्योः।
पुमांसं पुत्रमा धेहि दशमे मासि सूतवे ॥७६॥

अथर्ववेद ५।२५।१०

हे (धातः) वीर्य के आधान करने हारे पुरुष! तू (अस्याः नार्याः) इस नारी के (गवीन्योः) गवीनी नामक दोनों नाड़ियों के बीच में (श्रेष्ठेन रूपेण) श्रेष्ठ, उत्तम रूप से युक्त सुन्दर (पुमांसं) पुमान् (पुत्रम्) पुत्र का (आ-धेहि) आधान कर जिससे (दसमे मासि) दसवें महीने में (सूतवे) उत्पन्न होने के लिए।

त्वष्टः श्रेष्ठेन रूपेणास्या नार्या गवीन्योः।
पुमांसं पुत्रमा धेहि दशमे मासि सूतवे ॥७७॥

अथर्ववेद ५।२५।११

हे (त्वष्टः) पुत्र के शरीर को सुगठित, सुरूप करने में समर्थ पुरुष! तू इस नारी की गवीनी नामक नाड़ियों के बीच (श्रेष्ठेन) श्रेष्ठ

रूप से युक्त सुन्दर पुमान् पुत्र का दसवें मास में प्रसव करने के लिये आधान कर।

सवितः श्रेष्ठेन रूपेणास्या नार्या गवीन्योः।
पुमांसं पुत्रमा धेहि दशमे मासि सूतवे ॥७८॥

अथर्ववेद ५।२५।१२

हे (सवितः) पुत्रोत्पादक पिता! तू इस अपनी स्त्री की गवीनी नामक नाड़ियों के बीच में दसवें मास में प्रसव होने के लिये (श्रेष्ठेन रूपेण०) श्रेष्ठ सुन्दर रूप से सम्पन्न पुमान् पुत्र का आधान कर।

प्रजापते श्रेष्ठेन रूपेणास्या नार्या गवीन्योः।
पुमाँसं पुत्रमा धेहि दशमे मासि सूतवे ॥७९॥

अथर्ववेद ५।२५।१३

हे (प्रजापते) प्रजा के परिपालक पते! तू (अस्याः नार्याः गवीन्योः) इस नारी की गवीनी नामक नाड़ियों के बीच में (दशमे मासि सूतवे) दसवें महीने में प्रसव करने के लिये (पुमांसं पुत्रम्) पुमान् पुत्र का (आ धेहि) आधान कर।

यथेयं पृथिवी मही भूतानां गर्भमादधे।
एवा ते ध्रियतां गर्भो अनु सूतुंसवितवे ॥८०॥

अथर्ववेद ६।१७।१

(यथा) जिस प्रकार (इयम्) यह (मही) विशाल (पृथिवी) पृथिवी (भूतानाम्) समस्त प्राणियों के (गर्भम्) गर्भ, मूलभूत बीजों का (आ दधे) धारण करती है। (एवा) इसी प्रकार (ते) हे स्त्री! (ते) तेरे भीतर (गर्भः) गर्भ (सूतुम्) सन्तान के रूप में (अनुसवितवे) प्रसव करने के लिये (ध्रियताम्) धारण कराया जाय।

यथेयं पृथिवि मही दाधारेमान् वनस्पतीन्।
एवा ते ध्रियतां गर्भो अनु सूतुं सवितवे ॥८१॥

अथर्ववेद ६।१७।२

(यथा) जिस प्रकार (इयम् मही पृथिवी) यह महती पृथ्वी

(इमान् वनस्पतीन्) इन वनस्पतियों को (दाधार) धारण करती है (एवा ते गर्भ: ध्रियताम्) हे स्त्री ! इसी प्रकार तुझमें यह गर्भ धारण हो और (अनु सूतुं सवितवे) बाद में पुत्र की उत्पत्ति के लिए ।

यथेयं पृथिवी मही दाधार पर्वतान् गिरीन् ।
एवा ते ध्रियतां गर्भो अनु सूतुं सवितवे ।।८२।।

अथर्ववेद ६।१७।३

(यथा) जिस प्रकार (इयम् मही पृथिवी) यह महती पृथिवी (गिरीन् पर्वतान् दाधार) इन छोटे बड़े पर्वतों को धारण करती है, (एवा ते ध्रियताम् गर्भ:) उसी प्रकार हे स्त्री ! तेरा गर्भ दृढ़ता से जमा रहे (अनु सूतुं सवितवे) और यथा समय सन्तान उत्पत्ति के लिए ।

यथेयं पृथिवी मही दाधार विष्ठितं जगत् ।
एवा ते ध्रियतां गर्भो अनु सूतुं सवितवे ।।८३।।

अथर्ववेद ६।१७।४

(यथा इयम् मही पृथिवी) जिस प्रकार यह विशाल पृथिवी (विष्ठितम् जगत्) नाना प्रकार से विभक्त चर-अचर संसार को (दाधार) धारण करती है (एवा ते ध्रियताम् गर्भ:) उसी प्रकार हे स्त्री ! तेरा गर्भ दृढ़ता के साथ स्थित रहे (अनु सूतुं सवितवे) और बाद में सन्तान उत्पत्ति के लिए ।

इमा यास्तिस्त्रः पृथिवीस्तासां ह भूमिरुत्तमा ।
तासामधि त्वचो अहं भेषजं समु जग्रभम् ।।८४।।

अथर्ववेद ६।२१।१

(इमा:) ये (या:) जो (तिस्त्र:) तीन (पृथिवी:) विशाल लोक हैं (तासाम्) उनमें (ह) निश्चय से (भूमि:) यह भूमि ही (उत् तमा) श्रेष्ठ है। (तासाम्) उन तीनों लोकों के (अधि त्वच:) ऊपरी पीठ पर उत्पन्न होने वाले (भेषजम्) औषधियों को (अहम्) मैं (सम् जग्रभम् उ) उत्तम प्रकार से संग्रह कर लिया करूँ ।

श्रेष्ठमसि भेषजानां वसिष्ठं वीरुधानाम् ।
सोमो भगइव यामेषु देवेषु वरुणो यथा ॥८५॥

अथर्ववेद ६।२१।२

हे औषधे ! तू ही (भेषजानाम् श्रेष्ठम् असि) सब औषधियों में श्रेष्ठ है और (वीरुधानाम्) बेलबूटियों में सबसे अधिक (बसिष्ठम् असि) उत्तम रस और गुणों से युक्त है । जिस प्रकार (यामेषु सोमः भग इव) दिन और रात में चन्द्रमा शान्तिदायक और सूर्य तेजस्वी है, उसी प्रकार तू भी शान्तिदायक और वीर्यवान् है और (देदेषु) सब दिव्य पदार्थों में या राजाओं में (यथा वरुणः) जैसे चुना हुआ राजा या परमात्मा है, उसी प्रकार तू भी सर्वश्रेष्ठ है ।

रेवतीरनाधृषः सिषासवः सिषासथ ।
उत स्थ केशद्रंहणीरथो ह केशवर्धनीः ॥८६॥

अथर्ववेद ६।२१।३

हे (रेवतीः) वीर्य वाली औषधियों ! आप (अनाधृषः) कभी निर्बल नहीं हो सकतीं । आप सदा (सिषासवः) सबको आरोग्य देना चाहती हुई (सिषासथ) आरोग्य प्रदान करती हो और आप (केश-द्रहणीःस्थ) केशों को दृढ़ करने या क्लेशों को नाश करने वाली हो, साथ ही (अधो केशवर्धनीः ह) केशों को बढ़ाने वाली हो। केशों को दृढ़ करना और बढ़ाना, वीर्यवान् औषधियों का स्वभाव है, निर्वलता से केश झड़ जाया करते हैं ।

यां त्वा गन्धर्वो अखनद् वरुणायमृतभ्रजे ।
तां त्वा वयं खनामस्योषधिं शेपहर्षणीम् ॥८७॥

अथर्ववेद ४।४।१

हे औषधे ! (यां त्वा) जिस तुझ औषधि को (गन्धर्वः) विद्यावान्, वाचस्पति, कविराज, वैद्य (मृतभ्रजे) नष्ट वीर्य, नष्टतेजस् (वरुणाय) श्रेष्ठ पुरुष के लिये (अखनद्) खोद कर प्राप्त करता है (तां त्वा) उस तुझ (शेपहर्षणीं) प्रजनन इन्द्रिय में हर्ष, पुष्टि उत्पन्न करने वाली (ओषधिम्) औषधि को (वयम्) हम (खनामसि) खोद कर प्राप्त करें।

उदुषा उदु सूर्य उदिदं मामकं वचः ॥
उदेजतु प्रजापतिर्वृषा शुष्मेण वाजिना ॥८८॥

अथर्ववेद ४।४।२

(उषः) प्रातःकाल सूर्योदय से पूर्व उठ जाना (उद् एजतु) शरीर के अंगों में उत्तेजना, स्फूर्ति उत्पन्न करता है। (सूर्यः उत्) सूर्य भी शरीर में वीर्य की वृद्धि करता है, (इदं) यह (मामकं वचः) मेरा बलपूर्वक कहा गया वचन भी शरीर में ओज उत्पन्न करता है, (प्रजापतिः) प्रजा का पालन करने वाली (वृषा) वीर्य सेचन में समर्थ, औषधि विशेष (वाजिना) बलकारक (शुष्मेण) अपने रस से (उद् एजतु) शरीर में वीर्य की उत्तेजना करे, अर्थात् शिथिलता को दूर करे।

यथा स्म ते विरोहतोऽभितप्तमिवानति ।
ततस्ते शुष्मवत्तरमियं कृणोत्वोषधिः ॥८९॥

अथर्ववेद ४।४।३

(विरोहितः ते) विशेष प्रकार से पुष्ट शरीर होने वाले तेरे शरीर में (यथा) जिस प्रकार (अभितप्तम् इव) काम प्रवृत्ति से अभितप्त के समान (अनति स्म) चेष्टा करने लग जाय (इयं ओषधिः) यह औषधि (ते) तेरे शरीर को (ततः) उससे (शुष्मवत्-तरम्) और भी अधिक बल युक्त करे।

उच्छुष्मौषधीनां सार ऋषभाणाम् ।
सं पुंसामिन्द्र वृष्ण्यमस्मिन् धेहि तनूवशिन् ॥९०॥

अथर्ववेद ४।४।४

(ऋषभाणाम्) ऋषभ आदि वृष्यगण की (ओषधिनां) औषधियों में से यह (शुष्मा) बलकारी औषध बला, (सार) सबसे अधिक सार वाली, बलप्रद है। हे इन्द्र! वैद्य! अथवा हे (तनुःवशिन्) शरीर को अपने वश करने हारे, सदाचारिन्! (अस्मिन्) इस निर्वीर्य पुरुषों में भी (पुंसां वृष्ण्यम्) पुमान, वीर्यवान् पुरुषों का-सा बल (सं धेहि) धारण करा।

अपां रसः प्रथमजोऽथो वनस्पतीनाम् ।
उत सोमस्य भ्रातास्युतार्शमसि वृष्ण्यम् ॥९१॥

अथर्ववेद ४।४।५

हे औषधे! तू (अपां) जलों, मूल कारण भूत व्यापक तत्वों का

(प्रथमः रसः) सबसे श्रेष्ठ रस है, (अथो) तू (वनस्पतीनां) वनस्पतियों का सार है। (उत) और (सोमस्य) शरीर में उत्पन्न होने वाले वीर्य का (भ्राता) पोषक है, (उत) और (आर्शम्) शूरता के उत्पादक और (वृष्ण्यम्) बलकारी वीर्य सेचन के सामर्थ्य का उत्पादक है।

अद्याग्ने अद्य सवितरद्य देवि सरस्वति।
अद्यास्य ब्रह्मणस्पते धनुरिवा तानया पसः ॥६२॥

अथर्ववेद ४।४।६

हे (अग्ने) अग्ने ! आचार्य, हे (सवितः) उत्पादक पिता ! हे (सरस्वति देवि) विद्ये ! हे (ब्रह्मणस्पते) वेद के विद्वान् पुरुष या परमात्मन् ! (अद्य) आज, अब (अस्य) इस पुरुष के, औषध, सदुपदेश और ब्रह्मचर्य पालन द्वारा (पसः) प्रजननांग को (धनुः इव) लक्ष्यभेदक धनुष के समान (आ तनय) सामर्थ्य वाला बना दो जिससे यह भी सन्तान प्राप्त करने में समर्थ हो।

आहं तनोमि ते पसो अधि ज्यामिव धन्वनि।
क्रमस्वर्श इव रोहितमनवग्लायता सदा ॥६३॥

अथर्ववेद ४।४।७

(अहं) मैं, सद्वैद्य (ते पसम्) तेरे प्रजनन अंग को औषधि उपचार से (धन्वनि अधि ज्याम् इव) धनुष पर तनी डोरी के समान (आ तनोमि) प्रबल, वीर्य सेचन में समर्थ करता हूँ। (ऋशः इव) जिस प्रकार धर्नुधर, हिंसक जीव (रोहितम्) रोहित नामक मृग पर, प्रसन्न होकर वेग से जा पड़ता है उसी प्रकार हे पुरुष ! तू भी (सदा) निरन्तर (अनवग्लायता) ग्लानि रहित, प्रसन्न चित्त से (क्रमस्व) पत्नी के पास जा।

अश्वस्याश्वतरस्याजस्य पेत्वस्य च।
अथ ऋषभस्य ये वाजास्तानस्मिन् धेहि तनूवशिन् ॥६४॥

अथर्ववेद ४।४।८

हे (तनू-वशिन्) शरीर को वश करने में समर्थ ! सद्वैद्य ! (अश्वस्य) अश्व के, (अश्वतरस्य) खच्चर के, (अजस्य) बकरे के, पेत्वस्य च) और मेढे के (अथ ऋषभस्य) और बैल के (ये) जो (वाजाः) बल, सामर्थ्य हैं (तान्) उनको (अस्मिन्) इस पुरुष में (धेहि) धारण करा।

सं सिञ्चामि गवां क्षीरं समाज्येन बलं रसम् ।
सं सिक्ता अस्माकं वीरा ध्रुवा गावो मयि गोपतौ ॥९५॥
अथर्ववेद २।२६।४

(गवां क्षीरं) गायों के दूध के समान मधुर ज्ञानरस को मैं (सं सिञ्चामि) उत्तम रूप से प्रवाहित करता हूँ । (आज्येन) घृत के समान पुष्टिकारक तेज के सहित (रसम्) आनन्दजनक हर्ष और (बलं) बल को भी (सं सिचामि) धारण करता हूँ । (अस्माकं वीराः) इस प्रकार हमारे वीर, प्राण एवं पुत्रगण भी बल, हर्ष और आनन्द से (सं सिक्ताः) आप्लावित, परिपुष्ट हों और (मयि) मुझ (गोपतौ) इन्द्रिय रूप गौओं के स्वामी के पास (गावः) इन्द्रिय रूप गौवें (स्थिराः) स्थिर रूप से रहें ।

आ हरामि गवां क्षीरमाहार्षं धान्यं १ रसम् ।
आहृता अस्माकम् वीरा आ पत्नीरिदमस्तकम् ॥९६॥
अथर्ववेद २।२६।५

मैं (गवां क्षीरं) गौओं का दूध और इन्द्रियों का ज्ञान (आहरामि) प्राप्त करता हूँ । (धान्यं) धान्य और (रसं) अन्न के स्वादु रस और ग्राह्य विषय और उनसे प्राप्त सुख भी (आहार्षम्) प्राप्त करता हूँ । (अस्माकं वीराः) हमारे पुत्र, वीर और प्राण भी (आहृताः) हमारे पास हों, (पत्नीः आ) स्त्री और बुद्धि हमारे पास हो (इदम्) यह (अस्तकम्) घर, शरीर भी हमें प्राप्त हो ।

आयुरस्मै धेहि जातवेदः प्रजां त्वष्टरधि निधेह्यस्मै ।
रायस्पोषं सवितरा सुवास्मै शतं जीवाति शरदस्तवायम् ॥९७॥
अथर्ववेद २।२९।२

हे (जातवेदः) समस्त पदार्थों में व्यापक या उनको जानने हारे अग्ने ! परमात्मन् ! (अस्मै) इस कुमार को (आयुः) दीर्घ आयु (धेहि) प्रदान करो । हे (त्वष्टः) समस्त शरीरों की रचना करने हारे परमात्मन् ! (अस्मै) इस कुमार में (प्रजां) सन्तति उत्पन्न करने का विशेष सामर्थ्य (अधि निधेहि) स्थापित करो । हे (सवितः) सबके उत्पादक और प्रेरक परमात्मन् ! (अस्मै) इसको (रायस्पोषं) धन, जीवन और देह का पालन-

पोषण सामर्थ्य (आ सुव) प्रदान करो। (अयम्) यह कुमार (शतं शरदः) सौ वर्षों तक (जीवाति) जीवे।

अत्र प्रारम्भिक यज्ञ की शेष क्रिया पूर्णाहुति, हस्तताप आदि करें।

प्रार्थना

पति-पत्नी दोनों करबद्ध होकर प्रभु से प्रार्थना करें।

यदेमि प्रस्फुरन्निव दृतिर्न ध्मातो अद्रिवः।
मृळा सुक्षत्र मृळय ॥१॥

ऋग्वेद ७।८९।२

हे (अद्रिवः) शान्तिदायक प्रभो ! (यत्) जब मैं (प्रस्फुरन इव) तड़पता हुआ-सा (द्रतिः न ध्माताः) कुप्पे के समान फूला हुआ रोता गाता (एमि) तेरी शरण आया हूँ, हे (सुक्षत्र) सुबल ! सुधन ! तू (मृड, मृडय) सुखी कर, दया कर, कामना पूर्ण कर।

क्रत्वः समह दीनता प्रतीपं जगमा शुचे।
मृळा सुक्षत्र मृळय ॥२॥

ऋग्वेद ७।८९।३

हे (समह) ऐश्वर्यवान् स्वामिन् ! (दीनता) दीन होने के कारण मैं (क्रत्वः) सत् कर्म और सत् ज्ञान के (प्रतीपं जगम) बिल्कुल विपरीत चला गया हूँ और (शुचे) बड़ा शोक करता हूँ। हे (शुचे) शुद्ध पवित्र प्रभो ! हे (सु-क्षत्र) उत्तम धन और बलशालिनी ! तू (मृड, मृडय) सुखी कर, कृपा कर, कामना पूर्ण कर।

अपां मध्ये तस्थिवांसं तृष्णाविदज्जरितारम्।
मृळा सुक्षत्र मृळय ॥३॥

ऋग्वेद ७।८९।४

हे (सुक्षत्र) उत्तम बल ऐश्वर्य के स्वामिन् ! (अपां मध्ये तस्थिवांसं) जलों के बीच में खड़े (जरितारं) रोगादि से जीर्ण होते हुए पुरुष को जैसे (तृष्णा अविदत्) प्यास सताती है उसी प्रकार हे प्रभो ! (जरितारं) तेरी

स्तुति करने वाले (अपां मध्ये तस्थिवांसं) आप्त पुरुषों के बीच या प्राणों से पूर्ण शरीर के बीच रहने वाले मुझको भी (तृष्णा) भूख प्यास के समान पुत्र की लालसा प्राप्त है, हे प्रभो ! हे (मृड, मृडय) सबको सुखी करने हारे ! तू मुझे सुखी कर तेजस्वी पुत्र प्रदान कर। प्रभो आपको कोटिशः नमन है।

औषधि सेवन

पुरुष के लिए=काकोली, क्षीर काकोली, जीवक, ऋषभक, मेदा, महा मेदा, ऋद्धि, वृद्धि, विदारी कन्द, बाराही कन्द, शिकाकुल मिश्री, सालब लम्बा, काली मूसली, वहमन सफेद, सारिवा, ख़रेंटी, कन्घी, आँवला, हरड़ बड़ी गुठली निकाल कर, हरड़ छोटी, सौंठ, शतावर, असगन्ध, सैमर की मूसली, सफेद मूसली, सालब पंजा, कौंच बीज छीलकर, गोखरू, बीज बन्द, तालमखाना, लाजवन्ती, उटंगन, बवूल की फली बिना बीज की, बवूल का गोंद, बवूल की कोपलें सूखी, (बवूल को कीकड़ भी कहते हैं) पीपल की गुलरियाँ सूखी, बड़ की गुलरियाँ सूखी। सबको समान मात्रा में लेकर बारीक कूट लें। रात्रि को दो छुआरे, पाँच बादाम की मींग पानी में भिगो दें, प्रातःकाल यज्ञ के पश्चात् सात मुनक्का, इन सबको बारीक पीस कर एक पाव गाय के दूध में घोल लें और उपरोक्त चूर्ण में से ५ ग्राम इसमें मिलाकर अग्नि पर रख कर एक उबाल दे लें। मीठा मिलाकर नित्य प्रति पिया करें। दो घण्टे पश्चात् अन्य भोजन करें।

स्त्री के लिए=सौंठ १० ग्राम, शतावर १० ग्राम, असगन्ध १० ग्राम, अजवायन ५ ग्राम, मिश्री ३० ग्राम सबको बारीक कूट कर रख लें। नित्य प्रति प्रातः और रात्रि को गाय के दूध से ५-५ ग्राम सेवन करें। मासिक धर्म के समय प्रयोग न करें।

सुवण भस्म २२५ मिलीग्राम की आठ पुड़ियाँ बनालें, नागकेशर यदि बंगाल की मिल जाय तो अति उत्तम है। १० ग्राम को बारीक करके इसकी भी आठ पुड़ियाँ बना लें।

मासिक धर्म के चौथे दिन प्रातःकाल शिवलिंगी के ७ बीज साबुत ही बिना दाँत लगाये ताजे जल या यज्ञ भस्मि क्षार जल से निगल लें। पाँचवे दिन ९ बीज, छटे दिन ११ बीज, सातवें दिन १३ बीज, आठवें दिन १४ बीज, नवें दिन १५ बीज, दसवें दिन १६ बीज, ग्यारहवें दिन १७ बीज, सेवन करें और रात्रि को इन्हीं आठ दिन नित्य प्रति जीवित बछड़े वाली गाय के दूध से उपरोक्त सुवर्ण भस्म की एक पुड़िया और नागकेशर की एक पुड़िया दोनों मिला कर सेवन करें। इन आठ दिन सौंठ, शतावर, असगन्ध वाला चूर्ण तीसरे पहर केवल एक बार दूध से लें। इसके पश्चात् प्रातः-रात्रि दोनों समय दूध से लेने लगें। इन औषधियों का जब तक गर्भस्थित न हो जाय, विधिवत् प्रयोग करती रहें।

रोग निवारक सूक्त

मुञ्चामि त्वा हविषा जीवनाय कमज्ञातयक्ष्मादुत राजयक्ष्मात् ।
ग्राहिर्जग्राह यदि वैतदेनं तस्या इन्द्राग्नी प्र मुमुक्तमेनम् ।।१।।

ऋग्वेद १०।१६१।१

हे रोगिन ! (त्वा) तुझे, (अज्ञात-यक्ष्मात्) अप्रकटावस्था वाले (उत) और (राज-यक्ष्मात्) प्रकट राज-रोग यक्ष्मा से (कं जीवनाय) सुखपूर्वक जीने के लिए (मुञ्चामि) छुड़ाता हूँ। (यदि ग्राहिः एनम् जग्राह) यदि ग्राही नाम के शरीर जकड़ देने वाले रोग ने तुझको जकड़ लिया है तो (तस्याः) उस रोग से भी (इन्द्राग्नी प्र मुमुक्तम्) विद्युत और अग्नि के गुण वालो औषधियाँ छुड़ावें।

यदि क्षितायुर्यदि वा परेतो यदि मृत्योरन्तिकं नीत एव ।
तमा हरामि निर्ऋतेरुपस्थादस्पार्षमेनं शतशारदाय ।।२।।

ऋग्वेद १०।१६१।२

(यदि क्षितायुः) यदि रोगी की जीवनशक्ति नष्ट हो गई हो, (यदि वा परा इतः) यदि वह सीमा से भी परे चला गया है, (यदि मृत्योः अन्तिकं) यदि वह मौत के समीप (नीतः एव) पहुँच गया है, तो भी (तम्) उस रोगी को मैं (निर्ऋतेः उपस्थात् आ हरामि) अति कष्टप्रद रोगी के पंजे से छुड़ा लाऊँ और (एनं) उस रोगी को (शत-शारदाय) सौ वर्ष के जीवन के लिए (अस्पार्षम्) बलयुक्त करूँ।

सहस्राक्षेण शतशारदेन शतायुषा हविषाहार्षमेनम् ।
शतं यथेमं शरदो नयातीन्द्रो विश्वस्य दुरितस्य पारम् ।।३।।

ऋग्वेद १०।१६१।३

मैं (एनं) इस रोगी को (सहस्राक्षेण) सहस्र गुणों वाली, (शत-शारदेन) सौ वर्ष तक जीवन देने में समर्थ (हविषा) औषधि (अहार्षम्) द्वारा रोग से मुक्त करूँ। (यथा) जिससे (इन्द्रः) प्राण (शरदः शतम्) सैकड़ों वर्ष (विश्वस्य दुरितस्य पारम्) समस्त दु:खों के पार (नयाति) इसे पहुँचावे।

शतं जीव शरदो वर्धमानः शतं हेमन्ताञ्छतमु वसन्तान् ।
शतमिन्द्राग्नी सविता बृहस्पतिः शतायुषा हविषेमं पुनर्दुः ।।४।।

ऋग्वेद १०।१६१।४

हे मनुष्य ! तू (वर्धमानः) बढ़ता हुआ (शतं शरदः जीव) सौ वर्ष तक जीवन धारण कर। (शतं हेमन्तान्) सौ हेमन्त और (शतं वसन्तान् उ) सौ वसन्तों तक जी। (इन्द्र-अग्नी) सूर्य और अग्नि या प्राण और जठराग्नि (सविता बृहस्पतिः) उत्पादक वीर्य और इस देह का पालक रक्त (शतायुषा हविषा) सौ वर्षों के जीवन देने के साधन या बल से (एनं पुनःदुः) इसको शक्ति पुनः प्रदान करें।

आहार्षं त्वाविदं त्वा पुनरागाः पुनर्नव ।
सर्वांग सर्वं ते चक्षु सर्वमायुश्च तेऽविदम् ।।५।।

ऋग्वेद १०।१६१।५

हे रोगी ! (त्वा आहार्षम्) तुझे मैं रोग से दूर करूँ। (त्वा अविदं) तुझे मैं प्राप्त करूँ। (पुनः आगाः) तू पुनः आजा। हे (पुनः नव) नये जीवन को धारण करने वाले ! हे (सर्व-अंग) समस्त अंगों से युक्त ! (ते सर्वं चक्षुः) तेरी आँख आदि इन्द्रियें और (सर्वं च आयुः) सम्पूर्ण आयु (ते अविदम्) तुझे प्राप्त कराऊँ।

अक्षीभ्यां ते नासिकाभ्यां कर्णाभ्यां छुबुकादधि ।
यक्ष्मं शीर्षण्यं मस्तिष्काज्जिह्वाया वि वृहामि ते ।।६।।

ऋग्वेद १०।१६३।१

मैं (ते अक्षीभ्यां यक्ष्मं अधि वि वृहामि) तेरी आँखों में से यक्ष्मा

को दूर करूँ। (ते नासिकाभ्यां, ते कर्णाभ्याम्) तेरी नासिकाओं से और कानों से और (छुबुकाद् अधि) तेरी ठोड़ी से भी यक्ष्मा को दूर करूँ और (शीर्षण्यं यक्ष्मं) सिर में बैठे यक्ष्मा को (मस्तिष्कात्) मस्तिष्क से और (जिह्वाया:) जीभ से भी दूर करूँ।

ग्रीवाभ्यस्त उष्णिहाभ्यः कीकसाभ्यो अनूक्यात् ।
यक्ष्मं दोषण्य १ मंसाभ्यां बाहुभ्यां वि वृहामि ते ॥७॥

ऋग्वेद १०।१६३।२

हे रोगी ! (ते दोषण्यं यक्ष्मं) तेरे बाहुओं में बैठे यक्ष्मा को (ग्रीवाभ्य:) गर्दन की नाड़ियों से (उष्णिहाभ्य:) ऊपर की ओर जाने वाली धमनियों से, (कीकसाभ्य:) हड्डियों से और (अनूक्यात्) सन्धि भाग से (अंसाभ्यां बाहुभ्यां) कंधों और बाहुओं से (वि वृहामि) दूर करूँ।

आन्त्रेभ्यस्ते गुदाभ्यो वनिष्ठोर्हृदयादधि ।
यक्ष्मं मतस्नाभ्यां यक्नः प्लाशिभ्यो वि वृहामिते ॥८॥

ऋग्वेद १०।१६३।३

(ते आंत्रेभ्य:) तेरी आँतों से, (गुदाभ्य:) गुदा की नाड़ियों से और (वनिष्ठो:) स्थूल आँत से, (हृदयात् अधि) हृदय से, (ते मतस्नाभ्यां) तेरे दोनों गुर्दों में से, (यक्न:) यकृत् से, (प्लाशिभ्य:) पेट में स्थित अन्य भोजन-पाचक तिल्ली आदि यन्त्रों से (यक्ष्मं वि वृहामि) यक्ष्मा को दूर करूँ।

ऊरुभ्यां ते अष्ठीवद्भ्यां पार्ष्णिभ्यां प्रपदाभ्याम् ।
यक्ष्मं श्रोणिभ्यां भासदाद्भंससो वि वृहामिते ॥९॥

ऋग्वेद १०।१६३।४

(हे ऊरुभ्यां) तेरी जंघाओं से, (अष्ठीवद्भ्याम्) विशेष अस्थि वाले गोड़ों से, (पार्ष्णिभ्यां) एड़ियों और (प्र-पदाभ्यां) पंजों से, (श्रोणिभ्यां) नितम्ब भागों और (भासदात् भंसस:) कटिभाग में स्थित गुदा वा उपस्थ प्रदेश से (यक्ष्मं वि वृहामि) यक्ष्मा को दूर करूँ।

मेहनाद्वनंकरणाल्लोमभ्यस्ते नखेभ्यः ।
यक्ष्मं सर्वस्मादात्मनस्तमिदं वि वृहामि ते ।।१०।।

ऋग्वेद १०।१६३।५

हे रोगी ! (वनं-करणात्) जल पैदा करने वाले मूत्रकारी और शुक्रसेचन मूल-इन्द्रिय से, (ते लोमभ्यः नखेभ्यः) तेरे लोमों और नखों से और (सर्वस्मात् ते आत्मनः) तेरे समस्त देह से (ते तम् इदं वि वृहामि) तेरे इस प्रकार के उस यक्ष्मा को दूर करूँ ।

अंगादङ्गाल्लोम्नोलोम्नो जातं पर्वणिपर्वणि ।
यक्ष्मं सर्वस्मादात्मनस्तमिदं वि वृहामि ते ।।११।।

ऋग्वेद १०।१६३।६

(अंगात्-अंगात्) अंग-अंग से, (लोम्नः लोम्नः) लोम-लोम से और (पर्वणि पर्वणि जातं) पोरू-पोरू में पैदा हुए (तम् इदम्) उस (यक्ष्मं) यक्ष्मा को (सर्वस्मात् आत्मनः) समस्त देह से (वि वृहामि) दूर करूँ ।

सरूपा नाम ते माता सरूपो नाम ते पिता ।
सरूपकृत् त्वमोषधे सा सरूपमिदं कृधि ।।१२।।

अथर्ववेद १।२४।३

हे औषधे! (ते) तेरी (माता) उत्पत्ति-भूमि (सरूपा) तेरे ही समान गुण रूप वाली 'सरूपा' है और (ते) तेरा (पिता) उत्पादक बीज या पालक सूर्य भी (सरूपः नाम) 'सरूप' नाम वाला है। हे औषधे ! (त्वं) तू स्वयं (सरूपकृत्) त्वचा को समान रूप बना देने हारी है, इसलिये (इदं) इस दोष युक्त कुष्ठी शरीर को भी (सरूपं) समान सुन्दर रूप (कृधि) कर ।

श्यामा सरूपङ्करणी पृथिव्या अध्युद्भृता ।
इदमूषु प्र साधय पुना रूपाणि कल्पय ।।१३।।

अथर्ववेद १।२४।४

(श्यामा) श्यामा नाम वाली औषध (पृथिव्याः) पृथिवी के (अधि उद्-भृता) ऊपर उत्पन्न और पुष्ट होती है वह (सरूपं करणी)

उत्तम रूप और समान त्वचा बना देती है। हे श्यामे ! (इदमूषु) तू इस कुष्ठ को (प्र साधय) ठीक कर और (पुनः) बार-बार (रूपाणि) नये-नये रूप, नयी त्वचायें (कल्पय) उत्पन्न कर।

यदग्निरापो अदहत्प्रविश्व यत्राकृण्वन् धर्मधृतो नमांसि ।
तत्र त आहुः परमं जनित्रं स नः संविद्वान् परि वृङ्ग्धि तक्मन् ।१४।

अथर्ववेद १।२५।१

हे (तक्मन्) शरीर को कष्ट देने वाले ज्वर ! (यत्र) जिसके आश्रय पर (धर्मधृतः) धर्म, आत्मा को धारण करने वाले शरीरधारी वात-पित्त और कफ या सप्त धातु (नमांसि) नाना शरीर के कार्यों को (अकृण्वन्) साधते हैं (तत्र) उसमें हो वे परम विद्वान् वैद्य (ते) तेरा (परमं) सबसे मूलभूत (जनित्रं) उत्पत्ति स्थान (आहुः) बतलाते हैं और जिस प्रकार (अग्निः) अग्नि (आपः) जलों में (प्रविश्य) प्रविष्ट होकर उसको तपाता है उसी प्रकार हे ज्वर ! तू भी (आपः) सर्व शरीर में व्यापक रुधिर या प्राणों में (प्रविश्य) भीतर घुसकर शरीर को (अदहत्) तपाता और धर्मभृत् शरीर के भीतर मास मेद, अस्थि, मज्जा, रुधिर शुक्र आदि धातुओं को जलाता है। उस ज्वरकारी कारण को (विद्वान्) जानने हारा वैद्य तू (सः) वह कुशल होकर (नः सं परिवृङ्‌धि) उसको हमसे दूर कर। अथवा हे (तक्मन्) कष्टदायी ज्वर ! (सः) वह तू उक्त प्रकार से (सं विद्वान्) वेदना देने वाला है, चिकित्सा द्वारा (नः) हमें (सं परि वृङ्‌धि) छुड़ा दे।

यद्यर्चिर्यदि वासि शोचिः शकल्येषि यदि वा ते जनित्रम् ।
हूडुर्नामासि हरितस्य देव स नः संविद्वान् परि वृङ्ग्धि तक्मन् ।१५।

अथर्ववेद १।२५।२

हे (तक्मन्) कष्टमय जीवन करने हारे ! (यदि) चाहे तू (अर्चिः) अग्नि की ज्वाला के समान जलन करने वाला (यदि वा) और चाहे (शोचिः) तापजनक है। (यदि वा) और चाहे (ते) तेरा (जनित्रम्) प्रादुर्भाव (शकल्य-इषि) शरीर के अंग-अंग में व्याप कर थर-थर पैदा करने वाला हो, हे (देव) शरीर को तप्त करने वाले अथवा अग्नि के विकार रूप ज्वर ! तू (हरितस्य) हरित नाम कामला रोग का (हूडुः)

निश्चय से उत्पादक है इसलिये तू 'ह्रूडु' (नाम) नाम से प्रसिद्ध (असि) है (नः) हममें से (सः) वह प्रसिद्ध वैद्य इस रहस्य को (सं-विद्वान्) जानता है उसकी चिकित्सा से तू हमें (परि वृङ्धि) छुड़ा दे ।

यदि शोको यदि वाभिशोको यदि वा राज्ञो वरुणस्यासि पुत्रः ।
ह्रूडुर्नामासि हरितस्य देव स नः संविद्वान् परि वृङ्ग्धि तक्मन् ।१६।

अथर्ववेद १।२५।३

हे (तक्मन्) ज्वर ! (यदि शोकः) चाहे तू शरीर के एक भाग में तापकारी है, (यदि वा) और चाहे (अभिशोकः) तू सब अंगों में भीतर बाहर सर्वत्र तापजनक है, (यदि वा) और चाहे तू (वरुणस्य) सबको आवरण करने वाले, सर्वत्र फैलने वाले जलीय अंश का (पुत्रः) रूपान्तर है, तो भी हे (देव) अग्नि या जलांश से उत्पन्न ! (हरितस्य) पाण्डु कामला या पैत्तिक रोग का (ह्रूडुः) निश्चय से उत्पादक है, इस प्रकार से तू (नाम) प्रसिद्ध (ह्रूडुः असि) ह्रूडु है । इस बात को (नः) हममें से (सः) वह वैद्य (संविद्वान्) उत्तम जानता है, उसकी योग्य चिकित्सा से तू हमें (परि वृङ्धि) त्याग दे अर्थात् रोग रहित करे ।

नमः शीताय तक्मने नमो रूराय शोचिषे कृणोमि ।
यो अन्येद्युरुभयद्युरभ्येति तृतीयकाय नमो अस्तु तक्मने ।।१७।।

अथर्ववेद १।२५।४

(शीताय) शीत से उत्पन्न या शीत देकर उत्पन्न होने वाले (तक्मने) कष्टप्रद, ज्वर आदि के लिए (नमः) यह उपचार है और (शोचिषे) ताप या गर्मी देकर उत्पन्न होने वाले 'रूर' या 'ह्रूडु' नामक ज्वर व्याधि के लिए मैं (नमः कृणोमि) औषधि उपचार करता हूँ और (यः) जो ज्वर (अन्येद्युः) प्रतिदिन और (उभयेद्युः) दो दिनों के अन्तर पर (अभ्येति) प्रकट होता है उस (तक्मने) ज्वर व्याधि के लिए (नमः अस्तु) औषधि उपचार हो । ह्रूडु नामक ज्वर कदाचित् 'हुड़हुड़ा' ज्वर है । वेद में सभी ज्वरों को 'ह्रूडु' कहा है । वह आरूढ़ हो जाता है और पीलिया आदि नाना रोगों को उत्पन्न करता है, वही 'रूर' अर्थात् क्रूर, कष्टदायी है ।

हृदयात् ते परि क्लोम्नो हलीक्ष्णात् पार्श्वाभ्याम् ।
यक्ष्मं मतस्नाभ्यां प्लीह्नो यक्नस्ते वि वृहामसि ॥१८॥

अथर्ववेद २।३३।३

(ते हृदयात्) तेरे हृदय से, (क्लोम्नः) हृदय के समीप के फेफड़े से, (हलीक्ष्णात्) चित्तोत्पादक अंग से, (पार्श्वाभ्यां मतस्नाभ्यां) दोनों पासों पर लगे गुर्दों से (प्लीह्नः) पिलही से और (ते यक्नः) तेरे यकृत् अर्थात् कलेजे से हम (यक्ष्मं वि वृहामसि) रोग को दूर करते हैं ।

अस्थिभ्यस्ते मज्जभ्यः स्नावभ्यो धमनिभ्यः ।
यक्ष्मं पाणिभ्यायङ्गुलिभ्यो नखेभ्यो वि वृहामि ते ॥१९॥

अथर्ववेद २।३३।६

(ते अस्थिभ्यः) तेरी हड्डियों से, (मज्जभ्यूः) मज्जा भागों से, (स्नाषुभ्यः) स्नायुओं में (धमनिभ्यः) धमनी, रक्त वाहिनी नाड़ियों से (पाणिभ्यां) तेरे हाथों से (अंगुलिभ्यः) अंगुलियों से और (ते नखेभ्यः) तेरे नखों से (यक्ष्मं वि वृहामि) रोग दूर करता हूँ ।

अंगे अंगे लोम्नि लोम्नि यस्ते पर्वणि पर्वणि ।
यक्ष्मं त्वचस्यंते वयं कश्यपस्य वीवर्हेण
विश्वञ्चं वि वृहामसि ॥२०॥

अथर्ववेद २।३३।७

(ते) तेरे (अंगे-अंगे) अंग-अंग में और (लोम्नी लोम्नी) रोम-रोम में और (पर्वणि-पर्वणि) पोरु-पोरु में (ते त्वचस्यं) तेरी त्वचा के भीतर बैठे, (विश्वञ्चं) सब देह में बैठे (यक्ष्मं) रोग को (कश्यपस्य) रोग के कारण और उनके उपायों को देखने हारे ज्ञानी पुरुष के उपदेश किये हुए (वीवर्हेण) नाना प्रकार के रोग विनाशक उपाय से (वि वृहामसि) हम दूर करते हैं ।

यदासुतेः क्रियमाणायाः क्षेत्रियं त्वा व्यानशे ।
वेदाहं तस्य भेषजं क्षेत्रियं नाशयामि त्वत् ॥२१॥

अथर्ववेद ३।७।६

हे रोगिन ! (क्रियमाणायाः) की जाती हुई (आसुतेः) वीर्य की

आधान क्रिया या प्रसव क्रिया से लेकर ही (यद्) जो (क्षेत्रियं) देह स्थित या वंश परम्परा से प्राप्त रोग (त्वा) तेरे शरीर में (वि आनशे) फैला हुआ है (तस्य) उसकी भी मैं (भेषजं वेद) चिकित्सा जानता हूँ। इसलिए (त्वत्) तेरे (क्षेत्रियं) शरीरगत या वंशागत ऐसे रोग का भी (नाशयामि) विनाश करता हूँ।

अपवासे नक्षत्राणामपवास उषसामुत ।
अपास्मत् सर्वं दुर्भूतमप क्षेत्रियमुच्छतु ।।२२।।

अथर्ववेद ३।७।७

(नक्षत्राणाम्) नक्षत्रों के (अपवासे) अस्त हो जाने (उत) और 'उषाकाल, प्रभात वेला' के भी (अपवासे) व्यतीत हो जाने पर हमारे शरीरों से (दुर्भूतं) कष्टदायक, (सर्वं) सब प्रकार का (क्षेत्रियं) शरीरगत रोग (अप उच्छतु) दूर हो जाय।

यावच्चतस्रः प्रदिशश्चक्षुर्यावत् समश्नुते ।
तावत् समैत्विन्द्रियं मयि तद्धस्तिवर्चसम् ।।२३।।

अथर्ववेद ३।२२।५

(यावत् चतस्रः प्रदिशः) जितनी भी चारों दिशायें हैं और (यावत् चक्षुः समश्नुते) और जितनी दूर तक हमारा चक्षु फैल सकता है, (तावत्) उतना (मयि) मुझमें (हस्ति-वर्चसं) हस्ती के समान या सूर्य के समान (इन्द्रियं) मेरे आत्मा में सामर्थ्य (सम् आ एतु) मुझमें समा जाय। मैं रोग रहित होकर अनन्त तेजस्वी हो जाऊँ।

अद्याग्ने अद्य सवितरद्य देवि सरस्वति ।
अद्यास्य ब्रह्मणस्पते धनुरिवा तानया पसः ।।२४।।

अथर्ववेद ४।४।६

हे (अग्ने) अग्ने! आचार्य, हे (सवितः) उत्पादक पिता! हे (सरस्वती देवि) विद्ये! हे (ब्रह्मणस्पते) वेद के विद्वान पुरुष या परमात्मन्! (अद्य) आज, अब (अस्य) इस पुरुष के, औषध, सदुपदेश और ब्रह्मचर्य द्वारा (पसः) प्रजननांग को (धनुः इव) लक्ष्यभेदक धनुष के समान (आ तनय) सामर्थ्य वाला बना दो जिससे यह भी सन्तान प्राप्त करने में समर्थ हो।

यावती द्यावापृथिवी वरिम्णा यावत् सप्त सिन्धवो वितष्ठिरे।
वाचं विषस्य दूषणीं तामितो निरवादिषम् ॥२५॥

अथर्ववेद ४।६।२

(द्यावापृथिवी) आकाश और भूमि (वरिम्णा) विस्तार से (यावती) जितनी बड़ी हैं और (सप्त सिन्धव) सातों समुद्र (यावत्) जितनी दूर तक (वि-तस्थिरे) फैले हैं, उतने विस्तार तक (विषस्य दूषणीम्) विष के विनाश करने वाली, प्रबल (तां वाचम्) रोग नाशक उस वाणी को मैं (इतः) इस मुख से (निरअवादिषम्) बोलूँ। अर्थात् शरीर में सप्त धातुयें जितनी दूर तक फैली हुई हैं, उतने विस्तार तक अर्थात् शरीर के प्रत्येक अंग तक विष के विनाश करने वाली रोग नाशक प्रबल इच्छा शक्ति रूपी उस वाणी को मैं इस मुख से बोलूँ अर्थात् मनन करूँ।

मा त्वा जम्भः संहनुर्मा तमो विदन्मा
जिह्वा बर्हिः प्रमयुः कथा स्याः।
उत् त्वादित्या वसबो भरन्तूदिन्द्राग्नी स्वस्तये ॥२६॥

अथर्ववेद ८।१।१६

(त्वाः) तुझे (जम्भः) अंगों को जकड़ने वाला, (संहनुः) जबड़ों को पकड़ने वाला रोग (मा विदत्) कभी न पकड़े और (तमः) आँखों के आगे अन्धेरा लाने वाला शिरोरोग या तमक रोग भी तुझे न पकड़े और (जिह्वा) जीभ तुझे रोग में न आ पकड़े। तू (बर्हिः) सदा वृद्धिशील रहकर (कथा) किस प्रकार (प्रमयुः) मरणोन्मुख (स्याः) हो सकता है ? (उत्) और (त्वा) तुझको (आदित्याः) बालब्रह्मचारी, (वसवः) वसु ब्रह्मचारी, और (इन्द्राग्नी) राजा और आचार्य ये (स्वस्तयेः) कल्याण के लिए (उद् भरन्तु) उन्नति पथ पर ले जावें।

अपोनोक्ति सलिल सूक्त

आकाश से पड़ा जल तीनों दोषों का नाशक, बलकारी, पवित्र, रसायन है। आकाश में दिव्य वायु और अग्नि के संयोग से शिला रूप ओला बनकर गिरने वाला जल अमृत के समान है। इसी प्रकार हिमाच्छादित पर्वतों से बहती नदियों के जल भी, शरीर के लिए पथ्य, आरोग्यजनक और पवित्र होते हैं।

आपो हिष्ठा मयोभुवस्ता न ऊर्जे दधातन ।
महे रणाय चक्षसे ॥१॥

अथर्ववेद १।५।१

हे (आपः) जलो ! (मयोभुवः) आप सुखशान्ति के देने वाले (स्थ) हो, (ताः) वे आप (नः) हमें (ऊर्जे) बल और प्राणशक्ति के लिये (दधातन) पुष्ट करो और (महे) बहुत (रणाय) शब्द अर्थात् उच्च कण्ठ स्वर और सुख के तथा (चक्षसे) उत्तम दृष्टि शक्ति के लिए हो।

यो वः शिवतमो रसस्तस्य भाजयतेह नः ।
उशतीरिव मातरः ॥२॥

अथर्ववेद १।५।२

(उशतीः) पुत्र को निरन्तर चाहने वाली प्रेममयी (मातरः) मातायें जैसे अपने पुत्रों को दुग्ध पिलाकर पोसती है उसी प्रकार हे (आपः) जलों ! (वः) तुम्हारा (यः) जो (शिवतमः) अत्यन्त कल्याणकारी (रसः) रस है (तस्य) उसका (नः) हमें (इह) यहाँ (भाजयत) भागी बनाओ।

तस्मा अरं गमाम वो यस्य क्षयाय जिन्वथ ।
आपो जनयथा च नः ॥३॥

अथर्ववेद १।५।३

हे (आपः) हे जलो ! (तस्मै) उस लाभ को प्राप्त करने के लिए (वः) तुम्हें हम (अरं गमाम) अच्छी प्रकार से प्राप्त करते हैं (यस्य) जिसके (क्षयाय) हममें सदा निवास के लिये (जिन्वथ) तुम्हारी सत्ता है और तुम (नः) हमें (जनयथ च) उत्पन्न करते और बढ़ाते हो ।

शं नो देवीरभिष्टय आपो भवन्तु पीतये ।
शं योरभि स्रवन्तु नः ॥४॥

अथर्ववेद १।६।१

(देवीः) दिव्यगुणयुक्त (आपः) जल (नः) हमारे (अभिष्टये) यज्ञ और अभिष्ट सुख साधन के लिए और (पीतये) पान करने के लिए (शं) कल्याणकारी हों और (नः) हमारे (शं) प्राप्त रोगों के शमन और (योः) अप्राप्त रोगों को दूर ही से निवारण करने के लिए (अभि स्रवन्तु) सब ओर से बहें, स्रवित हों ।

आपः पृणीत भेषजं वरूथं तन्वे ३ मम ।
ज्योक्च सूर्यं दृशे ॥५॥

अथर्ववेद १।६।३

(आपः) हे जलो ! तुम (मम) मेरे (तन्वे) शरीर के लिए (वरूथं) सब रोगों के निवारक (भेषजं) औषधि को (पृणीत) प्रदान करो और (ज्योक् च) चिरकाल तक (सूर्यं) सूर्य को (दृशे) देखने में हमें समर्थ बनाओ ।

शं न आपो धन्वन्याः३ शमु सन्त्वनूप्याः ।
शं नः खनित्रिमा आपः शमु याः कुम्भ आभृताः
शिवा नः सन्तु वार्षिकीः ॥६॥

अथर्ववेद १।६।४

(नः) हमारे लिये (धन्वन्याः) मरुभूमि से उत्पन्न हुए जल (शं) रोगों के शान्त करने वाले हों और (अनूप्याः) अनूप अर्थात् जलमय देश के जल (शम् उ) रोगों के शान्त करने वाले हों । (खमित्रिमांः) खोद कर कुओं से प्राप्त किये (आपः) जल (नः शं) हमारे रोगों को शान्त

करने वाले हों और (याः) जो जल (कुम्भे) घड़े और मटके में (आभृताः) लाकर रखे हों वे भी (शम् उ) रोगों को शान्त करने वाले हों और (वार्षिकी) वर्षा के जल भी (नः) हमारे लिए (शिवाः) कल्याण तथा सुखकारी होते हुए रोग के शान्त करने वाले (सन्तु) हों।

आप इद् वा उ भेषजीरापो अमीवचातनीः।
आपो विश्वस्य भेषजीस्तास्त्वा मुञ्चन्तु क्षेत्रियात् ॥७॥

अथर्ववेद ३।७।५

(आपः इद् वा उ) जल ही (भेषजीः) स्वयं रोगहारक उत्तम औषधि है, क्योंकि (आपः) जल ही (अमीवचातनीः) रोग-जन्तुओं का नाश करने में समर्थ है। (आपः विश्वस्य भेषजीः) जलों से ही समस्त रोगों की चिकित्सा हो जाती है। (ताः त्वा) वे जल ही तुझे (क्षेत्रियात्) शरीरगत, परम्परा-प्राप्त पैतृक रोगों से भी (मुञ्चन्तु) छुड़ा दें।

आदित् पश्याम्युतवा श्रृणोम्यामा घोषो गच्छति वाङ् मासाम्।
मन्ये भेजानो अमृतस्य तर्हि हिरण्यवर्णा अतृपं यदा वः ॥८॥

अथर्ववेद ३।१३।६

(आत्) इसके अनन्तर (आसाम्) इनके बीच में से मैं (पश्यामि) आरपार भी देख लेता हूँ (उत वा) और (आसाम्) इनके बीच में से (श्रृणोमि) श्रवण भी कर सकता हूँ। (घोषः) शब्द भी (आसाम्) इन जलों के बीच में से (मा) मुझ तक (आगच्छति) आ जाता है और (आसाम्) इनमें से (वाक्) वाणी भी (मा) मुझ तक होकर आती है। हे जलो ! हे (हिरण्यवर्णाः) अमृत स्वरूप या शब्द और प्रकाश को हरण करने वाले परमाणुओं के बने जलो ! (यदा) जब (वः) तुमको (अतृपम्) पान करता हूँ (तर्हि) तब वे अपने को (अमृतस्य) अमृत का (भेजानः) सेवन करता हुआ (मन्ये) मानता हूँ।

श्वात्राः पीता भवत यूयमापो ऽ अस्माकमन्तरुदरे सुशेवाः।
ता ऽ अस्मभ्यमयक्ष्मा ऽ अनमीवा ऽ अनागसः
स्वदन्तु देवीरमृता ऽ ऋतावृधः ॥९॥

यजुर्वेद ४।१२

(आपः) हे जलों के समान स्वच्छ बुद्धि वाले आप्त पुरुषो ! जैसे

जल (श्वात्राः) शीघ्रगामी, पान करने योग्य होता है वैसे ही आप लोग भी (श्वात्राः) प्रशस्त धन और ज्ञान से युक्त और ज्ञानरस के पान कराने वाले (भवत) बने रहो और जैसे जल (अन्तः उदरे) पेट के भीतर (सुशेवाः) सुखप्रद, सेवन करने योग्य होते हैं वैसे ही आप लोग (अस्माकम्) हमारे बीच में (सु-शेवाः) सुखप्रद हैं और जैसे जल (अयक्ष्मा) यक्ष्मा, रोग से रहित (अनमीवाः) कष्टतर रोगों से रहित और (अनागसः) पवित्र होकर हमें स्वादु प्रतीत होते हैं वैसे ही (ताः) वे आप्त प्रजाजन भी (अयक्ष्माः) राज यक्ष्मादि रोगों से रहित, (अनमीवाः) नीरोग, (अनागसः) निष्पाप (देवीः) दिव्य गुणों से युक्त और (ऋतावृधः) सत्यज्ञान को वढ़ाने वाले (अमृताः) अमृत, दीर्घजीवी होकर (अस्मभ्याम्) हमें (स्वदन्तु) सब प्रकार के सुख प्रदान करावें।

अप्स्वन्तरमृतमप्सु भेषजमपामुत
प्रशस्तिष्वश्वा भवत वाजिनः।
देवीरापो यो व ऽ ऊर्मिः प्रतूर्तिः
ककुन्मान्वाजसास्तेनायं वाजꣳ सेत् ॥१०॥

यजुर्वेद ६।६

(अमृतम्) अमृत, मृत्यु का निवारण करने बाला, मूल कारण (अप्सु अन्तः) जलों के भीतर विद्यमान है और (भेषजम्) रोगों के दूर करने का सामर्थ्य भी (अप्सु) जलों के भीतर है। (उत्) और हे (वाजिनः) वीर्यवान् और ज्ञानवान् पुरुषो! आप लोग (अपाम्) जलों के (प्रशस्तिषु) प्रशंसनीय गुणों के आधार पर ही (अश्वाः भवत) अति वेगवान् और बलवान् हो जाओ।

हे (आपः देवीः) दिव्य आप्त पुरुषो! हे राजा की प्रज़ाओं! (यः) जो (वः) तुम्हारा (ऊर्मिः) उच्च सामर्थ्य और (प्रतूर्तिः) उत्तम क्रिया शक्ति है उनसे वह राजा (ककुन्मान्) सर्व श्रेष्ठ पद और सामर्थ्य को धारण करने और (वाजसाः) युद्ध में जाने को समर्थ हो। (तेन) उस पराक्रम से वह (वाजं सेत्) युद्ध का विजय करे।

सरस्वती सूक्त

जिसमें समस्त ज्ञान हो, उसे सरस्वती कहते हैं। पारब्रह्म परमेश्वर में समस्त ज्ञान है अतः परमात्मा का नाम सरस्वती है। पारब्रह्म से ही वेदों का प्रादुर्भाव होने से वेद भी सर्व विद्यामय हैं। अतः वेद वाणी भी सरस्वती है। इसके माध्यम से पारब्रह्म का दर्शन और समस्त ज्ञान का बोध रूप दर्शन होता है, अतः शब्द ब्रह्म रूपी वेद वाणी सरस्वती है। जब यह वेदवाणी मन का विषय बन जाती है तब यही सरस्वती का सावित्री स्वरूप होता है। जिस प्रकार सविता के उदय होने से सर्वत्र प्रकाश और प्राण जागृत हो जाता है, उसी प्रकार मन जब मन्त्र का मनन करता है तो उसमें दिव्य ज्ञान एवं दिव्य प्राणों का उदय हो जाता है। जब मन, बुद्धि, चित्त वेदवाणी के ज्ञान एवं प्राण से पूर्ण हो जाते हैं तो वही वेद रूपी सरस्वती की गायत्री रूप में स्थिति है। सरस्वती सूक्त के इन मन्त्रों से सर्व विद्यामय प्रभु की ही उपासना करनी चाहिए, इस प्रकार ब्रह्मरूपी सरस्वती की उपासना द्वारा हमें, विद्या, बुद्धि, मेधा और प्रज्ञा प्राप्त होगी।

ताम्र के हवन कुण्ड में पीपल की समिधाओं से, सामग्री=ब्राह्मी, शंख पुष्पी, मुण्डी, बच दूधिया, बालछड़, गूगल, सफेद चन्दन चूरा, चीनी, शुद्ध देसी घी, सबको समान भाग लेकर सामग्री बना ले। इस सामग्री और देसी घी के द्वारा सरस्वती सूक्त से नित्य प्रति यज्ञ करें। यज्ञ कुण्ड की भस्मी को रात्रि में एक कञ्च के गिलास में जल में घोल कर रख दें। अगले दिन प्रातः यज्ञादि कर्म से निवृत्त होकर सावधानी के साथ ऊपर के जल को नितार कर कपड़े से छान लें और इसका पान करें। इसके पान से मेधा शक्ति में अत्यन्त वृद्धि होगी।

सूक्त

पावका नः सरस्वती वाजेभिर्वाजिनीवती ।
यज्ञं वष्टु धियावसूः ॥१॥

ऋग्वेद १।३।१०

(वाजेभिः) बलों, ज्ञानों ऐश्वर्यों और अन्नों से (वाजिनीवती) बल ज्ञान, ऐश्वर्य और अन्नादि को सिद्ध करने वाली क्रिया से युक्त (पावका) सबको पवित्र करने वाली (सरस्वती) शुद्ध जलों से युक्त नदी के समान उत्तम ज्ञानमयी और गुरु परम्परा से बहने वाली वेद वाणी और उसको धारण करने वाले विद्वान् जन (धिवायसुः) परस्पर संग, उत्तम कर्म और ज्ञान के ऐश्वर्य को धारण करने वाले होकर यज्ञ, शिल्प व्यवहार, विद्याभ्यास एवं आत्मा और राष्ट्र को (वष्टु) प्रकाशित करें।

चोदयित्री सूनृतानां चेतन्ती सुमतीनाम् ।
यज्ञं दधे सरस्वती ॥२॥

ऋग्वेद १।३।११

(सरस्वती) उत्तम ज्ञानों से युक्त वेदवाणी (सू-नृतानां) उत्तम सत्य ज्ञानों को (चोदयित्री) उपदेश करने वाली और (सुमतीनां) उत्तम बुद्धि वाले विद्वान् पुरुषों को (चेतन्ती) ज्ञान प्रदान करती हुई उनके (यज्ञं) यज्ञ, श्रेष्ठ कर्म और देव-उपासना को (दधे) धारण करती, उसका उपदेश करती है।

महो अर्णः सरस्वती प्र चेतयति केतुना ।
धियो विश्वा वि राजति ॥३॥

ऋग्वेद १।३।१२

(सरस्वती) ज्ञानमयी वेदवाणी (केतुना) अपने ज्ञान से ही (महः अर्णः) बड़े भारी ज्ञान सागर का (प्रचेतयति) उत्तम रीति से ज्ञान कराती है और (विश्वा) समस्त (धियः) ज्ञानों और कर्मों को (वि राजति) विविध प्रकार से प्रकाशित करती है। जिस प्रकार निरन्तर बहती जलधारा यह सूचना देती है कि उसके निकास में अनन्त जल सागर है उसी प्रकार वेदवाणी भी उपदेश परम्परा से बराबर विस्तृत होकर अपने निकास में स्थित अनन्त ज्ञान और शब्द राशि का ज्ञान कराती है।

सदसस्पतिमद्भुतं प्रियमिन्द्रस्य काम्यम् ।
सनिं मेधामयासिषम् ॥४॥

ऋग्वेद १।१८।६

(अद्भुतं) अद्भुत, आश्चर्यकारी, (इन्द्रस्य) ऐश्वर्यवान् राजवर्ग और वैश्यवर्ग के (प्रियम्) प्रिय लगने हारे, (काम्यम्) सब प्रजा के इच्छानुकूल, (सनिम्) योग्य ज्ञान और उचित श्रमानुकूल वेतन पुरस्कार आदि देने वाले (सदसः) विद्वानों के एकत्र विचारार्थ बैठने की सभा के (पतिम्) पालक, न्याय सभा या धर्म सभा के नेता सभापति को मैं (मेधाम्) धारणावती उत्तम बुद्धि प्राप्त करने के लिए (अयासिषम्) प्राप्त करूँ। ब्रह्माण्ड के पालक, सब कर्मों के फलदाता परमेश्वर को मैं बुद्धि प्राप्त करने के लिए प्राप्त होऊँ, उसकी उपासना करके उत्तम बुद्धि प्राप्त करूँ।

यां मेधां देवगणाः पितरश्चोपासते ।
तया मामद्य मेधयाग्ने मेधाविनं कुरु स्वाहा ॥५॥

यजुर्वेद ३२।१४

(याम्) जिस (मेधाम्) आत्मज्ञान को धारण करने वाली परम बुद्धि को (देवगणाः) देव, विद्वान् गण (पितरः) पालक जन, पूर्व के विद्वान् (च) भी (उपासते) उपासना करते हैं (तया मेधया) उस परम प्रज्ञा से (अग्ने) हे ज्ञान स्वरूप परमेश्वर ! या गुरो (माम्) मुझको (स्वाहा) उत्तम उपदेश वाणी और योगाभ्यास द्वारा (मेधाविनं कुरु) मेधावान्, प्रज्ञावान् करो।

मेधां मे वरुणो ददातु मेधामग्निः प्रजापतिः ।
मेधामिन्द्रश्च वायुश्च मेधां धाता ददातु मे स्वाहा ॥६॥

यजुर्वेद ३२।१५

(वरुणः) सर्वश्रेष्ठ, सब दुःखों का वारण करने वाला परमेश्वर (मे मेधाम् ददातु) मुझे मेधा, प्रज्ञा, बुद्धि प्रदान करे। (अग्नि) ज्ञानस्वरूप (प्रजापतिः) परमेश्वर (मेधाम्) मेधा प्रदान करे। (इन्द्रः) परमेश्वर और (वायुः च) सर्व व्यापक प्रभु (मे मेधाम् ददातु) मुझे मेधा बुद्धि प्रदान करे। (धाता) सबका पोषक परमेश्वर (स्वाहा) उत्तम वाणी द्वारा (मे मेधां ददातु) मुझे मेधा बुद्धि प्रदान करे।

अम्बितमे नदीतमे देवीतमें सरस्वति ।
अप्रशस्ता इव स्मसि प्रशस्तिमम्ब नस्कृधि ।।७।।

ऋग्वेद २।४१।१६

हे (अम्ब) अध्यापन करने, शिक्षा देने वाली आचार्याणि और हे माता ! हे (अम्बितमे) अध्यापन करने वालों में सबसे श्रेष्ठ ! सबसे अधिक पूजा योग्य ! (नदीतमे) उपदेश करने वालों में सबसे अधिक पूज्य ! हे (देवितमे) विद्यादि दान करने वाली स्त्रियों में सर्वश्रेष्ठ ! हे (सरस्वति) उत्तम ज्ञान वाली । हम (अप्रशस्ताः इव) उत्तम ज्ञानोपदेश और प्रवचन से रहित अकुशल, मूर्ख, बालक के समान (स्मसि)हैं। (नः) हमें (प्रशस्तिं) उत्तम ज्ञानोपदेश (कृधि) कर।

त्वे विश्वा सरस्वति श्रितायूंषि देव्याम् ।
शुनहोत्रेषु मत्स्व प्रजां देवि दिदिड्ढि नः ।।८।।

ऋग्वेद २।४१।१७

हे (सरस्वति) उत्तम ज्ञान वाली विदुषि ! स्त्री ! (त्वे देव्याम्) तुझ विदुषी ज्ञान और सुखदात्री के आश्रय पर ही हमारे(विश्वाआयूंषि) समस्त आयु और जीवन सुख (श्रिता) आश्रित हैं। तू (शुनहोत्रेषु) सुख और ज्ञान देने वाले वृद्ध, ज्ञानी पुरुषों के बीच में (मत्स्व) आनन्दित हो और (नः) हमारी (प्रजां) उत्तम सन्तान को (दिदिड्ढि) उपदेश करे।

प्राणोदेवी सरस्वती वाजेभिर्वाजिनीवती ।
धीनामवित्र्यवतु ।।९।।

ऋग्वेद ६।६१।४

(सरस्वती देवी) उत्तम जल प्रवाह से युक्त नदी जिस प्रकार (वाजेभिः) नाना अन्नों से (वाजिनीवती) अन्न से सम्पन्न भूमि वाली होकर (धीनाम् अवित्री) नाना कौशल कर्मों को चलाने वाली होती है और प्रजा को पालती है उसी प्रकार (देवी) विदुषी (सरस्वती) उत्तम ज्ञानवती स्त्री हो। वह (वाजेभिः) ज्ञानों और बलों से (वाजिनीवती) विद्या सम्पन्न होकर (धीनाम्) उत्तम बुद्धियों और कर्मों की (अवित्री) प्रकाश करने वाली होकर (नः प्र अवतु) हमें प्राप्त हो।

यस्त्वा देवि सरस्वत्युपब्रूते धने हिते ।
इन्द्रं न वृत्रतूर्ये ॥१०॥

ऋग्वेद ६।६१।५

हे (देवि) ज्ञानदात्रि ! (सरस्वति) उत्तम ज्ञान से सम्पन्न महाभागे ! (वृत्र-तूर्ये इन्द्रं न) मेघ को छिन्न-भिन्न करने के कार्य में 'इन्द्र' अर्थात् विद्युत के समान (यः) जो पुरुष (त्वा) तुझको (हिते धने) हितकारी धन को प्राप्त करने के निमित्त (उप ब्रूते) उपदेश करता है तू ऐसे पुरुष को (धीनाम् अवित्री प्र अवतु) बुद्धियों को पालन करती हुई प्राप्त हो ।

त्वं देवि सरस्वत्यवा वाजेषु वाजिनि ।
रदा पूषेव नः सनिम् ॥११॥

ऋग्वेद ६।६१।६

हे (देवि) कमनीय स्वभाव युक्त, प्रिय (सरस्वति) विदुषि हे (वाजिनि) उत्तम, ज्ञानवति, अन्नदात्रि ! बलवति ! तू (वाजेषु) वलयुक्त-संग्राम आदि ज्ञानयुक्त अध्ययनादि कालों में भी (नः सनिम्) हमें देने योग्य हमारी वृत्ति तथा विवेचक बुद्धि को (पूषा) भूमि या पोषक पति के समान ही (अव) पालन कर (रद) हे ! स्त्री भृत्यादि को पतिवत् ही पालन करे ।

उतस्या नः सरस्वती घोरा हिरण्यवर्तनिः ।
वृत्रघ्नी वष्टि सुष्टुतिम् ॥१२॥

ऋग्वेद ६।६१।७

(उत) और (स्या) वह (नः) हमारी (सरस्वती) वेदवाणी (घोरा) दुष्टों को भय देने वाली, (हिरण्य-वर्त्तनिः) हित और प्रिय मार्ग का उपदेश देने वाली (वृत्रघ्नी) अज्ञान रूप विघ्न को नाश करने वाली, (सु-स्तुतिम् वष्टि) सदा उत्तम उपदेश करना चाहती है । इस प्रकार (नः) हमारे बीच वह विदुषी स्त्री (घोरा) दयाशील, सुवर्ण रथ पर चढ़ने हारी, वा उत्तम हितकारक सदाचार मार्ग पर चलने हारी, (वृत्रघ्नी) दुष्टों का नाशक होकर उत्तम प्रशंसा की कामना करे ।

उत नः प्रिया प्रियासु सप्तस्वसा सुजुष्टा ।
सरस्वती स्तोम्या भूत् ।।१३।।

ऋग्वेद ६।६१।१०

(उत) और (सरस्वती) उत्तम अन्तरिक्ष में विचरने वाली एवं उत्तम ज्ञान से पूर्ण वाणी (सप्त-स्वसा) पाँच प्राण, मन और बुद्धि इन सात मुखों में स्थित वा सात प्राणों से युक्त, (सु-जुष्टा) सुखपूर्वक सेवित, (प्रियासु) सब प्रिय वृत्तियों में भी (नः प्रिया) हमें अति प्रिय होने से (स्तोम्या भूत्) स्तुति योग्य है । वेदवाणी, गायत्री आदि सात छन्दों से 'सप्त-स्वसा' है। वही अति प्रिय होकर (स्तोम्या) भगवत्स्तुति के योग्य है ।

बृहदु गायिषे वचो ऽसुर्या नदीनाम् ।
सरस्वतीमिन्महया सुवृक्तिभिः स्तोमैर्वसिष्ठ रोदसी ।।१४।।

ऋग्वेद ७।९६।१

हे (वसिष्ठ) उत्तम विद्वान् ! तू (रोदसी) भूमि और सूर्य दोनों में नायक और (नदीनाम् असुर्या) नदियों में बलवती नदी के समान समृद्ध प्रजाओं में सबसे बलशाली, प्रभु की (बृहत् उ गायिषे) बहुत-बहुत स्तुति कर। (सुवृक्तिभिः) स्तुति और (स्तोमैः) वेद के सूक्तों और यज्ञादि से (सास्वतोम् इत् महय) जो अनादि काल से ज्ञान, शक्ति, प्राण, सुख, ऐश्वर्य का प्रवाह बहा रहा है। उसकी (महय) पूजा कर।

उभेयत्ते महिना शुभ्रे अन्धसी अधिक्षियन्ति पूरवः ।
सा नो बोध्यवित्री मरुत्सखा चोद राधो मघोनाम् ।।१५।।

ऋग्वेद ७।९६।२

(यत्) जिस (ते) तेरे (महिना) महान् सामर्थ्य से (पूरवः) मनुष्य गण (उभे) दोनों को (अधि क्षियन्ति) प्राप्त करते हैं, हे (शुभ्रे) अति उज्ज्वल स्वरूप वाली सरस्वति ! परमेश्वरी ! ज्ञानमयी ! (सा) वह तू (मरुत्सखा) विद्वानों की मित्र (अवित्री) समस्त संसार की रक्षा करने वाली वा स्नेहमयी होकर (नः बोधि) हमें ज्ञान दे और (मघोनां) ऐश्वर्यवान् जनों को (राधः चोद) धनादि प्रदान कर।

भद्रमिद्भद्रा कृणवत्सरस्वत्यकवारी चेतति वाजिनीवती ।
गृणाना जमदग्निवत्स्तुवाना च वसिष्ठवत् ।।१६।।

ऋग्वेद ७।६६।३

(भद्रा सरस्वती) सबका कल्याण करने वाली वह परमेश्वरी (वाजिनी-वती) बलयुक्त क्रिया और ऐश्वर्य, अन्नादि युक्त भूमि और सूर्यादि की स्वामिनी, ज्ञानादि युक्त, विद्वानों की स्वामिनी और (अकव-अरी) कुत्सित मार्ग में न जाने देने वाली होकर सबके लिए (भद्रम् इत् कृणवत्) कल्याण ही करती है। वही (चेतति) सबको ज्ञान देती है। वह (जमदग्निवत्) प्रज्वलित अग्नि के समान प्रकाश स्वरूप, (गृणाना) स्तुति की जाती है और (वसिष्ठवत्) सब में सर्वोत्तम रूप से वसने वाले, जगन्निवासिनी के समान (स्तुवाना) स्तुति की जाती है।

सरस्वतीं देवयन्तो हवन्ते सरस्वतीमध्वरे तायमाने ।
सरस्वतीं सुकृतो अह्वयन्त सरस्वती दाशुषे वार्यंदात् ।।१७।।

ऋग्वेद १०।१७।७

(देवयन्तः) ज्ञान-प्रकाशक, प्रभु की कामना करते हुए विद्वान् उसको (सरस्वतीं हवन्ते) प्रशस्त ज्ञान सम्पन्न शक्ति मानते हैं और (अध्वरे तायमाने) यज्ञ के विस्तृत होने पर (सरस्वतीम् हवन्ते) ज्ञानमय प्रभु का स्मरण करते हैं। (सुकृतः) पुण्यात्मा लोग (सरस्वतीं अह्वयन्त) प्रभु को ही पुकारते हैं, क्योंकि वह (सरस्वती) ज्ञान की स्वामिनी शक्ति ही (दाशुषे वार्यं दात्) दान शील पुरुष को वरण योग्य उत्तम ज्ञान, धन प्राप्त करता है।

सरस्वति या सरथं ययाथ स्वधाभिर्देवि पितृभिर्मदन्ती ।
आ सद्यास्मिन्बर्हिषि मादयस्वानमीवा इष आ धेह्यस्मे ।।१८।।

ऋग्वेद १०।१७।८

हे (सरस्वति) ज्ञान की स्वामिनि ! (देवि) देनेहारी ! (या) जो तू (स्वधाभिः) उत्तम अन्न, (पितृभिः) माता, पिता, गुरुजनों सहित (मदन्ती) प्रसन्न करती हुई (स-रथं ययाथ) एक समान रथ में जाती है, वह तू (अस्मिन् आ-सद्य) यहाँ उत्तम आसन पर आदर पूर्वक विराज कर (अस्मे) हमें (अनमीवः) रोग रहित (इषः) अन्न और काम्य पदार्थ (आधेहि) प्रदान कर।

सरस्वतीं यां पितरो हवन्ते दक्षिणा यज्ञमभिनक्षमाणाः।
सहस्रार्घमिळो अत्र भागं रायस्पोषं यजमानेषु धेहि ॥१९॥

ऋग्वेद १०।१७।९

(यज्ञम् अभि-नक्षमाणाः) यज्ञ को प्राप्त होते हुए, (पितरः) गृहस्थ जन (यां) जिस (सरस्वतीं) वेदज्ञान युक्त विदुषी को (दक्षिणा) दक्षिण भाग में (हवन्ते) स्वीकार करते हैं। वह तू (अत्र) हे विदुषि! इस लोक में, (सहस्र-अर्घम्) सहस्रों प्रकार से पूज्य, उपयोगी, (इडःभागं) अन्न के सेवनीय भाग और (सहस्रार्घं रायः पोषम्) सहस्रों गुणा धन की वृद्धि (यजमानेषु धेहि) यज्ञशील, दानी जनों में धारण करा।

श्री सूक्त

लक्ष्मी, धन, सम्पदा, ऐश्वर्य, समृद्धि, बल, तेज आदि को 'श्री' कहते हैं। धन का संचय करना पाप या अपराध नहीं। धन ! धर्म, सात्विक विचार और सुनीति से अर्जित किया जाय, पाप या छल-कपट से नहीं।

अन्यायोपार्जितं द्रव्यं दशवर्षाणि तिष्ठति।
प्राप्ते चैकादशे वर्षे समूलं च विनश्यति॥

चाणक्य नीति १५।६

"अनीति से अर्जित धन दस वर्ष तक खूब फलता-फूलता है, और ग्यारहवें वर्ष मूल सहित नष्ट हो जाता है।"

धन का संचय सुविचार के साथ ही करना उचित है। धन, यश और कीर्ति, सत्यता के साथ परिश्रम द्वारा अर्जित होने पर, स्थिर निधि का रूप ले लेती है, जो कभी समाप्त नहीं होती। इसलिए हम दरिद्रता नाश, लक्ष्मी, धन, सम्पदा, ऐश्वर्य समृद्धि, बल, तेज आदि की प्राप्ति के लिए इस सूक्त द्वारा प्रभु से प्रार्थना करते हैं।

ताम्र के हवन कुण्ड में नित्य प्रति, गूगल, सफेद चन्दन चूरा, देसी घी, बूरा, चीनी मिलाकर आम की समिधाओं से पति-पत्नी दोनों बैठकर अति श्रद्धा-भक्ति से। 'श्री सूक्त' से यज्ञ करें। एक सामग्री की आहुति दें दूसरा कमल के फूलों की लाल पत्तियों को घी में डुबोकर आहुति दें। एक वर्ष निरन्तर यज्ञ करें। शीघ्र ही धन संकट दूर होकर दरिद्रता का नाश होगा। कमल के फूलों की लाल पत्तियाँ इतना अधिक प्राप्त न हो सकें तो शेष घी की ही आहुति दिया करें।

सूक्त

वाजश्च मे प्रसवश्च मे प्रयतिश्च मे प्रसितिश्च मे धीतिश्च मे क्रतुश्च मे स्वरश्च मे श्लोकश्च मे श्रवश्च मे श्रुतिश्च मे ज्योतिश्च मे स्वश्च मे यज्ञेन कल्पन्ताम ।।१।।

यजुर्वेद १८।१

(यज्ञेन) प्रजापालन रूप सत्कर्म से (मे) मुझे राजा या प्रजा को (वाजा: च) अन्न, वीर्य और (प्रसव: च) ऐश्वर्य, (प्रयति:) साधन और (प्रसिति:) उत्कृष्ट राज्य प्रबन्ध, प्रेम, (धीति: च) उत्तम ध्यान या चिन्तन, (क्रतु: च) उत्तम कर्म और प्रज्ञान (स्वर: च) उत्तम स्वर, कण्ठ ध्वनि और (श्लोक: च मे) वाणी, (श्रव: च) उत्तम गुरु-उपदेश या अन्न, (श्रुति: च) श्रवण योग्य वेद, (ज्योति:) विद्या का प्रकाश और (स्व: च) सुख ये सब (मे) मुझे (यज्ञेन) उत्तम यज्ञ द्वारा (कल्पन्ताम्) प्राप्त हों।

प्राणश्च मे ऽ पानश्च मे व्यानश्च मे ऽसुश्च मे चित्तं च म ऽ आधीतं च मे वाक् च मे मनश्च मे चक्षुश्च मे श्रोत्रं च मे दक्षश्च मे बलं च मे यज्ञेन कल्पन्ताम् ।।२।।

यजुर्वेद १८।२

(मे) मुझे (प्राण: च) प्राण, जो शरीर में नाभि से ऊपर गति करता है, (अपान: च) अपान, जो नाभि से विचरता है, (व्यान: च) व्यान, शरीर की सब संधियों में व्यापक और मुख्य नाभिदेश में स्थित है, (असु: च) असु, नाग कूर्म आदि नाम वायु जो वमन आदि वेग करता, रोग-परमाणुओं को बल से बाहर फेंकता है, (चितं च) चित्त, स्मरण करने वाली शक्ति, (आधीतं च) निश्चयकारिणी बुद्धि, (वाक् च) वाणी (मन: च) संकल्प-विकल्प करने वाली शक्ति, (चक्षु: च) देखने वाली इन्द्रिये (श्रोत्रं च) कर्णेन्द्रिय, (दक्ष: च:) ज्ञानेन्द्रियों का बल और (बलं च) कर्मेन्द्रियों का कौशल (च च०) उदान, समान, धनंजय आदि अन्य वायुएँ धारण, श्रवण, अहंकार, प्रत्यक्ष प्रमाण सामयिक मान आदि पदार्थ भी (यज्ञेन) आत्म सामर्थ्य, ज्ञानाभ्यास और उपासना से (मे कल्पन्ताम्) मुझे प्राप्त हों।

ओजश्च मे सहश्च म ऽ आत्मा च मे तनूश्च मे शर्म च मे वर्म च मे ऽ ङ्गानि च मे ऽ स्थीनि च मे परू ँ षि च मे शरीराणि च म ऽ आयुश्च मे जरा च मे यज्ञेन कल्पन्ताम् ॥३॥

यजुर्वेद १८।३

(ओज: च) ओज, शरीर में स्थित तेजोमय धातु, (सहः च) शत्रु पराजय का बल, (आत्मा च) परमात्मा या इन्द्रियगण, (तनू: च) उत्तम दृढ़ शरीर (शर्म च) गृहोचित सुख, (वर्म च) शरीर रक्षक कवच, शस्त्रास्त्र, (अंगानि च) देह के अंग उपांग, (अस्थीनि च) छोटी-बड़ी समस्त अस्थियाँ (परूंषि च मे) अंगुली आदि पोरू, (शरीराणी च) शरीर के अन्य अवयव अथवा मेरे अन्यों के शरीर और सूक्ष्म देह, (आयुः च मे) पूर्णायु, (जरा च) वृद्धावस्था और यौवन आदि भी (यजेन) सत् कर्मानुष्ठान और परमेश्वर कृपा से (मे कल्पन्ताम्) मुझे प्राप्त हों।

ज्यैष्ठयं च म ऽ आधिपत्यं च मे मन्युश्च मे भामश्च मे ऽमश्च मे ऽम्भश्च मे जेमा च मे महिमा च मे वरिमा च मे प्रथिमा च मे वर्षिमा च मे द्राघिमा च मे वृद्धं च मे वृद्धिश्च मे यज्ञेन कल्पन्ताम् ॥४॥

यजुर्वेद १८।४

(मे) मुझे (ज्येष्ठयं च) बड़ाई, (आधिपत्यं च) अधिपति का पद, (मन्युः च) मानस, कोप, ज्ञान और आत्म-मान, (भाम: च) क्रोध, (अम: च) न्यायोचित प्राप्त गृह आदि पदार्थ, (अम्भः च) जल, शीतलता और गम्भीरता (जेमा च) विजय, (महिमा च) महत्व, (वरिमा च) श्रेष्ठता, (प्रथिमा च) विस्तृत क्षेत्र, राज्य आदि (वर्षिमा च) ज्ञान, अनुभव और पद की वृद्धि, (द्राघिमा च) दीर्घता, (वृद्धं च) बढ़ा हुआ बल, (वृद्धि: च) गुणों की उन्नति ये समस्त पदार्थ मेरे (यज्ञेन कल्पन्ताम्) सत्कर्म रूप यज्ञ से मुझे प्राप्त हों।

सदसस्पतिमद्भुतं प्रियमिन्द्रस्य काम्यम् ।
सनिं मेधामयासिष ँ स्वाहा ॥५॥

यजुर्वेद ३२।१३

(सदस:) सभा मण्डल के समान इस ब्रह्माण्ड के (पतिम्) पालक,

(अद्भुतम्) सर्वाश्चर्यकारी, (इन्द्रस्य) जीव के (काम्यम्) कामना योग्य, (प्रियम्) अति प्रिय (सनिम्) भजन करने योग्य, परम सेव्य (मेधाम्) अति पवित्र, मुझ आत्मा को अपने में धारण करने वाले परमेश्वर को (स्वाहा) उत्तम स्तुति से ही मैं (अयासिषम्) प्राप्त होऊँ।

इदं मे ब्रह्म च क्षत्रं चोभे श्रियमश्नुताम्।
मयि देवा दधतु श्रियमुत्तमां तस्यै ते स्वाहा ॥६॥

यजुर्वेद ३२।१६

(ब्रह्म च क्षत्रं च) ब्रह्म, ब्राह्मण विद्वान्जन और क्षत्रिय लोग (उभे) दोनों (मे) मेरे (श्रियम्) लक्ष्मी का (अश्नुताम्) उपभोग करें। (देवा:) देव, विद्वान्गण या दिव्य गुण (मयि) मुझमें (उत्तमां श्रियम्) उत्तम लक्ष्मी (दधतु) धारण करावें। (तस्यै ते स्वाहा) उस तुझ लक्ष्मी से मैं उत्तम यश को प्राप्त करूँ।

मनसः काममाकूतिं वाचः सत्यमशीय।
पशूना ँ रूपमन्नस्य रसो यशः श्रीः श्रयतां मयि स्वाहा ॥७॥

यजुर्वेद ३९।४

(मनसः) मननशील अन्त:करण की (कामम्) इच्छा और (आकूतिम्) अभिप्राय जतलाने की शक्ति और (वाचः) वाणी के (सत्यम्) सत्य भाषण को मैं (अशीय) प्राप्त करूँ। (पशूनाम्) पशुओं के (रूपम्) नाना प्रकार के (अन्नस्य) अन्न के (रस:) नाना सार रूप रस और (यशः श्री:) यश और ऐश्वर्य ये सब (मयि) मुझ पुरुष में (स्वाहा) उत्तम कर्म और वाणी से (श्रयताम्) आवें और स्थिर हों।

कया नश्चित्र ऽआ भुवदूती सदावृधः सखा।
कया शचिष्ठया वृता ॥८॥

यजुर्वेद ३६।४

वह (सदावृध:) सदा बढ़ने वाला अर्थात् कभी न्यूनता को नहीं प्राप्त हो (चित्र:) आश्चर्य रूप गुण कर्म स्वभावों से युक्त परमेश्वर (न:) हम लोगों का (कया) किस (ऊती) रक्षण आदि क्रिया से (सखा) मित्र (आ, भुवत्) होवे तथा (कया) किस (वृता) वर्तमान (शचिष्ठया) अत्यन्त उत्तम बुद्धि से हमको शुभ गुण कर्म स्वभावों में प्रेरणा करे।

अग्ने नय सुपथा राये ऽ अस्मान्विश्वानि देव वयुनानि विद्वान् ।
युयोध्यस्मज्जुहुराणमेनो भूयिष्ठान्ते नम ऽ उक्तिं विधेम ।।९।।

यजुर्वेद ५।३६

हे (अग्ने) ज्ञानवान् पुरुष ! राजन् ! हे (देव) विद्वान् ! तू (विश्वानि) समस्त (वयुनानि) प्रशस्त कर्मों और प्रजाओं को (विद्वान्) जानता हुआ (राये) ऐश्वर्य प्राप्त करने के लिए (अस्मान्) हमें (सुपथा) उत्तम मार्ग से (नय) ले चल और (अस्मत्) हमसे (जुहुराणम्) कुटिल (एनः) पाप को (युयोधि) दूर कर। (ते) तेरे लिए हम (भूयिष्ठाम्) बहुत-बहुत (नमः उक्तिम्) नमन वचन (विधेम) प्रयुक्त करें।

दिवो वा विष्ण ऽ उत वा पृथिव्या महो वा
विष्णऽउरोरन्तरिक्षात्। उभा हि हस्ता वसुना
पृणस्वा प्रयच्छ दक्षिणादोत सव्याद्विष्णवे त्वा ।।१०।।

यजुर्वेद ५।१९

हे (विष्णो) यज्ञरूप प्रजापते ! (दिवः) आकाश, विद्युत्, अग्नि से (उत वा महः) बड़ी भारी (पृथिव्याः) और पृथिवी से हे (विष्णो) परमेश्वर ! (उरोः) विशाल (अन्तरिक्षम्) अन्तरिक्ष से तू हमारे (उभा हस्ता हि) दोनों ही हाथों को (वसुना) ऐश्वर्य से (आ पृणस्व) पूर दे । (दक्षिणात्) दायें (उत) और (सव्याद्) बायें से भी तू हमें नाना प्रकार का धन (आ प्रयच्छ) प्रदान कर। हे परमेश्वर ! (त्वा) तेरी हम (विष्णवे) उपासना के निमित्त प्रार्थना करते हैं।

भूरिदा भूरि देहि नो मा दभ्रं भूर्या भर ।
भूरि घेदिन्द्र दित्ससि ।।११।।

ऋग्वेद ४।३२।२०

हे (इन्द्र) ऐश्वर्यवान् ! विद्वान् ! राजन्! प्रभो ! तू (च) निश्चय से (भूरि दित्ससि) बहुत-सा ऐश्वर्य हमें देना चाहता है। तू (भूरिदा) बहुत धन ज्ञानादि का दाता होकर (नः) हमें (भूरि देहि) बहुत दे, (मा दभ्रं) स्वल्प धन एवं पीड़ादायक धन को ही (मा इत्) मत दे। (भूरि आ भर) बहुत-बहुत ऐश्वर्य ज्ञान प्राप्त करा।

इन्द्रश्रेष्ठानि द्रविणानि धेहि चित्तिं दक्षस्य सुभगत्वमस्मे ।
पोषं रयीणामरिष्टिं तनूनां स्वाद्मानं वाचः सुदिनत्वमह्नाम् ।।१२।।

ऋग्वेद २।२१।६

हे (इन्द्र)ऐश्वर्यवन् ! प्रभो! राजन्! आप (अस्मे) हम में (श्रेष्ठानि) सर्वोत्तम (द्रविणानि) ज्ञान और धन बल वीर्य, (धेहि) धारण करो, प्रदान करो, (दक्षस्य) बल और क्रिया सामर्थ्यवान् पुरुष की (चित्तिम्) सुचित्तता, चेतना, सावधानता और (सुभगत्वम्) उत्तम ऐश्वर्य प्रदान कर। (रयीणां पोषं) ऐश्वर्यों की वृद्धि, (तनूनां अरिष्टिम्) शरीरों की रोगरहितता, और (वाचः स्वाद्मानं) वाणी की मधुरता वा जिह्वा के लिए उत्तम भोजन और (अन्हां सुदि नत्वम्) दिनों का सुदिन पन (धेहि) प्रदान कर।

भूर्भुवः स्वः । प्रजापते न त्वदेतान्यन्यो
विश्वा जातानि परिता बभूव ।
यत्कामास्ते जुहुमस्तन्नो अस्तु वयं
स्याम पतयो रयीणाम् ।।१३।।

ऋग्वेद १०।१२१।१०

हे (प्रजापते) प्रजाओं के पालक ! (त्वत् अन्यः) भिन्न (एतानि ता) इन उन अर्थात् पास और दूर के या अतीत और वर्तमान के (विश्वा जातानि) समस्त उत्पन्न पदार्थों (न परि बभूव) को नहीं तिरस्कार करता है अर्थात् तुझसे दूसरा कोई अध्यक्ष नहीं है। हे भगवन् ! (यत्-कामाः ते जुहुमः) जिस-जिस पदार्थ की अभिलाषा वाले होकर हम तेरी उपासना करें (तत् नः अस्तु) हमारी वह अभिलाषा पूर्ण हो, और (वयं) हम (रयीणां) ऐश्वर्यों के (पतयः) स्वामी (स्याम) हों।

श्रीश्च ते लक्ष्मीश्च पत्न्यावहोरात्रे पार्श्वे
नक्षत्राणि रूपमश्विनौ व्यात्तम् ।
इष्णन्निषाणामुं म ऽ इषाण सर्वलोकं म ऽ इषाण ।।१४।।

यजुर्वेद ३१।२२

हे परमेश्वर (श्रीः च) सबको आश्रय देने वाली और (लक्ष्मीः च)

सबमें तुझे व्यापक और शक्तिमान् दिखाने वालो, दोनों शक्तियाँ (ते) तेरी (पत्न्यौ) संसार को पालन करने हारी हैं। (अहोरात्रे पार्श्वे) सूर्य जब प्रत्यक्ष होता है तब दिन और जब नहीं प्रत्यक्ष हो तब रात्रि होती है, इसी प्रकार हे परमेश्वर ! तुम्हारे दो पार्श्व हैं। जब तुम साक्षात् होते हो तब हृदय में ज्ञान का प्रकाश हो जाना दिन के समान है। तामस आवरण से जब तुम प्रत्यक्ष नहीं होते तब रात्रि है। (नक्षत्राणि रूपम्) जैसे नक्षत्र सब सूर्य के रूप हैं, वैसे ही सब तेजोमय पदार्थ परमेश्वर के प्रतिरूप हैं।

ओ३म् सत्यं यशः श्रीर्मयि श्रीः श्रयतां स्वाहा ।।१५।।

हे परमेश्वर ! परम पुरुषार्थ से अर्जित सत्य कर्म, यश, सम्पत्ति और ऐश्वर्य आदि सब कुछ मुझ में विराजमान हो।

वाणिज्य सूक्त

वाणिज्य ! व्यापार को कहते हैं, व्यापार का प्रयोजन, कृषि एवं उद्योगों द्वारा उत्पादित वस्तुओं के आदान-प्रदान से है। अपनी उत्पादित वस्तुओं को सुदूर देश-देशान्तरों तक पहुँचाना और देश–देशान्तरों की उत्पादित वस्तुओं को अपने देश में लाकर अभाव को दूर करना, व्यापार का मुख्य लक्ष्य होता है। हमारी इस लक्ष्य में सदैव सात्विक वृत्ति के साथ प्रगति होती रहे। इस प्रकार की इस सूक्त में प्रभु से प्रार्थना की गई है।

सूक्त

इन्द्रमहं वणिजं चोदयामि स न ऐतु पुरएता नो अस्तु।
नुदन्नरातिं परिपन्थिनं मृगं स ईशानो धनदा अस्तु मह्यम् ॥१॥

अथर्ववेद ३।१५।१

(अहं) मैं व्यापार-व्यवसाय की वृद्धि चाहने वाला पुरुष (इन्द्रम्) ऐश्वर्यशाली धनी, (वणिजम्) व्यवहार और व्यापार में कुशल पुरुष को (चोदयामि) प्रेरणा करता हूँ कि (सः नः एतु) वह हमारे पास आवे और (नः पुरः-एता अस्तु) हमारे आगे-आगे चलने हारा, मुख्य पुरुष होकर रहे। वह (अरातिं) दान न करने या कर देने हारे शत्रु को (परिपन्थिनं) व्यापार के मार्ग और व्यवस्था के उल्लंघन करने वाले, या व्यापार के मार्ग में लूट और चोरी करने वाले, (मृगं) चोर पुरुष को (नुदन्) पीड़ित, दण्डित करता हुआ (सः ईशानः) वह सबका स्वामी होकर (मह्यम्) मुझे (धनदाः) धन का देने वाला (अस्तु) हो।

ये पन्थानो बहवो देवयाना अन्तरा द्यावापृथिवी संचरन्ति ।
ते मा जुषन्तां पयसा घृतेन यथा क्रीत्वा धन माहराणि ।।२।।

अथर्ववेद ३।१५।२

(ये) जो (बहव:) बहुत से (पन्थान:) मार्ग (देवयाना:) विद्वानों व्यवहार करने वालों के जाने के योग्य (द्यावापृथिवी अन्तरा) द्यौ= आकाश और पृथिवी के बीच में जल स्थल और आकाश में रथ, जलपोत और विमान द्वारा जाने के लिये बने हुए (संचरन्ति) नाना स्थानों पर जाते हैं। (ते) वे (मां) मुझे भी (पयसा) जल और (घृतेन) घी आदि पुष्टिकारक पदार्थों के साथ-साथ (जुषन्तां) प्राप्त हों (यथा) जिनसे मैं दूर देश में जाकर (क्रीत्वा) बहुत से पदार्थ खरीद कर (धनम्) बहुत-सा धन अपने देश में (आहराणि) ले आऊँ।

इध्मेनाग्न इच्छमानो घृतेन जुहोमि हव्यं तरसे बलाय ।
यावदीशे ब्रह्मणा वन्दमान इमां धियं शतसेयाय देवीम् ।।३।।

अथर्ववेद ३।१५।३

हे अग्ने ! जिस प्रकार (इच्छमान:) तुमको चाहने वाला या तुझ द्वारा यज्ञ करने का अभिलाषी मैं (घृतेन) घृत के साथ (हव्यं) आहवनीय पदार्थ को (इध्मेन) काष्ठ के संग (तरसे बलाय) दु:खों से पार हो जाने और बल प्राप्त करने के लिए (जुहोमि) आहुति देता हूँ, (यावद् ईशे) और जितना मैं कर सकता हूँ उतना (ब्रह्मणा वन्दमान:) वेद मन्त्रों से स्तुति करता हुआ यज्ञ करता हूँ (इमां) इस (देवीम्) दिव्यगुणयुक्त, उत्तम शुभ (धियं) धारणावती बुद्धि को भी पुष्ट करता हूँ कि मुझे (शतसेयाय) अपरिचित सैकड़ों धन प्राप्त हों।

इमामग्ने शरणि मीमृषो नो यमध्वानमगाम दूरम्
शम् नो अस्तु प्रपणो विक्रयश्च प्रतिपण: फलिनं माकृणोतु ।
इदं हव्यं संविदानौ जुषेथां शुनं नो अस्तु चरितमुत्थितं च ।।४।।

अथर्ववेद ३।१५।४

हे (अग्ने) परमात्मन् या साक्षिन् ! जामिन् ! दोनों के बीच के मध्यस्थ पुरुष (इमाम्) इस (न:) हमारी (शरणिम्) पीड़ा, थकान को

(मोमृषः) सहन कर। (यम्) जिस (अध्वानं) मार्ग को हम (दूरम्) दूर तक (अगाम) जा चुके हैं और (नः) हमारा (प्रपणः) अपने पदार्थ को दूसरे के हाथ बेचने के लिए उसका भाव दर नियत करना और (विक्रयश्च) उसको दूसरे के हाथ बेच देना और (प्रतिपणः) दूसरे के पदार्थ को स्वयं प्राप्त करने के लिए दर नियत करना, ये सब व्यवहार (नः) हमारे लिए (शुनं) शुभ, सुखकारी या अतिशीघ्र (अस्तु) हो जायें। यह सब व्यवहार (मां) मुझको (फलिनं) बहुत फल, लाभ प्राप्त करने में समर्थ (कृणोतु) करे। मध्यस्थ कहता है कि–हे व्यवहार, व्यापार करने वाले व्यापारियो! तुम दोनों (इदं हव्यं) इस लेन-देन के पदार्थ को (संविदानौ) खूब अच्छी प्रकार से परस्पर सलाह करके (जुषेथां) प्राप्त करो जिससे (नः) हमारा (चरितम्) यह किया हुआ व्यापार, या चालान किया गया माल और (उत्थितं च) उठाया हुआ लाभ भी (नः शुनं अस्तु) हमें सुखकारी हो।

येन धनेन प्रपणं चरामि धनेन देवा धनमिच्छमानः।
तन्मे भूयोभवतु मा कनीयोऽग्ने सातघ्नो देवान् हविषा निषेध।५।

अथर्ववेद ३।१५।५

मैं व्यापारी (धनेन) धन से (धनम्) धन को (इच्छमानः) चाहता हुआ, (देवाः) हे विद्वान् उत्तम पुरुषो! (येन धनेन) जिस धन से (प्रपणं चरामि) व्यापार, विनियम, लेनदेन का व्यवहार करता हूँ (तत्) वह (मे) मेरा (भूयः भवतु) बहुत अधिक हो जाय। (मा कनीयः) वह कमती न हो। हे (अग्ने) साक्षिन्! मध्यस्थ! या राजन्! (सातघ्नः) लाभ देने में प्रतिबन्धक (देवान्) अधिष्ठाता रूप शासक राजपुरुषों को भी (हविषा) उनकी हविः शुल्क दे करके (निषेध) बाधा डालने से रोक दो। अथवा (सातघ्नः देवाम्) प्राप्त धन को नाश करने वाले, मदकारी या प्रजापीड़क, क्रीड़ा, जुआ आदि में नाश करने वालों को (हविषा) उनसे लेने योग्य या उचित उपाय से रोक।

येन धनेन प्रपणं चरामि धनेन देवा धनमिच्छमानः।
तस्मिन् म इन्द्रो रुचिमा दधातु प्रजापतिः सविता सोमो अग्निः।६।

अथर्ववेद ३।१५।६

हे (देवाः) अधिकारी वर्गो! शासको! एवं विद्वान पुरुषो! (धनेन धनम् इच्छमानः) धन से और अधिक धन को प्राप्त करने की इच्छा

करता हुआ मैं (येन धनेन) जिस धन से (प्रपणं चरामि) व्यापार करता हूँ (तस्मिन्) उसमें (इन्द्रः) ऐश्वर्यशील परमेश्वर या वह राजा (मे) मेरी (रुचिम्) इच्छा और उत्साह को (प्रजापतिः) समस्त प्रजाओं का स्वामी (सविता) सबको उन्नति मार्ग पर प्रेरणा करने वाला (सोमः) सामवेद का विद्वान् (सविता) सबका प्रेरक (अग्निः) जो नेता हैं वे धन को (आ दधातु) और बढ़ावें।

उप त्वा नमसा वयं होतर्वैश्वानर स्तुमः।
स नः प्रजास्वात्मसु गोषु प्राणेषु जागृहि ॥७॥

अथर्ववेद ३।१५।७

हे (होतः) दान प्रतिदान करने वाले! और हे (वैश्वानर) समस्त पुरुषों में व्यापक! परमेश्वर! (त्वा) तेरी (नमसा) बड़े आदर से (उप स्तुमः) स्तुति करते हैं। (सः) वह तू (नः प्रजासु) हमारी प्रजाओं में, (आत्मसु) हमारे आत्माओं में (गोषु) हमारी ज्ञानेन्द्रियों और उनकी चेष्टाओं में और (प्राणेषु) कर्म इन्द्रियों में (जागृहि) तू सदा जागृत रहता है, तुझे साक्षी करके हम सब व्यवहार करें।

विश्वाहा ते सदमिद्भरेमाश्वायेव तिष्ठते जातवेदः।
रायस्पोषेण समिषा मदन्तो मा ते अग्ने प्रतिवेशा रिषाम ॥८॥

अथर्ववेद ३।१५।८

हे (जातवेदः) सर्वज्ञ परमात्मन् या विद्वान्! जिस प्रकार (तिष्ठते) खड़े हुए (अश्वाय इव) घोड़े के लिये घास दाना बराबर दिया ही जाता है इसी प्रकार (ते) तेरे नाम से भी (सदम् इत्) सदा ही (विश्वाहा) सब दिनों हम मर्यादा रूप से (भरेम) दान करें और हम (रायस्पोषेण) धनों और पुष्टिकारी पदार्थों से और (इषा) अन्नों से (सम् मदन्तः) खूब हृष्ट-पुष्ट होते हुए हे (अग्ने) परमात्मन् या विद्वान्! (ते प्रतिवेशाः) तेरे पड़ौसी बनकर, समीपतम रहकर हो (मा रिषाम) कभी क्लेशित न हों।

रक्षा कवच सूक्त

विश्वानि देव सवितर्दुरितानि परा सुव ।
यद्भद्रं तन्नऽआ सुव ॥१॥

यजुर्वेद ३०।३

हे (देव सवित:) सर्व प्रकाशक ! परमेश्वर ! (विश्वानि) सब प्रकार के (दुरितानि) दुष्ट आचरणों और बुरे व्यसनों को (परा सुव) दूर करो । (यद् भद्रम्) जो सुखदायक, कल्याणकारी है (तत्) उसे (न:) हमें (आसुव) प्राप्त कराइये ।

पाहि नो अग्ने रक्षसः पाहि धूर्तेरराव्णः ।
पाहि रीषत उत वा जिघांसतो बृहद्भानो यविष्ठ्य ॥२॥

ऋग्वेद १।३६।१५

हे (अग्ने) अग्रणी ! नायक! राजन् ! हे (वृहद्-भानो) विशाल तेजो विद्या, ऐश्वर्य आदि नाना प्रभावों वाले ! हे (यविष्ठ्य) हृष्ट-पुष्ट, जवान के समान सदा बलशालिन् ! हमें (रक्षस:) राक्षस दुष्ट पुरुषों से (पाहि) बचा । और तू (अराव्ण:) अदानशील अति कृपण (धूर्त:) विश्वासघाती, धूर्त्त, हिंसक पुरुष से भी (पाहि) बचा । (रीषत:) हिंसा करने वाले व्याघ्र आदि पशु और आक्रमणकारी पुरुष से (उत वा) और (जिघांसत:) हमें घात करने की इच्छा करने वाले से भी (पाहि) बचा ।

ऊर्ध्वो नः पाह्यंहसो नि केतुना विश्वं समत्रिणं दह ।
कृधी न ऊर्ध्वाञ्चरथाय जीवसे विदा देवेषु नो दुवः ॥३॥

ऋग्वेद १।३६।१४

हे राजन्! तू (ऊर्ध्वः) हमारे सबके सर्वोपरि पद पर स्थित होकर (नः) हमें (अंहसः) अधर्माचरण, पाप से (नि पाहि) रक्षा कर और (केतुना) ज्ञान तथा शासन द्वारा (विश्वम्) समस्त (अत्रिणम्) लूट पाट कर खाने वाले दुष्ट पुरुषों को (सम् दह) अच्छी प्रकार भस्म कर। (नः) हमें (चरथाय) धर्माचरण और (जीवसे) दीर्घ जीवन के प्राप्त करने के लिये (ऊर्ध्वान् कृधि) उत्तम बना, हमें भी ऊँचा कर। (देवेषु) विद्वानों के प्रति (नः) हमारे अन्दर (दुवः) उत्तम आचरण तथा सेवा भाव आदि (विदाः) उत्पन्न करा।

वयं जयेम त्वया युजा वृतमस्माकमंशमुदवा भरे भरे ।
अस्मभ्यमिन्द्र वरिवः सुगं कृधि प्र शत्रूणां मघवन्वृष्णया रुज ॥४॥

ऋग्वेद १।१०२।४

(इन्द्र) हे परमेश्वर! राजन्! सेनापते! (त्वया युजा) तुझ सहायक के साथ मिलकर (वयम्) हम लोग (जयेम) विजय लाभ करें। (भरे-भरे) प्रत्येक संग्राम के अवसर पर (अस्माकम्) हमारे (वृतम्) प्राप्त होने योग्य ग्राह्य (अंशम्) सेना के टुकड़ी को अथवा जन, वस्त्र, शस्त्र, कोष ऐश्वर्य आदि के हिस्से को तू (उत् अव) उत्तम रीति से सुरक्षित रख। (अस्मभ्यम्) हमारे लिये हे (इन्द्र) ऐश्वर्यवन्! तू (वरिवः) धन को (सुगं कृधि) सुगमता से प्राप्त होने योग्य कर और (शत्रूणां) हमारे कार्यों शरीर और मनोरथों के नाशक, बाधक शत्रुओं के (वृष्ण्या) बलों को हे (मघवन्) ऐश्वर्यवन्! (प्र रुज) अच्छी प्रकार तोड़ डाल।

मा नो वधीरिन्द्र मा परा दा मा नः प्रिया भोजनानि प्र मोषीः ।
आण्डा मा नो मघवञ्छक्र निर्भेन्मा नः पात्रा भेत्सहजानुषाणि ।५।

ऋग्वेद १।१०४।८

हे (इन्द्र) ऐश्वर्यवन्! राजन् (नः) हमें (मा वधीः) मत मार। (नः मा परा दाः) हमें त्याग मत। (नः) हमारे (प्रिया भोजनानि) प्रिय भोजनों और भोगने योग्य वस्तुओं को (मा प्र मोषीः) मत चुरा, हम से वह मत छीन और मत छिनने दे। हे (मघवन्) ऐश्वर्यवन् (शक्र) शक्तिशालिन्!

(नः आण्डा) हमारे गर्भंगत सन्तानों को (मा निर्भेत्) मत विनाश होने दे अर्थात् भय से व्यथित करके गर्भिणी स्त्रियों को दुःखित मत कर और मत होने दे। (नः) हमारे (सहजानुषाणि) सहोदर (पात्रा) कच्चे पात्रों के समान बल वाले, असमर्थ, पालन करने योग्य बालकों को (मा भेत्) मत विनष्ट कर अर्थात् गर्भगत और कच्ची आयु के बच्चों की रक्षा कर। हे परमेश्वर ! हमारे गर्भों को और (सहजानुषाणि) नाना जन्मोपार्जित कर्मों से युक्त (पात्राणि) पालन करने योग्य देहों को कच्चे घड़े के समान मत टूटने दे, उनकी पूर्ण रक्षा कर।

मा नो महान्तमुत मा नो अर्भकं मा न उक्षन्तमुत मा न उक्षितम्।
मा नो वधीः पितरं मोत मातरं मा नः प्रियास्तन्वो रुद्र रीरिषः।६।

ऋग्वेद १।११४।७

हे (रुद्र) दुष्टों को रुलाने वाले ! न्यायाधीश ! राजन् एवं रोगों को दूर करने वाले वैद्यजन ! तू (नः) हमारे में से (महान्तम्) विद्या और बल में बड़े का (मा वधीः) विनाश मत कर (नः अर्भकं मा वधीः) हममें से छोटे बालक को मत विनष्ट होने दे। (नः उक्षन्तं मा वधीः) हममें से वीर्य सेचन में समर्थ युवा पुरुष को नष्ट मत कर। (नः उक्षितम् मावधीः) हममें से जो जीव निषेक द्वारा गर्भाशय में स्थित है उनको नष्ट मत होने दे। (नः पितरं उत मातरम् वधीः) हमारे पिता और माता को मत मार (नः) हमारे (प्रियाः तन्वः) प्रिय शरीरों को (मा रीरिषः) मत पीड़ित होने दे।

मानस्तोके तनये मा न आयौ मा नो गोषु मा नो अश्वेषु रीरिषः।
वीरान्मा नो रुद्र भामितो वधीर्हविष्मन्तः सदमित्त्वा हवामहे ।।७।।

ऋग्वेद १।११४।८

हे (रुद्र) दुष्टों के रुलाने हारे राजन् तू (नः) हमारे (तोके तनये) पुत्र और पौत्र आदि सन्तति पर (मा रीरिषः) हिंसा प्रयोग मत कर। (नः आयौ मा) हमारे जीवन पर आघात मत कर। (नः गोषु नः अश्वेषु मा रीरिषः) हमारी गौओं और हमारे घोड़ों पर भी हिंसा का प्रयोग मत कर। उनको मत मार और दूसरों को मत मारने दे। (भामितः) क्रोध, मन्यु वाला उत्साही तू (नः) हममें से (वीरान्) वीरों को (मा वधीः) मत मार

हम (हविष्मन्त:) उत्तम अन्न उत्पन्न कर, तथा उत्तम कर्मों वाले होकर (त्वाम् सदम् इत्) तुझसे सदा ही (हवामहे) यह प्रार्थना करते हैं।

अग्निर्वृत्राणि जङ्घनद् द्रविणस्युर्विपन्यया।
समिद्धः शुक्र आहुतः ॥८॥

ऋग्वेद ६।१६।३४

जल जिस प्रकार (वृत्राणि जंघनत्) बढ़ते मेघों को प्राप्त करता है और जिस प्रकार (अग्नि:) सूर्य या विद्युत् (वृत्राणि जंघनत् मेघों पर प्रहार करता है। उसी प्रकार हे (शुक्र) शुद्ध कान्तिमन् ! शीघ्र कार्य करने हारे ! तेजस्विन् ! कार्यकुशल ! तू (समिद्ध:) खूब प्रदीप्त, तेजस्वी और (आहुत:) आहुति प्राप्त अग्नि के तुल्य प्रजाजनों द्वारा संवर्धित, पुष्ट और आदर सत्कार पाकर तथा (आहुत:) शत्रुओं द्वारा ललकारा जाकर (विपन्यया) विशेष व्यवहार कुशल वार्ता वाणी से (द्रविणस्यु:) धन की कामना करता हुआ (वृत्राणि जंघनत्) धनों को प्राप्त करे और विघ्नकारी दुष्ट पुरुषों का नाश करे।

बृवदुक्थं हवामहे सृप्रकरस्नमूतये ।
साधु कृण्वन्तमवसे ॥९॥

ऋग्वेद ८।३२।१०

हम लोग (बृहदुक्थम्) वेदवाणी के उत्तम् वचन जानने हारे (ऊतये) रक्षा के लिये (सृप्रकरस्नम्) आगे बढ़े बाहु वाले, दोनों को हाथ बढ़ाकर बचाने वाले और (साधु कृण्वन्तम्) उत्तम काम करने वाले, पुरुष को (अवसे) रक्षा के निमित्त (हवामहे) प्रार्थना करें।

दधामि ते मधुनो भक्षमग्रे हितस्ते भागः सुतो अस्तु सोमः ।
असश्च त्वं दक्षिणतः सखा मेऽधा वृत्राणि जङ्घनाव भूरि ॥१०॥

ऋग्वेद ८।१००।२

हे ऐश्वर्यवन् ! (ते) तेरे दिये (मधुन: भक्षम्) मधुर अन्न को भोग्य फल को मैं (अग्रे दधामि) आगे लक्ष्य रूप से रखता हूँ और (ते भाग:) तेरा भाग (सुत: सोम: ते हित: अस्तु) उत्पादित ऐश्वर्य सब तेरा ही दिया, तेरे ही अर्पण हो और तू (च मे) यदि मेरा (दक्षिणत: सखा अस:) दायें और

सबसे बड़ा, प्रवल सखा हो, (अथ) तो तू और मैं दोनों मिलकर (भूरि वृत्राणि) बहुत से विघ्नों को (जंघनाव) विनाश करें। ईश्वर ही सबसे बड़ा सहायक है उसके बिना विघ्नों का नाश असम्भव है।

अग्नेः पूर्वे भ्रातरो अर्थमेतं रथीवाध्वानमन्वावरीवुः ।
तस्माद्भिया वरुण दूरमायं गौरो न क्षेप्नोरविजे ज्यायाः ॥११॥

ऋग्वेद १०।५१।६

(रथी इव अध्वानम्) रथी जिस प्रकार मार्ग को तय करता है उसी प्रकार(अग्नेः भ्रातरः) अग्निरूप आत्मा को धारण करने वाले (पूर्वे)पूर्व के विद्वान जन (एतम् अर्थम्) उस प्राप्तव्य सन्मार्ग पर(अनु आवरीवुः) एक के पीछे एक चलते रहते हैं। परन्तु हे (वरुण) सर्वश्रेष्ठ प्रभो ! मैं तो (भिया दूरम् आयम्) भय से दूर आ चुका हूँ, मेरा कोई साथी नहीं रहा, मैं किसके पीछे जाऊँ ? (तस्मात्) इसलिये (क्षेप्नोः ज्यायाः गौरः न) धनुषधारी की डोरी से भयभीत मृग के समान (अविजे) बहुत ही घबराया हुआ हूँ।

इन्द्र ब्रह्म मघवन्त्वावदिद्भुज इह स्तुतः सुतपा बोधि नो वृधे ।
देवेभिर्नः सविता प्रावतु श्रुतमा सर्वतातिमदितिं वृणीमहे ॥१२॥

ऋग्वेद १०।१००।१

हे (इन्द्र) ऐश्वर्यवन् प्रभो ! हे (मघवन्) धनयुक्त ! तू (भुजे) पालन करने के लिये (त्वावत् इत् ब्रह्म) तुझ जैसे अविनाशी जीवात्मा को दृढ़ कर उसको बल दे। (स्तुतः) स्तुति किया गया (सुत पाः) उपासक की पुत्रवत् रक्षा करने हारा होकर(सः वृधे बोधि) वह तू हमारी वृद्धि के लिए सदा जान और हमें भी ज्ञान दे। तू (सविता) सबका उत्पादक और प्रेरक प्रभु (देवेभिः) वीरों और इन्द्रियों द्वारा (नः) हमारी (प्र अवतु) अच्छी प्रकार रक्षा कर। हम (श्रुतम्) गुरु-उपदेश द्वारा श्रवण करने योग्य (सर्वतातिम्) सब जगत् के विस्तारक (अदितिम्) अखण्ड, प्रभु को (आ वृणीमहे) सब प्रकार से वरण करते हैं। उसे चाहते हैं।

अप प्राच इन्द्र विश्वाँ अमित्रानपापाचो अभिभूते नुदस्व ।
अपोदीचो अप शूराधराच उरौ यथा तव शर्मन्मदेम ॥१३॥

ऋग्वेद १०।१३१।१

हे (इन्द्र) हे ऐश्वर्यवम् ! प्रभो ! (विश्वान् प्राचः शत्रून्) समस्त

अभिमुख आये प्रजा-नाशकारी शत्रुओं को (अप नुदस्व) दूर कर। हे (अभिभूते) शत्रुओं को पराजित करने वाले! तू (अपाचः शत्रून् अप नुदस्व) पीछे से आने वाले शत्रुओं को दूर कर। (उदीचः अप) ऊपर से जाने वाले को दूर हटा। हे (शूर) शूरवीर (अध रायः अप) नीचे से आने वालों को दूर कर। (यथा) जिससे (तव उरौ शर्मन् मदेम) तेरी बड़ी भारी सुखप्रद शरण में हम हर्ष लाभ करें।

अभी षुणः सखो नामविता जरितॄणाम्।
शतं भवास्यूतये ॥१४॥

यजुर्वेद २७।४१

हे इन्द्र राजन्! तू (अभि) साक्षात् (नः) हम (सखीनाम्) मित्रों और (जरितॄणाम्) उपदेश करने हारे विद्वान् पुरुषों का (सु-अविता) उत्तम रक्षक है और (ऊतये) रक्षा करने के लिये भी तू (शतम्) सैकड़ों प्रकार से समर्थ (भवासि) हो जाता है।

यतो यतः समीहसे ततो नो ऽ अभयं कुरु।
शं नः कुरु प्रजाभ्यो ऽ भयं नः पशुभ्यः ॥१५॥

यजुर्वेद ३६।२२

हे भगवन्! राजन्! ईश्वर! तू (यतः यतः समीहसे) जिस-जिस कारण से जिस-जिस स्थान और कर्म से (सम् ईहसे) चेष्टा करे (ततः नः अभयं कुरु) वहाँ-वहाँ से तू (नः) हमें भय रहित कर। (नः प्रजाभ्यः शं कुरु) हमारी प्रजाओं के लिये शान्ति प्रदान कर (नः पशुभ्यः) हमारे पशुओं के लिए (अभयम् कुरु) अभय प्रदान कर।

यत इन्द्र भयामहे ततो नो अभयं कृधि।
मघवञ्छग्धि तव त्वं न ऊतिभिर्वि द्विषो वि मृधो जहि ॥१६॥

अथर्ववेद १९।१५।१

हे (इन्द्र) ऐश्वयवन् राजन्! या प्रभो! हम (यतः) जिससे (भयामहे) भय करें (ततः) उससे (नः) हमें (अभयं कृधि) अभय कर। हे (मघवन्) समस्त ऐश्वर्यों के स्वामिन्! (त्वम्) तू ही

(शग्धि) ऐसा करने में समर्थ है। तू ही (तव ऊतिभिः) अपने रक्षाकारी उपायों से (द्विषः) द्वेष करने वाले और (मृधः) हिंसाकारी शत्रुओं को (वि वि जहि) विशेष रूप से और विविध उपायों से विनाश कर।

इन्द्रं वयमनूराधं हवामहे ऽ नु राध्यास्म द्विपदा चतुष्पदा।
मा नः सेना अररुषीरुप गुर्विषूचीरिन्द्र द्रुहो वि नाशय ॥१७॥

अथर्ववेद १६।१५।२

(वयम्) हम (अनु-राधम्) आराधना करने योग्य या कार्य सिद्ध करने हारे (इन्द्रम्) इन्द्र की (हवामहे) स्तुति करते हैं। हम (द्विपदा) दो पाये स्त्री पुरुष (चतुष्पदा) चार पाँओं वाले पशुओं से (अनु राध्यास्म) सुखपूर्वक समृद्ध होते रहें। (अररुषीः) अनुदार (सेनाः) सेनायें (नः) हम तक (मा उप गुः) न पहुँचे। हे (इन्द्र) राजन्! (विषूचीः) सब प्रकार की (द्रुहः) द्रोह करने वाली सेनाओं को (विनाशय) विनाश कर।

इन्द्रस्त्रातोत वृत्रहा परस्फानो वरेण्यः।
स रक्षिता चरमतः स मध्यतः स पश्चात्
स पुरस्तान्नो अस्तु ॥१८॥

अथर्ववेद १६।१५।३

(वृत्रहा इन्द्रः) घेरने वाले शत्रु का नाशक राजा (त्राता) प्रजा का रक्षक है, (उत) और वही (परस्फानः) शत्रुओं से प्रजा की रक्षा करने वाला (वरेण्यः) सबके वरण करने योग्य है। (सः) वही (चरमतः) अन्त में (सः मध्यतः) वही बीच में, (सः पश्चात्) वही पीछे से (सः पुरस्तात) वही आगे से भी (नः रक्षिता) हमारा रक्षक (अस्तु) हो।

उरुं नो लोकमनु नेषि विद्वान्त्स्व१र्यज्ज्योतिरभयं स्वस्ति।
उग्रा त इन्द्र स्थविरस्य बाहू उप क्षयेम शरणा बृहन्ता ॥१६॥

अथर्ववेद १६।१५।४

हे (इन्द्र) ऐश्वर्यवन् राजन्! तू (नः) हमें (उरुं लोकं नेषि) विशाल देश में ले जा (यत्) जहाँ (स्वः) सुखमय, प्रकाशमय, (ज्योतिः) सूर्य का प्रकाश और (अभयम्) अभय, (स्वस्ति) कल्याण हो। हे राजन्! (स्थविरस्य) युद्ध में स्थिर रहने वाले (ते) तेरी (बाहू) बड़ी बाहुओं को ही (शरणा) आश्रय स्थान मानकर (उप क्षयेम) सुख से रहें।

अभयं नः करत्यन्तरिक्षमभयं द्यावापृथिवी उभे इमे ।
अभयं पश्चादभयं पुरस्तादुत्तरादधरादभयं नो अस्तु ॥२०॥

अथर्ववेद १९।१५।५

(अन्तरिक्षम्) वातावरण (नः) हमें (अभयं करति) अभय प्रदान करे। (इमे उभे द्यावापृथिवी) ये दोनों आकाश और पृथिवी (अभयं करतः) अभय करें। (पश्चाद् अभयम्) पीछे से या पश्चिम से भय न रहे। (अभयं पुरस्तात्) आगे से या पूर्व से अभय हो। (उत्तरात् अधरात्) ऊपर से और नीचे से अथवा उत्तर और दक्षिण से (नः अभयम् अस्तु) हमें अभय हो।

अभयं मित्रादभयममित्रादभयं ज्ञातादभयं परोक्षात् ।
अभयं नक्तमभयं दिवा नः सर्वा आशा मम मित्रं भवन्तु ॥२१॥

अथर्ववेद १९।१५।६

(मित्रात् अभयम्) मित्र से भय न रहे, (अमित्रात् अभयम्) शत्रु से भय न रहे। (ज्ञातात् अभयम्) जाने हुए पुरुष से भय न रहे। (ये पुरः) और जो अनजान हमारे सामने आ जायं उससे भी (अभयम्) भय न रहे। (नक्तम् अभयम्) रात को अभय रहे। (दिवा अभयम्) दिन को भय न रहे। (सर्वाः आशाः) समस्त दिशाएँ (मम मित्रं भवन्तु) मेरे मित्र होकर रहें।

शान्ति सूक्त

शान्ता द्यौः शान्ता पृथिवी शान्तमिदमुर्व१न्तरिक्षम् ।
शान्ता उदन्वतीरापः शान्ता नः सन्त्वोषधीः ॥१॥

अथर्ववेद १९।९।१

(द्यौः शान्तम् अस्तु) आकाश शान्तिदायक हो, (पृथिवी शान्ता) पृथिवी शान्तिदायक हो। (इदम् उरु अन्त-रिक्षम्) यह विशाल अन्तरिक्ष (शान्तम्) शान्तिदायक हो। (उदन्वतीः आपः) समुद्र के जल भी (शान्तः) शान्तिदायक हों। (नः) हमारे लिये (ओषधीः) औषधियें (शान्ताः) शान्तिदायक हों।

शान्तानि पूर्वरूपाणि शान्तं नो अस्तु कृताकृतम् ।
शान्तं भूतं च भव्यं च सर्वमेव शमस्तु नः ॥२॥

अथर्ववेद १९।९।२

(पूर्व-रूपाणि) उपद्रवों और रोगों के पूर्व रूप हमारे लिये (शान्तानि) शान्तिदायक हों। (नः) हमारे (कृत-अकृतम्) किये कार्य और प्रमादवश न किये हुए आवश्यक कर्त्तव्य कार्य भी (नः) हमें (शान्तम् अस्तु) शान्तिदायक हों। (भूतं भव्यं च शान्तम्) अतीतकाल और भविष्यत्काल दोनों भी हमें सुखप्रद हों। (नः) हमारे लिये (सर्वम् एव) सब ही (शम्) शान्तिदायक हों।

इयं या परमेष्ठिनी वाग् देवी ब्रह्मसंशिता ।
ययैव ससृजे घोरं तयैव शान्तिरस्तु नः ।।३।।

अथर्ववेद १९।९।३

(या) जो (इयम्) यह (परमेष्ठिनी) सर्वोपरि विद्यमान परमेश्वर में स्थित (वाग् देवी) वाणीरूप दिव्य शक्ति (ब्रह्म-संशिता) ब्रह्मवर्चस या ब्रह्मचर्य के बल से अति बलवती है, (यया एव) जिससे ही (घोरम्) क्रोध आदि भयानक कार्य (ससृजे) किये जा सकते हैं, (तया एव) उससे ही (नः) हमें (शान्तिः) सुख प्राप्ति (अस्तु) हो ।

इदं यत् परमेष्ठिनं मनो वां ब्रह्मसंशितम् ।
येनैव ससृजे घोरं तेनैव शान्तिरस्तु नः ।।४।।

अथर्ववेद १९।९।४

(यद्) जो (इदम्) यह (ब्रह्म संशितम्) ब्रह्मज्ञान और ब्रह्मचर्य के बल से तीक्ष्ण होकर (परमेष्ठिनम्) परम स्थान में स्थित (वां मनः) हे स्त्री पुरुषो ! तुम दोनों का मन है, (येन एव) जिससे ही (घोरं ससृजे) घोर, क्रूरकर्म भी किये जा सकते हैं, (तेन एव नः शान्तिः अस्तु) उससे ही हमें शान्ति सुख प्राप्त हो ।

इमानि यानि पञ्चेन्द्रियाणि मनः षष्ठानि
मे हृदि ब्रह्मणा संशितानि ।
यैरेव ससृजे घोरं तैरेव शान्तिरस्तु नः ।।५।।

अथर्ववेद १९।९।५

(इमानि यानि) ये जो प्रत्यक्ष रूप से प्राप्त (मनः षष्ठानि) छठे मन सहित (पञ्च इन्द्रियाणि) पांच ज्ञानेन्द्रिय (ब्रह्मणा) ब्रह्मचर्य के बल से (संशितानि) अति उत्तम रूप से खूब तीक्ष्ण होकर (मे हृदि) मेरे हृदय में आश्रित हैं, (यैः एव घोरम् ससृजे) जिनके द्वारा घोर कार्य भी किया जाता है (तैः एव) उनसे ही (नः शान्तिः अस्तु) हमें शान्ति प्राप्त हो ।

शं नो मित्रः शं वरुणः शं विष्णुः शं प्रजापतिः ।
शं न इन्द्रो बृहस्पतिः शं नो भवत्वर्यमा ॥६॥

अथर्ववेद १९।९।६

(नः) हमें (मित्रः) सबका स्नेही, सबको मरण से त्राण करने वाला पुरुष (शम्) शान्तिदायक हो। (वरुणः) सर्व श्रेष्ठ, सबके वरण करने योग्य, एवं सब शत्रुओं का वारक पुरुष (शम्) कल्याणकारी हो।(विष्णुः) सर्वत्र प्रभुता से सम्पन्न या व्यवस्थापक पुरुष हमें शान्तिदायक हो। (प्रजापतिः शम्) प्रजा का पालक पुरुष भी शान्तिदायक हो। (बृहस्पतिः) वाणी का पालक ऐश्वर्यवान् पुरुष, (अर्यमा) और न्यायकारी पुरुष ये सब (शम्) सदा हमें सुख प्रदाता (भवतु) हों।

शं नो मित्रः शं वरुणः शं विवस्वाञ्छमन्तकः ।
उत्पाताः पार्थिवान्तरिक्षाः शं नो दिविचरा ग्रहाः ॥७॥

अथर्ववेद १९।९।७

(मित्रः) सबका स्नेही, सबका मरण से त्राता, (वरुणः) सर्व श्रेष्ठ, सबके वरण करने योग्य, सब दुःखों का वारक, (शम् शम्) सुखकारी, शान्तिदायक हो। (विवस्वान् शम्) विविध वस्तुओं या जीवों को प्राण देकर बसाने वाला या विविध ऐश्वर्यों का स्वामी, पुरुष या सूर्य या परमेश्वर (शम्) शान्ति प्रदान करे। (अन्तकः) अन्त करने वाला मृत्यु हमें (शम्) शान्ति दे। (पार्थिव-अन्तरिक्षा) पृथिवी और अन्तरिक्ष में होने वाले (उत्पाताः) नाना उपद्रव और (दिवि-चरा) आकाश में विचरने वाले ग्रह धूमकेतु उल्का आदि भी अपने आकर्षण विकर्षण आदि द्वारा (नः शम्) हमें शान्तिदायक हों।

शं नो भूमिर्वेप्यमाना शमुल्का निर्हतं च यत् ।
शं गावो लोहितक्षीराः शं भूमिरव तीर्यतीः ॥८॥

अथर्ववेद १९।९।८

(वेप्यमाना भूमिः शम्) भूचाल में कांपती हुई भूमि (नः) हमारे लिये (शम्) सुखकारी हो। (उल्का) आकाश से भूमि पर गिरने वाले लघुग्रह (शम्) शान्तिदायक हों और (यत् निर्हतम्) जो भी वेग से पृथ्वी पर आकर गिरें वह भी हमें शान्तिदायक हों (गावः)

गौएं जो (लोहितक्षीराः) रोग के कारण रुधिर के समान दूध देती हों वे भी (शम्) शान्ति दें और (अव तीर्यतीः) फट जाने वाली (भूमिः) भूमि भी (शम्) शान्तिकारी हो ।

नक्षत्रमुल्काभिहतं शमस्तु नः शं नोऽभिचाराः शमु सन्तु कृत्याः ।
शं नो निखाता वल्गाः शमुल्का देशोपसर्गाः शमु नो भवन्तु ॥९॥

अथर्ववेद १९।९।९

(उल्का-अभिहतम्) उल्का से युक्त (नक्षत्रम्) नक्षत्र (नः शम् अस्तु) हमारे लिए कल्याणकारी हों। (अभिचाराः) हम पर किये गुप्त आक्रमण (नः शम्) हमारे लिए शान्त ही रहें। (कृत्याः) घातक क्रियायें भी (शम् उ सन्तु) शान्त ही रहें । (नि-खाताः) धोखा देकर गिरा कर मारने, या भीतर विस्फोटक द्रव्य भरकर उड़ा देने के लिए खोदे हुए स्थान, सुरंग (नः) हमारे लिए हानि रहित रहें। (वल्गाः) अन्य कपट और हिंसा के कार्य भी हमारे लिये शान्त रहें। (उल्कः) पृथ्वी पर उल्काओं का गिरना (शम्) शान्त हो । (देश उपसर्गाः) देश में उत्पन्न होने वाले संहारक उपद्रव (नः) हमारे लिये (शंउ भवन्तु) शान्त ही रहें, उत्पन्न ही न हों।

शं नो ग्रहाश्चान्द्रमसाः शंमादित्यश्च राहुणा ।
शं नो मृत्युर्धूमकेतुः शं रुद्रास्तिग्मतेजसः ॥१०॥

अथर्ववेद १९।९।१०

(चान्द्रमसाः) चन्द्रमा से सम्बद्ध या चन्द्रमा को ग्रहण करने वाले भूमि की छाया आदि (ग्रहाः) ग्रहण (नः शम्) हमें शान्ति दें। (राहुणा) प्रकाश के नाशक आवरण से युक्त (आदित्यः च) आदित्य भी (शम्) शान्ति दे । (मृत्युः) जनों के मृत्यु का कारण (धूम-केतुः) धूमकेतु (नः शम्) हमारे लिये हानि रहित रहें। (तिग्मतेजसः रुद्राः) तीक्ष्ण प्रकाश वाले, प्रजा को रुलाने वाले 'रुद्र' नामक केतु ग्रह अथवा प्राण अपान आदि ११ रुद्र भी (शम्) शान्त रहें, उत्पात न करें।

शं रुद्रः शं वसवः शमादित्यः शमग्नयः ।
शं नो महर्षयो देवाः शं देवाः शं बृहस्पतिः ॥११॥

अथर्ववेद १९।९।११

(रुद्राः शम्) पापों को रुलाने वाले 'रुद्र' रूप ३६ वर्ष के ब्रह्मचर्य

के पालक पुरुष हमारे लिए शान्तिदायक हों। (वसवः) वसु नामक २४ वर्ष के ब्रह्मचारी (शं) हमारे लिए कल्याणकारी हों। (आदित्याः) आदित्य ४८ वर्ष के ब्रह्मचारीगण हमें (शम्) सुख दें। (अग्नयः) अग्नि के समान तीक्ष्ण स्वभाव के पुरुष अथवा राजागण, क्षत्रियजन और अन्य विद्वान् लोग हमें (शम्) सुख दें। (देवाः) ज्ञान प्रकाशक, ज्ञानप्रद, तेजस्वी (महर्षयः) बड़े-बड़े मन्त्रार्थद्रष्टा ऋषिजन (नः शम्) हमारे लिये शान्तिदायक हों। (देवाः) विद्वान्गण और संसार के दिव्य पदार्थ (शं) शान्तिदायक हों। (वृहस्पतिः शम्) महान् लोकों का पालक परमेश्वर हमें शान्ति दे। अथवा (रुद्रः) रुद्र ११ = प्राण, अपान, व्यान, समान, उदान, नाग, कूर्म, कृकल, देवदत्त, धनञ्जय और जीव। वसु आठ = अग्नि, पृथिवी, वायु, अन्तरिक्ष, द्यौः, सूर्य, चन्द्र, नक्षत्र, और १२ आदित्य = १२ मास।

ब्रह्म प्रजापतिर्धाता लोका वेदः सप्तऋषयोऽग्नयः।
तैर्मे कृतं स्वस्त्ययनमिन्द्रो मे शर्म यच्छतु ब्रह्मा मे शर्म यच्छतु।
विश्वे मे देवाः शर्म यच्छन्तु सर्वे मे देवाः शर्म यच्छन्तु ॥१२॥

अथर्ववेद १९।९।१२

(ब्रह्म) महान् परमेश्वर (प्रजापतिः) प्रजा पालक राजा (धाता) सबका पोषक वायु, (लोकाः) समस्त लोक, (वेदाः) ज्ञानमय समस्त ऋग्, यजु;. साम, अथर्व वेद (सप्त ऋषयः) सात प्रकार की शरीरस्थ सात इन्द्रियें और (अग्नयः) पांचों ज्ञानेन्द्रियाँ (तैः) इन सब में मेरे लिए (स्वस्ति अयनम्) कल्याण का मार्ग (कृतम्) बना हो (इन्द्रः) परमेश्वर (मे) मुझे (शर्म यच्छतु) सुख प्रदान करे। (ब्रह्मा) वेदों के ज्ञाता ब्रह्मा (मे) मुझे (शर्म यच्छतु) सुख प्रदान करे। (विश्वे देवाः) समस्त विद्वान् (मे शर्म यच्छतु) मुझे सुख शान्ति दें। (सर्वे देवाः मे शर्म यच्छतु) समस्त दिव्य शक्तियाँ मुझे शान्ति प्रदान करें।

यानि कानि चिच्छान्तानि लोके सप्तऋषयो विदुः।
सर्वाणि शं भवन्तु मे शं मे अस्त्वभयं मे अस्तु ॥१३॥

अथर्ववेद १९।९।१३

(लोके) लोक में (सप्त ऋषयः) शरीरगत सातों इन्द्रियें और उनके द्वारा सूक्ष्म ज्ञान प्राप्त करने वाले विद्वान् ब्राह्मण (यानि कानिचित्)

जिन किन्हीं पदार्थों को भी (शान्तानि) शान्तिदायक (विदुः) जानें (सर्वाणि) वे सब (मे शं भवन्तु) मेरे लिये कल्याणकारी हों (मे शम् अस्तु) मुझे शान्ति प्राप्त हो, (अभयम् मे अस्तु) मुझे अभय प्राप्त हो।

पृथिवी शान्तिरन्तरिक्षं शान्तिर्द्यौः शान्तिरापः शान्तिरोषधयः
शान्तिर्वनस्पतयः शान्तिर्विश्वे मे देवाः शान्तिः
सर्वे मे देवाः शान्तिः शान्तिः शान्तिः शान्तिभिः।
ताभिः शान्तिभिः सर्वं शान्तिभिः शमयामोऽहं यदिह घोरं
यदिह क्रूरं यदिह पापं तच्छान्तं तच्छिवं सर्वमेव शमस्तु नः॥१४॥

अथर्ववेद १६।६।१४

(पृथिवी, अन्तरिक्षम्, द्यौः, आपः, ओषधयः, वनस्पतयः, विश्वे देवाः, सर्वे देवाः) पृथिवी, अन्तरिक्ष, द्यौ, जल, औषधियाँ, वनस्पति, बड़े वृक्ष, समस्त विद्वान लोग, सब दिव्यगुणवान् पदार्थ (मे) मेरे लिये (शान्तिः) शान्ति उत्पन्न करें। (शान्तिभिः) समस्त प्रकार की शक्तियों के साथ-साथ (शान्तिः) मेरी शान्तिमय आत्मा भी (शान्तिः) शान्ति रूप धारण करे। (ताभिः शान्तिभिः) उन शान्तियों से और अन्यान्य (सर्व शान्तिभिः) सब प्रकार के शान्ति-साधनों से (अहम्) हम लोग (शम् अयामः) शान्तिमय परम सुख को प्राप्त हों। (यत् इह घोरम्) जो पदार्थ इस लोक में (घोर) कष्टदायक हों (यत् इह क्रूरम्) जो यहाँ हिंसाजनक, त्रासोत्पदायक और (यत् इह पापम्) जो यहाँ पापी हों (तत् शान्तम्) वह शान्त हों। (तत् शिवम्) वह सब कल्याणकारी हों। (नः) हमारे लिए (सर्वम् एव) सब ही (शम् अस्तु) शान्तिदायक हों।

शं न इन्द्राग्नी भवतामवोभिः शं न इन्द्रावरुणा रातहव्या।
शमिन्द्रासोमा सुविताय शं योः शं न इन्द्रापूषणा वाजसातौ॥१५॥

अथर्ववेद १६।१०।१

(इन्द्र-अग्नी) राजा और सेनापति या प्राण और उदान (अवोभिः) रक्षा साधनों द्वारा (नः शम् भवताम्) हमें शान्तिदायक हों। (रात-हव्या) अन्न आदि उत्तम पदार्थ प्राप्त करके (इन्द्रा-वरुणा) वायु और मेघ, या राजा और दुष्टों का दमन करने हारा, या प्राण और व्यान (नः शम्) हमें सुख और शान्ति दें। (इन्द्र-सोमा) वायु और सूर्य, या राजा और

न्यायाधीश, या प्राण और समान (सुविताय) उत्तम सुख के लिये (शं योः) रोगों के शमन और भयों के दूर करने के लिये हों। (इन्द्र-पूषणा) वायु और अन्न या प्राण और अपान (वाजसातौ) बल और वीर्य के प्राप्त करने के कार्य में (नः शम्) हमें शान्तिदायक हों।

शं नो भगः शमु नः शंसो अस्तु शं नः पुरंधिः शमु सन्तु रायः।
शं नः सत्यस्य सुयमस्य शंसः शं नो अर्यमा पुरुजातो अस्तु ॥१६॥

अथर्ववेद १९।१०।२

(भगः) ऐश्वर्यवान् परमेश्वर अथवा धनाढ्य लोग (नः शम्) हमें शान्ति सुख दें। (शंसः नः शम्) उत्तम उपदेश करने हारा शास्त्रवक्ता अथवा प्रशंसनीय परमेश्वर (नः शम् उ) हमें सुख शान्ति दे। (पुरन्धिः) नगर का धारण करने वाला पुरुष, या (पुरं-धिः) देह को धारण करने वाली बुद्धि, अथवा पूर्ण ब्रह्माण्ड को धारण करने वाला परमेश्वर, (नः शम्) हमें शान्ति सुख दे। (रायः) समस्त ऐश्वर्य (शम् उ सन्तु) हमें शान्तिदायक हों। (सु-यमस्य) उत्तम रूप से संयम करने वाले (सत्यस्य) सत्य स्वरूप परमेश्वर का (शंसः) भजन-कीर्त्तन (नः शम्) हमें शान्ति दे। (पुरु-जातः) बहुत से प्रजाजनों में सबकी सहमति से बनाया गया (अर्यमा) न्यायकारी पुरुष (नः शम् अस्तु) हमें शान्तिदायक हो।

शं नो धाता शमु धर्ता नो अस्तु शं न उरूची भवतु स्वधाभिः।
शं रोदसी बृहती शं नो अद्रिः शं नो देवानां सुहवानि सन्तु ॥१७॥

अथर्ववेद १९।१०।३

(धाता) पालन-पोषण करने वाला परमेश्वर, या दुग्ध आदि से पुष्ट करने वाला पिता (नः शम्) हमें शान्ति सुखदायक हो। (धर्त्ता नः शम्) आश्रय प्रदाता परमेश्वर या संरक्षक हमें शान्तिदायक (अस्तु) हो। (उरूची) बहुत दूर तक फैली हुई पृथिवी (स्वधाभिः) अन्नों द्वारा (नः शम् भवतु) हमें सुखप्रद हो (बृहती) विशाल (रोदसी) पृथिवी और अन्तरिक्ष (शम्) हमें सुख दें। (अद्रिः) पर्वत और मेघ (नः शम्) हमें सुख दें। (देवानाम्) विद्वानों की (सु-हवानि) उत्तम स्तुतियों उत्तम ज्ञान और उत्तम उपदेश (नः शम् सन्तु) हमें सुखद और कल्याणकारी हो।

शं नो अग्निर्ज्योतिरनीको अस्तु शं नो मित्रावरुणावश्विना शम् ।
शं नः सुकृतां सुकृतानि सन्तु शं न इषिरो अभि वातु वातः ।।१८।।

अथर्ववेद १९।१०।४

(ज्योति: अनीक:) ज्वालाओं वाले मुख वाली (अग्नि:) आग या आग के समान ज्ञान–तेज को अपने मुख पर धारण करने वाला या अग्नि के समान ज्ञान–प्रकाशक ब्राह्मण, या ज्योर्तिमय तेजस्वी पुरुषों के सेना बल से युक्त सेनापति (न:) हमारे लिये (शम् अस्तु) कल्याणकारक हो। (मित्रावरुणौ) मित्र अर्थात् परस्पर स्नेह करने वाली घन और ऋण विद्युतें और वरुण अर्थात् स्वसमान विद्युत को परे वारण कर देने वाली घन और ऋण धारायें (न:) हमें (शम्) शान्तिदायक हों। (अश्विना) सूर्य रूप अश्व पर सदा आरूढ़ दिन और रात एवं देह रूप, रथ और इन्द्रिय रूप अश्वों पर आरूढ़ प्राण और अपान (शम्) शान्तिदायक हों। (सुकृताम्) सुन्दर कार्य करने वाले शिल्पियों के (सु-कृतानि) बनाये उत्तम प्रशंसनीय शिष्य के कार्य और पुण्यात्माओं के किये हुए उत्तम प्रशंसनीय परोपकार के कार्य (न:) हमें (शम्) शान्तिदायक (सन्तु) हों। (इषिर:) निरन्तर गतिशील (वात:) महान् वायु और देहों का प्रेरक प्राण वायु (न:) हमारे लिये (शम्) कल्याणकारी होकर (वातु) प्रवाहित हो।

शं नो द्यावापृथिवी पूर्वहूतौ शमन्तरिक्षं दृशये नो अस्तु ।
शं न ओषधीर्वनिनो भवन्तु शं नो रजसस्पतिरस्तु जिष्णुः ।।१९।।

अथर्ववेद १९।१०।५

(द्यावा पृथिवी) आकाश और भूमि (पूर्वहूतौ) सबसे पूर्व समस्त पदार्थ प्रदान करने में (न: शम्) हमें शान्तिदायक हों। (अन्तरिक्षम्) वातावरण भी (दृशये) हमारी दर्शन शक्ति के स्वतन्त्र व्यवहार, उपयोग के लिए (न: शम् अस्तु) हमें कल्याणकारी हो, अर्थात् अन्तरिक्ष स्वच्छ रहे कि हम दूर-दूर तक देख सकें। (ओषधी:) औषधियें (वनिन:) सेवन करने योग्य होकर (न: शं भवन्तु) हमें शान्तिदायक हों। (रजस: पति:) लोकों का पालक सूर्य और सूर्य के समान तेजस्वी (जिष्णु:) विजयशील राजा (न: शम् अस्तु) हमें शान्तिदायक हो।

शं न इन्द्रो वसुभिर्देवो अस्तु शमादित्येभिर्वरुणः सुशंसः ।
शं नो रुद्रो रुद्रेभिर्जलाषः शं नस्त्वष्टा ग्नाभिरिह श्रृणोतु ॥२०॥

अथर्ववेद १९।१०।६

(देवः) ऐश्वर्यवान् सूर्य (वसुभिः) प्राणियों को अपने में बसाने में समर्थ पृथिवी आदि लोकों सहित (नः शम्) हमें शान्तिदायक (अस्तु) हो, अथवा (देवः) राजा (इन्द्रः) ऐश्वर्यवान् होकर (वसुभिः) वसु विद्वान् शासकों के साथ हमें शान्तिदायक हो, या आत्मा वसुरूप प्राणों सहित हमें शान्तिदायक हो । (वरुणः) सबके वरण करने योग्य राजा (आदित्येभिः) आदित्य के समान तेजस्वी पुरुषों के साथ (सु-शंसः) उत्तम रीति से स्तुति करने योग्य होकर, या बारह मासों सहित सूर्य के समान (शम् अस्तु) हमें कल्याणकारी हो। (रुद्रः) सब दुष्टों को रुलाने वाला पुरुष सिंह (रुद्रेभिः) दुष्टों को रुलाने में समर्थ अन्य अधिकारियों सहित (जलाषः) सुखकारी होकर (नः शम्) हमें शान्तिदायक हो। (त्वष्टा) सर्वस्रष्टा परमेश्वर (ग्नाभिः) अपनी व्यापक दिव्य शक्तियों सहित (नः) हमारे लिए (शम्) शान्तिप्रद हो और (इह) इस लोक में हमारी सब प्रार्थनायें (श्रृणोतु) श्रवण करे।

शं नः सोमो भवतु ब्रह्म शं नः शं नो ग्रावाणः शमु सन्तु यज्ञाः ।
शं नः स्वरूणां मितयो भवन्तु शं नः प्रस्व१ः शम्वस्तु वेदिः ॥२१॥

अथर्ववेद १९।१०।७

(सोमः) वायु और सोम औषधि (नः शम् भवतु) हमें शान्तिदायक हो । (ब्रह्म) वेदज्ञान (नः शम्) हमें शान्तिदायक हो । (ग्रावाणः) उपदेशकर्त्ता गुरुजन (नः शम्) हमें शान्तिदायक हो, अथवा (ग्रावाणः) सिलबट्टे के समान शत्रुओं को पीसने वाले शस्त्रधारी पुरुष (नः शम्) हमारे लिए शान्तिदायक हों। (यज्ञाः उ शम् सन्तु) यज्ञ भी शान्तिदायक हों। (स्वरूणां) उपदेशप्रद मन्त्रों के (मितयः) ज्ञान करने वाले विद्वान्जन (नः शम्) हमारे लिए शान्तिदायक (भवन्तु) हों। (प्र-स्वः) नाना प्रकार से उत्पन्न होने वाली औषधियाँ या उत्कृष्ट पुत्रोत्पादक मातायें और गौएँ (नः शम्) हमें सुख दें। (वेदिः) यज्ञवेदि हमको (शम् अस्तु) शान्ति दे।

शं नः सूर्य उरुचक्षा उदेतु शं नो भवन्तु प्रदिशश्चतस्रः ।
शं नः पर्वताध्रुवयो भवन्तु शं नः सिन्धवः शमु सन्त्वापः ।।२२।।

अथर्ववेद १६।१०।८

(उरुचक्षाः) विस्तीर्ण तेज वाला (सूर्यः) सूर्य (नः शम्) हमें शान्तिदायक होकर उदित हो। (चतस्रः) चारों (प्रदिशः) मुख्य दिशाएँ (नः शं भवन्तु) हमें शान्तिदायक हों। (ध्रुवयः) स्थिर खड़े (पर्वताः) पर्वत (नः शं भवन्तु) हमें शान्ति सुख देने हारे हों। (सिन्धवः) वेग से बहने वाली नदियाँ और (आपः) अन्य नाना जल (नः शम्) हमें शान्तिदायक हों।

शं नो अदितिर्भवतु व्रतेभिः शं नो भवन्तु मरुतः स्वर्काः ।
शं नो विष्णुः शमु पूषा नो अस्तु शं नो भवित्रं शम्वस्तु वायुः ।२३।

अथर्ववेद १६।१०।६

(अदितिः) अखण्ड पृथिवी (व्रतेभिः) नाना व्रतों द्वारा (नः शम् भवतु) हमें शान्तिदायक हों। (स्वर्काः) उत्तम गति करने वाली (मरुतः) वायुएँ, प्राण और वैश्यजन (नः शम् भवन्तु) हमें शान्तिदायक हों। (विष्णुः) व्यापक परमेश्वर (नः शम्) हमें शान्तिदायक हो। (पूषा) पोषक अन्न (नः शम् उ) हमें शान्तिदायक हो। (भवित्रम्) यह उत्पत्ति स्थान भुवन हमें (शं नः अस्तु) शान्तिदायक हो। (वायुः शम् उ अस्तु) वायु हमें शान्तिदायक हो।

शं नो देवः सविता त्रायमाणः शं नो भवन्तूषसो विभातीः ।
शं नः पर्जन्यो भवतु प्रजाभ्यः शं नः क्षेत्रस्य पतिरस्तु शंभुः ।।२४।।

अथर्ववेद १६।१०।१०

(त्रायमाणः) सबका पालन करता हुआ (सविता) सर्वोत्पादक (देवः) प्रकाशक सूर्य (नः शम्) हमें शान्तिदायक हो। (विभातीः) विविध और विशेष रूप से प्रकाशित (उषसः) उषाएँ (नः शं भवन्तु) हमें शान्तिदायक हों। (पर्जन्यः) मेघ (नः) हमें (शं भवतु) शान्तिदायक हो। (क्षेत्रस्य पतिः) शरीर रूपी क्षेत्र का स्वामी आत्मा और प्रकृति का स्वामी परमेश्वर (नः शम् अस्तु) हमारे लिए शान्तिदायक हों।

शं नः सत्यस्य पतयो भवन्तु शं नो अर्वन्तः शमु सन्तु गावः ।
शं न ऋभवः सुकृतः सुहस्ताः शं नो भवन्तु पितरो हवेषु ।।२५।।

अथर्ववेद १६।११।१

(सत्यस्य पतयः) सत्य की रक्षा करने वाले, प्राड्विवाक और धर्माधिकारी आदि (नः) हमें (शम् भवन्तु) शान्तिदायक हों। (अर्वन्तः) शीघ्रगामी अश्व (नः शम्) हमें शान्तिदायक हों। (गावः) गौएँ (शम् उ सन्तु) हमें शान्ति सुख दें। (सुकृतः) उत्तम-उत्तम पदार्थ बनाने वाले (सुहस्ताः) शिल्प में सिद्धहस्त (ऋभवः) शिल्पीजन (नः शम्) हमें शान्ति प्रदान करें। (हवेषु) यज्ञों और युद्धों में (पितरः) राष्ट्र के रक्षक अधिकारी लोग (नः शम् भवन्तु) हमें शान्तिदायक हों।

शं नो देवा विश्वदेवा भवन्तु शं सरस्वती सह धीभिरस्तु ।
शमभिषाचः शमु रातिषाचः शं नो दिव्याः
पार्थिवाः शं नो अप्याः ।।२६।।

अथर्ववेद १६।११।२

(विश्व देवाः) विजयी व्यवहारों में निपुण (देवाः) विद्वान् लोग (नः शंभवन्तु) हमें शान्ति-सुखदायक हों। (सरस्वती) वाणी (धीभिःसह) नाना ध्यानगम्य विचारों और कर्मों सहित (शम् अस्तु) शान्तिदायक हो। (अभि-षाचः) चारों ओर से एकत्र होकर बिराजने वाले प्रतिनिधिगण (शम्) शान्तिदायक हों। (राति-वाचः) दक्षिणा के दान और प्राप्ति के लिए एकत्र होने वाले दाता और प्रतिग्रहीता (शम्) हमें शान्तिदायक हों। (दिव्याः) दिव्य प्रकाश से प्राप्त होने वाले पदार्थ (पार्थिवाः) और पृथिवी से उत्पन्न पदार्थ और (अप्याः) जल से उत्पन्न पदार्थ सब (नः शम्), हमें शान्तिदायक हों।

शं नो अज एकपाद् देवो अस्तु शमहिर्बुध्न्यः१शं समुद्रः ।
शं नो अपां नपात् पेरुरस्तु शं नः पृश्नर्भवतु देवगोपा ।।२७।।

अथर्ववेद १६।११।३

(एक पात्) शक्ति के एक-चतुर्थांश द्वारा चराचर जगत को धारण करने वाला (देवः) प्रकाशमय परमेश्वर (नः शम् अस्तु) हमें शान्तिदायक

हो। (अहिर्बुध्न्यः) जो कभी नाश नहीं होता, वह सर्वाधार परमेश्वर (शम्) शान्ति प्रदान करे। (समुद्र:) समस्त संसार की उत्पत्ति तथा लय का स्थान महा समुद्र रूप परमेश्वर (शम्) हमें शान्ति प्रदान करे। (पेरुः) समस्त दुःखों से पार उतारने हारा (अपां नपात्) आपोमय प्राणों को धारण करने वाला परमेश्वर (नः शम्) हमें शान्ति दे। (देवगोपाः) सूर्य आदि पृथिव्यादि पाँच भूत, दस इन्द्रियाँ, पांच प्राण आदि समस्त देवों का रक्षक (पृश्निः) समस्त रसों और ज्योतिर्मय पिण्डों का आश्रय, परमेश्वर (नः शम्) हमें शान्ति दे।

आदित्या रुद्रा वसवो जुषन्तामिदं ब्रह्म क्रियमाणं नवीयः।
शृण्वन्तु नो दिव्याः पार्थिवासो गोजाता उत ये यज्ञियासः ॥२८॥

अथर्ववेद १९।११।४

(इदम्) इस (नवीयः) नये से नये (क्रियमाणम्) बनाये गये (ब्रह्म) बृहत् जगत् को (आदित्याः) बारह मास, (रुद्राः) नाना वायुगण या प्राण, (वसवः) तथा जीवों के वास करने हारे लोक (जुषन्ताम्) पालन करें। (दिव्याः) दिव्य गुणों वाले (पार्थिवासः) पृथिवी के स्वामी राजा लोग और (गोजाता) वाणी में प्रसिद्ध मेधावी पुरुष (यज्ञियासः) तथा यज्ञ में विराजमान ऋत्विक्गण (नः) हमारे वचनों का (शृण्वन्तु) श्रवण करें।

ये देवानामृत्विजो यज्ञियासो मनोर्यजत्रा अमृता ऋतज्ञः।
ते नो रासन्तामुरुगायमद्य यूयं पात स्वस्तिभिः सदा नः ॥२९॥

अथर्ववेद १९।११।५

(ये) जो (देवानाम्) विद्वान् पुरुषों में से (ऋत्विजः) ऋतुओं में यज्ञ करने वाले, (यज्ञियासः) यज्ञों में पूजनीय, (मनोः) मननशील पुरुष के (यजत्राः) यज्ञ को करने वाले, (अमृताः) अमरणधर्मा, (ऋतज्ञाः) सत्य ज्ञान के जानने वाले हैं (ते) व (नः) हमें (उरु-गायम्) विशाल ज्ञानोपदेश (अद्य) निरन्तर (रासन्ताम्) प्रदान करें। हे विद्वान् पुरुषों! (यूयम्) आप लोग (स्वस्तिभिः) कल्याणकारक साधनों से (नः सदा पात) हमारी सदा रक्षा करें।

तदस्तु मित्रावरुणा तदग्ने शं योरस्मभ्यमिदमस्तु शस्तम् ।
अशीमहि गाधमुत प्रतिष्ठां नमो दिवे बृहते सादनाय ।।३०।।

अथर्ववेद १९।११।६

हे (मित्रावरुणा) मरण से बचाने वाले और (वरुणा) सर्वदुःखवारक प्राण और अपान, और हे (अग्ने) जाठर शक्ते ! (अस्मभ्यम्) हमें (तत्) नाना प्रकार के पदार्थ (शम्) शान्तिदायक और (योः) विपत्ति नाशक (अस्तु) हों । (इदम्) यह प्राप्त पदार्थ भी (शस्तम् अस्तु) प्रशस्त हो । हम (गाधम्) अभिलषित ऐश्वर्य और (प्रतिष्ठाम्) कीर्ति का (अशीमहि) लाभ करें और (बृहते) बड़ा भारी (सादनाय) आश्रय प्राप्त करने के लिए (दिवे) द्यौलोक के समान विशाल पृथिवी को (नमः) हम अपने वश करें ।

नमस्ते हरसे शोचिषे नमस्ते ऽ अस्त्वर्चिषे ।
अन्याँस्ते ऽ अस्मत्त पन्तुहेतयः पावको ऽ अस्मभ्य
ँ शिवो भव ।।३१।।

यजुर्वेद १७।११

हे राजन् ! (ते हरसे नमः) प्रजा के दुःखहारी तेरे तेज का हम आदर करते हैं । (ते शोचिषे) तेरे पवित्र तेजः स्वरूप और (अर्चिषे) सत्कार योग्य शस्त्र ज्वाला का (नमः) आदर करते हैं । (ते हेतयः) तेरी शस्त्र ज्वालायें (अस्मत् अन्यान्) हमसे भिन्न शत्रुओं को (तपन्तु) पीड़ित करें । तू (पावकः) रोग नाशक अग्नि के समान (अस्मभ्यं शिवः भव) हमारे लिये कल्याणकारी हो ।

नमस्ते ऽ अस्तु विद्युते नमस्ते स्तनयित्नवे ।
नमस्ते भगवन्नस्तु यतः स्वः समीहसे ।।३२।।

यजुर्वेद ३६।२१

(विद्युते ते नमः) विद्युत के समान तेजस्वी तुझे नमन है । (स्तनयित्नवे ते नमः) मेघ के समान गर्जन करने वाले तुझे नमन है । हे (भगवन्) ऐश्वर्यवन् राजन् एवं परमेश्वर ! (यतः स्वः समीहसे) क्योंकि तू ही समस्त प्राणियों को सुख देने के लिए समस्त व्यापार कर रहा है अतः (ते नमः अस्तु) तुझे सदा नमन हो ।

यतो यतः समीहसे ततो नो ऽअभयं कुरु ।
शं नः कुरु प्रजाभ्यो ऽभयं नः पशुभ्यः ।।३३।।

यजुर्वेद ३६।२२

हे भगवन् ! राजन् ! ईश्वर ! तू (यतः यतः) जिस-जिस कारण से जिस-जिस स्थान और कर्म से (सम् ईहसे) चेष्टा करे (ततः नः अभयं कुरु) वहाँ-वहाँ से तू हमें भयरहित कर। (नः प्रजाभ्यः शं कुरु) हमारी प्रजाओं के लिए शान्ति प्रदान कर (नः पशुभ्यः) हमारे पशुओं के लिए (अभयम् कुरु) अभय प्रदान कर।

पुरुष सूक्त

सहस्रशीर्षा पुरुषः सहस्राक्षः सहस्रपात् ।
स भूमि ँ सर्वत स्पृत्वात्यतिष्ठद्दशांगुलम् ।।१।।

यजुर्वेद ३१।१

(सहस्रशीर्षाः) असंख्य शिरों वाला, (सहस्राक्षः) अनन्त नेत्रों वाला, (सहस्रपात्) अनन्त पैरों वाला (पुरुषः) पुरुष सर्वत्र पूर्ण जगदीश्वर है। वह (भूमिम्) सबको उत्पन्न करने वाली भूमि के समान सर्वाश्रय प्रकृति को (सर्वतः) सब प्रकार (स्पृत्वा) व्याप कर (दशांगुलम्) और दश अंगुल अर्थात् दस अंग विकार महत् आदि या पृथिवी आदि स्थूल और सूक्ष्म भूतों का (अति अतिष्टत्) अतिक्रमण करके, उनमें भी व्याप्त होकर विराजता है।

पाँच स्थूलभूत और पाँच सूक्ष्मभूत, इन दस अंगों वाला जगत् 'दशांगुल' कहाता है। वह परमेश्वर इस समस्त जगत् को व्याप कर विराजता है।

पुरुष ऽ एवेद ँ सर्वं यद्भूतं यच्च भाव्यम् ।
उतामृतत्वस्येशानो यदन्नेनातिरोहति ॥२॥

यजुर्वेद ३१।२

(पुरुषः एव) वह जगत् में पूर्ण व्यापक परमेश्वर ही है। (यत्भूतम्) जो जगत् उत्पन्न है (यत् च) और जो (भाव्यम्) भविष्य में उत्पन्न होगा और (यत्) जो (अन्नेन) भोग्य अन्न के समान, भोग्य कर्म-फल से स्वयं (अति रोहति) स्थावर जंगम रूप पृथिव्यादि पर उत्पन्न होता (इदं सर्वम्) इस सबका (उत) और (अमृतत्वस्य) अमृतत्व, मोक्ष या अविनाशी स्वरूप का (ईशानः) स्वामी परमेश्वर है।

एतावानस्य महिमातो ज्यायाँश्च पुरुषः ।
पादोऽस्य विश्वा भूतानि त्रिपादस्यामृतं दिवि ॥३॥

यजुर्वेद ३१।३

(अस्य) इस जगदीश्वर का (एतावान्) इतना ये सब दृश्य, ब्रह्माण्डमय जगत् (महिमा) महान् सामर्थ्य है। (पुरुषः) इस जगत् में परिपूर्ण परमेश्वर (अतः) इससे (ज्यायान् च) कहीं बड़ा है। (विश्वा भूतानि) समस्त उत्पन्न होने वाले पृथिवी आदि लोक (अस्य पादः) इसका एक पाद, एक अंश, उसका ज्ञान कराने वाला कार्यरूप ज्ञापक है और (त्रिपात्) तीन अंशों वाला (अस्य) इस परमेश्वर का स्वरूप (दिवि) तेजोमय अपने स्वरूप में (अमृतम्) अमृत, नित्य, अविनाशी रूप से विद्यमान है।

त्रिपादूर्ध्व उदैत्पुरुषः पादो ऽस्येहाभवत्पुनः ।
ततो विष्वङ् व्यक्रामत्साशनानशने ऽ अभि ॥४॥

यजुर्वेद ३१।४

(त्रिपात् पुरुषः) तीन अंशों वाला पुरुष (ऊर्ध्व उद् ऐत्) सबसे ऊँचा, संसार में पृथक् शुद्ध, बुद्ध, मुक्त रूप होकर रहता है और (अस्य पादः) उसका एक अंश पुनः बार-बार (इह अभवत्) इस संसार में व्यक्त रूप से विद्यमान रहता है। (ततः) उस एक अंश से ही परमेश्वर (साशनानशने) खाने वाले चेतन और न खाने वाले जड़, दोनों चराचर को (विश्वङ्) सब प्रकार से व्याप्त होकर (वि अक्रामत्) विविध प्रकारों से उनको उत्पन्न करता है।

ततो विराडजायत विराजो ऽ अधि पूरुषः ।
स जातो ऽ अत्यरिच्यत पश्चाद्भूमिमथोपुरः ।।५।।

यजुर्वेद ३१।५

(ततः) उस पूर्ण पुरुष परमेश्वर से (विराट् अजायत) 'विराट' विविध पदार्थों, नाना सूर्यादि लोकों से प्रकाशमान ब्रह्माण्ड उत्पन्न हुआ। (विराजः अधि) उस विराट के भी ऊपर अधिष्ठाता रूप से (पूरुषः) पुर में बसने वाले स्वामी के समान ब्रह्माण्डों को पूर्ण करने हारा व्यापक परमेश्वर ही था। (सः) वह (पुरः) सबसे पूर्व विद्यमान रहकर (जातः) कार्य-जगत् में शक्ति रूप से प्रकट होकर भी (अति अरिच्यत) उससे भी कहीं अधिक बड़ा है। (पश्चात्) पीछे से वह (भूमिम्) प्राणियों और वृक्षादि को उत्पन्न करने वाली भूमि को उत्पन्न करता है। अथवा (स जातः अति अरिच्यत) वह प्रादुर्भूत होकर भी उस जगत् से पृथक् रहा और (सः पश्चाद्) वह पीछे (भूमिम् अथो पुरः) भूमि और जीवों के शरीरों को उत्पन्न करता है।

तस्माद्यज्ञात्सर्वहुतः सम्भृतं पृषदाज्यम् ।
पशूँस्ताँश्चक्रे वायव्यानारण्या ग्राम्याश्च ये ।।६।।

यजुर्वेद ३१।६

(तस्मात्) उस (सर्वहुतः) सर्व पूज्य, सर्व सम्मत (यज्ञात्) सर्वोपास्य, सबको प्राण आदि सब कुछ देने हारे परमेश्वर, प्रजापति से (पृषद्-आज्यम्) दधि, घृत आदि भोग्य पदार्थ (सम्भृतम्) उत्पन्न हुआ और वह ही (तान्) उन (वायव्यान्) वायु के समान गुण वाले, तीव्र वेगवान् अथवा (वायव्यान्) वायु से जीने हारे (पशून्) पशुओं के (ये) जो (आरण्यः) जंगल के सिंह, शूकर आदि और (ग्राम्याः च) ग्राम के गौ, अश्व आदि सबको (चक्रे) उत्पन्न करता है।

तस्माद्यज्ञात्सर्वहुत ऽ ऋचः सामानि जज्ञिरे ।
छन्दा ँ सि जज्ञिरे तस्माद्यजुस्तस्मादजायत ।।७।।

यजुर्वेद ३१।७

(तस्मात्) उस पूजनीय एवं सबके दाता, (सर्वहुतः) सर्वसम्मत अथवा समस्त संसार को प्रलय काल में अपने भीतर लेने हारे उस

परमात्मा से ही (ऋच:) ऋग्वेद, ऋचाएँ, मन्त्र, (सामानि) सामवेद, साम के समस्त गायनों के ज्ञान (जज्ञिरे) उत्पन्न होते हैं। (तस्मात्) उससे ही (छन्दांसि) 'छन्द' अर्थात् अथर्ववेद के मन्त्र (जज्ञिरे) उत्पन्न होते हैं। (तस्मात्) उससे ही (यजु: अजायत) यजुर्वेद उत्पन्न होता है।

तस्मादश्वा ऽ अजायन्त ये के चोभयादतः ।
गावो ह जज्ञिरे तस्मात्तस्माज्जाता ऽ अजावयः ।।८।।

यजुर्वेद ३१।८

(अश्वा:) घोड़े (ये के च) और जो भी कोई गधे आदि (उभयादत:) दोनों जबड़ों में दाँत वाले जीव हैं और (गाव:) गायें भी (तस्मात् ह) उससे ही (जज्ञिरे) उत्पन्न होते हैं। (तस्मात् अजावय:) बकरी भेड़ें भी (जाता) पैदा हुई हैं।

तं यज्ञं बर्हिषि प्रौक्षन् पुरुषं जातमग्रतः ।
तेन देवा अजयन्त साध्या ऽ ऋषयश्च ये ।।९।।

यजुर्वेद ३१।९

(तम्) उस (यज्ञम्) पूजनीय, (अग्रत: जातम्) सबसे आगे, प्रादुर्भूत जगत् के कर्त्ता (पुरुषम्) पूर्ण परमेश्वर को (अग्रत:) सृष्टि के पूर्व (वर्हिषि) विद्यमान महान् ब्रह्माण्ड रूप यज्ञ में (प्र औक्षन्) खूब अभिषिक्त करते हैं। (तेन) उसी ज्ञानमय परमपुरुष रूप से (साध्या:) योगाभ्यास आदि के साधना वाले ज्ञानी और (ऋषय: च) ऋषि (ये च) और जो भी है वे (अजयन्त) उपासना करते हैं।

यत्पुरुषं व्यदधुः कतिधा व्यकल्पयन् ।
मुखं किमस्यासीत्किं बाहू किमूरू पादा ऽ उच्येते ।।१०।।

यजुर्वेद ३१।१०

(यत्) जो विद्वान् ज्ञानी पुरुष (पुरुषम्) उस महान् पूर्ण, पुरुष का (वि अदधु:) विविध प्रकारों से वर्णन करते हैं, वे उसको (कतिधा) किस प्रकार से (वि अकल्पयन्) विभक्त करते या कल्पना करते हैं। (अस्य मुखम् किम्) इसका मुख भाग क्या है ? (बाहू किम्) बाहुएँ क्या हैं (ऊरू किम्) जाँघें क्या हैं ? (पादौ उच्येते) दोनों पैर क्या कहे जाते हैं ?

ब्राह्मणो ऽस्य मुखमासीद् बाहू राजन्यः कृतः ।
ऊरू तदस्य यद्वैश्यः पद्भ्या ँ शूद्रो ऽअजायत ।।११।।

यजुर्वेद ३१।११

(अस्य) इस परमेश्वर की बनाई सृष्टि में (ब्राह्मणः मुखम् आसीत्) ब्राह्मण, देव और वेदज्ञ और ईश्वरोपासक जन मुख रूप हैं। (बाहू राजन्यः कृतः) राजन्य, क्षत्रिय लोग शरीर में विद्यमान बाहु के समान बने हैं। (यत् वैश्यः) जो वैश्य हैं (तत्) वह (अस्य ऊरू) उसके जंघा हैं और (पद्भ्याम्) पैरों से (शूद्रः अजायत) अर्थात् जिस प्रकार समस्त शरीर की सेवा भ्रमण आदि पैर कराते हैं उसी प्रकार सेवा रूप में शूद्र को प्रकट कर दिया जाता है ।

चन्द्रमा मनसो जातश्चक्षोः सूर्यो ऽअजायत ।
श्रोत्राद्वायुश्च प्राणश्च मुखादग्निरजायत ।।१२।।

यजुर्वेद ३१।१२

प्रजापति के ब्रह्माण्डमय विराट शरीर का वर्णन । (चन्द्रमाः) चन्द्र (मनसः) मनरूप से (जातः) कल्पना किया गया है। अर्थात् जैसे शरीर में मन वैसे विराट शरीर में चन्द्र। (सूर्यः चक्षो अजायत) चक्षु से सूर्य को प्रकट किया जाता है। मानो उसकी आँख सूर्य है। (श्रोत्रात् वायुः च प्राणः च) श्रोत से वायु और प्राण प्रकट किये जाते हैं। मानो श्रोत्र वायु और प्राण हैं (मुखद्) मुख से (अग्निः अजायत) अग्नि को प्रकट किया जाता है, मानो अग्नि मुख है ।

नाभ्या ऽ आसीदन्तरिक्ष ँ शीर्ष्णो द्यौः समवर्त्तत ।
पद्भ्यां भूमिर्दिशः श्रोत्रात्तथा लोकाँ २ ऽ अकल्पयन् ।।१३।।

यजुर्वेद ३१।१३

(नाभ्या अन्तरिक्षम् आसीत्) नाभि-भाग में अन्तरिक्ष भाग कल्पित है। (द्यौः) आकाश (शीर्ष्णः सम् अवर्त्तत) शिर भाग से कल्पित हुआ। (पद्भ्यां भूमिः) पैरों से भूमि और (दिशः श्रोत्रात्) श्रोत से दिशायें तथा (लोकान्) लोकों को (अकल्पयन्) कल्पित किया गया है। उस विराट का अन्तरिक्ष नाभि है, सिर द्यौ है, भूमि पैर हैं, कान दिशायें तथा लोक हैं।

यत्पुरुषेण हविषा देवा यज्ञमतन्वत ।
वसन्तोऽस्यासीदाज्यं ग्रीष्म ऽइध्मः शरद्धविः ॥१४॥

यजुर्वेद ३१।१४

(यत्) जब (हविषा) स्वीकार करने योग्य, परम देव, (पुरुषेण) पूर्ण परमेश्वर से (देव:) विद्वान् गण (यज्ञम्) ज्ञान यज्ञ का (अतन्वत) सम्पादन करते हैं तब (अस्य) इस यज्ञ का (वसन्तः) वर्ष के प्रारम्भ काल, वसन्त के समान सौम्य पूर्वी भाग (आज्यम्) अग्नि को घृत के समान आत्मा के बल वीर्य की प्राप्ति कराता है। (ग्रीष्मः इध्य:) वर्ष में ग्रीष्म ऋतु के समान मध्य भाग, अग्नि को ईंधन के समान आत्मा की ज्ञानाग्नि को प्रखर कर देता है। (शरत् हवि:) वर्ष के शरद् ऋतु के समान शान्तिदायक रात्रिवत् समस्त प्राणों को पुनः आत्मा में आहुति होने से वह भी यज्ञ में हवि के समान है।

सप्तास्यासन् परिधयस्त्रिः सप्त समिधः कृताः ।
देवा यद्यज्ञं तन्वाना ऽअबध्नन् पुरुषं पशुम् ॥१५॥

यजुर्वेद ३१।१५

(देवा:) विद्वान् गण (यद्) जिस (यज्ञम्) यज्ञ को (तन्वाना:) करते हुए (पुरुषम्) पूर्ण पुरुष को (पशुम्) सर्वद्रष्टा रूप से (अवध्नन्) ध्यानसूत्र में बाँधते हैं (यस्य) उसके (सप्त) सात (परिधय:) परिधि, धारण सामर्थ्य हैं। उसके (त्रि: सप्त) इक्कीस (समिध:) प्रकाशक सामर्थ्य (कृता:) विधान किये गये हैं।

'सप्त' अध्यात्म में सात छन्द 'त्रि:' सत, रज:, तम। शरीर में सात धातुएँ–वात, पित्त, कफ–तीन प्रकृतियाँ जिनके मिलने से शरीर में २१ प्रकार के विकार बनते हैं। 'त्रि: सप्त समिध:' पाँच तनमात्रायें जिन्हें सूक्ष्मभूत, भी कहते हैं, पाँच स्थूल भूत, पाँच ज्ञानेन्द्रियाँ, पाँच कर्मेन्द्रियाँ और मन यह इक्कीस हैं।

यज्ञेन यज्ञमयजन्त देवास्तानि धर्माणि प्रथमान्यासन् ।
ते ह नाकं महिमानः सचन्त यत्र पूर्वे साध्याः सन्ति देवाः ॥१६॥

यजुर्वेद ३१।१६

(यज्ञेन) पूर्वोक्त मानस यज्ञ से (देवा:) विद्वान् जन (यज्ञम्) उस पुरुष की (अजयन्त) उपासना करते हैं। (तानि धर्माणि) वे सब धारण

सामर्थ्य (प्रथमानि आसन्) प्रथम ही विद्यमान रहे। (ते ह) वे (महिमानः) महान् सामर्थ्य वाले ईश्वरोपासक जन, (नाकम्) उस सुखमय परमेश्वर को ही (सचन्त) प्राप्त होते हैं, (यत्र) जिसमें (पूर्वे) पूर्व के (साध्यः) साधनाशील, (देवाः) विद्वान् ज्ञान के साक्षात् द्रष्टा लोग (सन्ति) विराजते हैं।

अद्भ्यः सम्भृतः पृथिव्यै रसाच्च विश्वकर्मणः समवर्त्ततात्रे।
तस्य त्वष्टा विदधद्रूपमेति तन्मर्त्यस्य देवत्वमाजानमग्रे ॥१७॥

यजुर्वेद ३१।१७

(अद्भ्यः) जलों से और (पृथिव्यै) पृथिवी, (विश्वकर्मणः) समस्त संसार के कर्त्ता परमेश्वर के (रसात्) प्रेरक बल से (अग्रे) सबसे प्रथम जो ब्रह्माण्ड (सम् अवर्त्तत) उत्पन्न हुआ। (त्वष्टा) वह विधाता ही (तस्य) उसके (रूपम्) रूप को (विदधत्) स्वयं विविध रूपों से धारण करता हुआ (एति) प्राप्त होता है। (मर्त्यस्य) मरणधर्मा पुरुष के (तत्) उस (आजानम्) समस्त जनों के करने योग्य कर्म और (देवत्वम्) दर्शन करने योग्य ज्ञान को (अग्रे) सबसे पूर्व (एति) स्वयं प्राप्त करता है। जल और पृथिवी से विश्वकर्मा जगत् स्रष्टा ने उसको बनाया, स्वयं बनाने वाला 'त्वष्टा' तदनुरूप हो गया। यही उस (मर्त्यस्य) मरणधर्मा विनाशी पदार्थ का भी (अग्रे) पहले से ही (आजानम् देवत्वम्) जन्म से ही देव रूप हैं। वह स्वतः ईश्वर की दिव्य शक्ति का स्वरूप है।

वेदाहमेतं पुरुषं महान्तमादित्यवर्णं तमसः परस्तात्।
तमेव विदित्वाति मृत्युमेति नान्यः पन्था विद्यतेऽयनाय ।१८॥

यजुर्वेद ३१।१८

(अहम्) मैं (एतम) उस (महान्तम्) बड़े भारी (पुरुषम्) ब्रह्माण्ड में व्यापक परमेश्र को (आदित्यवर्णम्) सूर्य के समान तेजस्वी और (तमसः) अन्धकार प्रकृति से (परस्तात्) दूर, भिन्न (वेद) जानता हूँ। (तम्) उसको ही (विदित्वा) जानकर जीव (मृत्युम् अति एति) मृत्यु को पार कर जाता है। (अन्यः) दूसरा कोई (पन्थाः) मार्ग (अयनाय) अभिष्ट मोक्ष प्राप्ति के लिये (न विद्यते) नहीं है।

प्रजापतिश्चरति गर्भे ऽ अन्तरजायमानो बहुधा वि जायते ।
तस्य योनिं परि पश्यन्ति धीरास्तस्मिन्ह तस्थुर्भुवनानि विश्वा ।१६।

यजुर्वेद ३१।१६

(प्रजापतिः) वह समस्त प्रजा का पालक (गर्भे अन्तः) गर्भ, गर्भस्थ जीवात्मा वा हिरण्यगर्भ के भीतर (चरति) विचरता है, वह (अजायमानः) स्वयं कभी उत्पन्न न होता हुआ भी (बहुधा) बहुत प्रकारों से (विजायते) प्रकट होता है । (तस्य) उसके (योनिम्) कारण स्वरूप को (धीराः) ध्याननिष्ठ योगीजन ही (परिपश्यन्ति) साक्षात् करते हैं। (तस्मिन् ह) उस मूलकारण परमेश्वर में ही (विश्वा भुवनानि) समस्त भुवन (तस्थुः) स्थित हैं ।

यो देवेभ्य ऽ आतपति यो देवानां पुरोहितः ।
पूर्वो यो देवेभ्यो जातो नमो रुचाय ब्राह्मये ।।२०।।

यजुर्वेद ३१।२०

(यः) जो (देवेभ्यः) दिव्य गुण वाले पृथिवी, अग्नि, जल, तेज, वायु आदि को उत्पन्न करने के लिए स्वयं (आतपति) तप करता है और (यः) जो (देवानाम्) पृथिव्यादि लोकों, पञ्च भूतों से भी (पुरः हितः) पूर्व उनका मूल कारण होकर विद्यमान रहा और (यः) जो (देवेभ्यः) तेजोमय सूर्यादि पदार्थों से भी (पूर्वः) प्रथम (जातः) हिरण्यगर्भ रूप से प्रकट होता है । उस (ब्राह्मये) वेद द्वारा प्रतिपादित, (रुचाय) स्वयं प्रकाश परमेश्वर को (नमः) नमन है।

रुचं ब्राह्मं जनयन्तो देवा ऽ अग्रे तदब्रुवन् ।
यस्त्वैवं ब्राह्मणो विद्यात्तस्य देवा ऽ असन्वशे ।।२१।।

यजुर्वेद ३१।२१

(देवः) विद्वान् गण, (ब्राह्मम्) परब्रह्म सम्बन्धी, (रुचम्) तेज, ज्ञान को वा ब्रह्म के विद्वान् को (जनयन्तः) उत्पन्न करते हुए, (अग्रे) सबसे प्रथम (एत्) उस परमेश्वर का ही (अब्रुवन) उपदेश करते हैं। (एवम्) इस प्रकार (यः) जो ब्रह्मनिष्ठ, विद्वान् (विद्यात्) परमेश्वर के विज्ञान को प्राप्त करता है (तस्य) उसके (वशे) अधीन समस्त (देवाः)

देव विद्वान् एवं उत्तम व्यवहार और दिव्य आत्मिक और भौतिक शक्तियाँ (असन्) रहती हैं।

श्रीश्च ते लक्ष्मीश्च पत्न्यावहोरात्रे पार्श्वे
नक्षत्राणि रूपमश्विनौ व्यात्तम् ।
इष्णन्निषाणामुं म ऽ इषाण सर्वलोकं म ऽ इषाण ॥२२॥

यजुर्वेद ३१।२२

हे परमेश्वर (श्रीः च) सबको आश्रय देने वाली और (लक्ष्मी च) सब में तुझे व्यापक और शक्तिमान् दिखाने वाली, दोनों शक्तियाँ (ते) तेरी (पत्न्यौ) संसार को पालन करने हारी है। (अहोरात्रे पार्श्वे) सूर्य जब प्रत्यक्ष होता है तब दिन और जब नहीं प्रत्यक्ष हो तब रात्रि होती है। इसी प्रकार हे परमेश्वर ! तुम्हारे दो पार्श्व हैं । जब तुम साक्षात् होते हो तब हृदय में ज्ञान का प्रकाश हो जाना दिन के समान है। तामस आवरण से जब तुम प्रत्यक्ष नहीं होते तब रात्रि है। (नक्षत्राणि रूपम्) जैसे नक्षत्र सब सूर्य के रूप हैं वैसे ही सब तेजोमय पदार्थ परमेश्वर के प्रतिरूप हैं।

आत्म सूक्त

ईशा वास्यमिद ँ सर्वं यत्किञ्च जगत्यां जगत् ।
तेन त्यक्तेन भुञ्जीथा मा गृधः कस्य स्विद्धनम् ।।१।।

यजुर्वेद ४०।१

(जगत्याम्) इस सृष्टि में (यत् किंच) जो कुछ भी (जगत्) चर, प्राणी, जंगम संसार या गतिशील है (इदम्) वह (सर्वम्) सब (ईशा) सर्वशक्तिमान् परमेश्वर से (वास्यम्) व्याप्त है। (तेन त्यक्तेन) उससे त्याग किये हुए, या (तेन) उस परमेश्वर से (त्यक्तेन) दिये हुए पदार्थ से (भुञ्जीथाः) भोग सुख अनुभव कर। (कस्य स्वित्) किसी के भी (धनम्) धन लेने की (मा गृधः) चाह मत कर। अथवा (धनं कस्य स्वित् ?) यह धन किसका है ? किसी का भी नहीं केवल परमात्मा का है। इसलिए (मा गृधः) लालच मत कर।

कुर्वन्नेवेह कर्माणि जिजीविषेच्छत ँ समाः ।
एवं त्वयि नान्यथेतो ऽस्ति न कर्म लिप्यते नरे ।।२।।

यजुर्वेद ४०।२

(इह) इस संसार में मनुष्य (कर्माणि) वेद प्रतिपादित निष्काम कर्मों को (कुर्वन्) करता हुआ ही (शतं समाः) सौ वर्ष तक (जिजीविषेत्) जीना चाहे। हे मनुष्य (एवम्) इस प्रकार (त्वयि) तुझ (नरे) कार्य

करने वाले पुरुष में (कर्म न लिप्यते) कर्म का लेप नहीं होगा। (इतः अन्यथा) इससे दूसरे किसी प्रकार से (न अस्ति) कर्म का लेप लगे बिना नहीं रह रहता।

असुर्य्या नाम ते लोका ऽ अन्धेन तमसावृताः।
ताँस्ते प्रेत्यापि गच्छन्ति ये के चात्महनो जनः ॥३॥

यजुर्वेद ४०।३

(ते) वे (लोकाः) लोक अर्थात् मनुष्य (असुर्याः) असुर कहाने योग्य, केवल अपने प्राण को पोषण करने हारे पापाचारी हैं, जो (अन्धेन) अन्धकार रूप (तमसा) आत्मा को ढक लेने वाले तमोगुण से (आवृताः) ढके हैं। (ये के च) जो कोई (जनाः) लोग भी (आत्महनः) अपनी आत्मा का घात करते हैं, उसके विरुद्ध आचरण करते हैं (ते) वे (प्रेत्य) मर कर (अपि) और जीवनकाल में भी (तान्) उन उक्त प्रकार के लोकों को ही (गच्छन्ति) प्राप्त होते हैं।

अनेजदेकं मनसो जवीयो नैनद्देवा ऽ आप्नुवन् पूर्वमर्षत्।
तद्धावतो ऽ न्यानत्येति तिष्ठत्तस्मिन्नपो मातरिश्वा दधाति ॥४॥

यजुर्वेद ४०।४

(अनेजत्) अपनी अवस्था से कभी च्युत न होने वाला, परिणाम रहित, (एकम्) अद्वितीय, (मनसः जवीयः) मन से भी अधिक वेगवान् ब्रह्म है। (पूर्वम्) सबके पूर्व सबके आगे, (अर्षत्) गति करते हुए (एनत्) उसको (देवाः) पृथिवी आदि तत्व और चक्षु आदि इन्द्रियगण (न आप्नुवन्) नहीं प्राप्त होते। (तत्) वह परब्रह्म (तिष्ठत्) अपने स्वरूप में स्थित, कूटस्थ स्थिर होकर भी (धावतः) विषयों के प्रति जाते हुए (अन्यान्) अपने से भिन्न मन आदि इन्द्रियों को (अति एति) लांघ जाता है। (तस्मिन्) उस सर्व व्यापक में ही (मातरिश्वा) अन्तरिक्ष में गति करने वाला वायु और उसके समान जीव भी (अपः) कर्म (दधाति) करता है।

तदेजति तन्नैजति तद्दूरे तद्वन्तिके।
तदन्तरस्य सर्वस्य तदु सर्वस्यास्य बाह्यतः ॥५॥

यजुर्वेद ४०।५

(तत् एजति) वह क्रिया करता है (तत् न एजति) वह क्रिया नहीं

करता। वह स्वयं कूटस्थ, निष्क्रिय होकर समस्त ब्रह्माण्ड को गति दे रहा है। (तत् दूरे) वह असत्याचरण अविद्वान् पुरुषों से दूर है अथवा जहाँ तक हमारी दृष्टि जाती है वह उससे भी दूर से दूर तक व्यापक है। (तत् उ अन्तिके) वही धर्मात्मा और सत्याचरण विद्वानों के समीप है अथवा वह इतना समीप है कि हृदय गुहा में जीव के समीप विराजमान है। (तत्) वह (अस्य सर्वस्य) इस जगत् और जीवों के (अन्त:) भीतर, (तत्) वही (अस्य सर्वस्य) इस समस्त जगत् के (वाह्यत:) बाहर भी वर्तमान है।

यस्तु सर्वाणि भूतान्यात्मन्नेवानुपश्यति ।
सर्वभूतेषु चात्मानं ततो न वि चिकित्सति ॥६॥

यजुर्वेद ४०।६

(यः तु) जो पुरुष (सर्वाणि भूतानि) सब प्राणियों और प्राण-रहित पदार्थों को भी (आत्मन् एव) परमात्मा पर ही आश्रित (अनु पश्यति) विद्याभ्यास, धर्माचरण और योगाभ्यास कर साक्षात् कर लेता है और (सर्वभूतेषु च) समस्त प्रकृति आदि पदार्थों में (आत्मानम्) परमेश्वर को व्यापक जानता है। (ततः) तब वह (न विचिकित्सति) सन्देह में नहीं पड़ता।

यस्मिन्त्सर्वाणि भूतान्यात्मैवाभूद्विजानतः ।
तत्र को मोहः कः शोक ऽ एकत्वमनुपश्यतः ॥७॥

यजुर्वेद ४०।७

(यस्मिन्) जिस ब्रह्मज्ञान की दशा में (सर्वाणि भूतानि) समस्त जीव(आत्मा एव अभूत्)अपनी आत्मा के समान हो जाते हैं अर्थात् समस्त जीव अपने समान दीखने लगते हैं उस (एकत्वम् अनु पश्यत:) एकता या समानता को देखने वाले (विजानत:) आत्मज्ञानी पुरुष को (तत्र) उस दशा में फिर (क: मोह:) कौन-सा मोह (क: शोक:) कौन-सा शोक रह सकता है ?

स पर्य्यगाच्छुक्रमकायमव्रणमस्नाविर ँ शुद्धमपापविद्धम् ।
कविर्मनीषी परिभूः स्वयम्भूर्याथातथ्यतो ऽ र्थान्
व्यदधाच्छाश्वतीभ्यः समाभ्यः ॥८॥

यजुर्वेद ४०।८

(स:) वह परमेश्वर (परि अगात्) सर्वत्र व्यापक है। वह (शुक्रम्)

कान्तिमय अथवा तीव्र शक्तिमय, (अकायम्) स्थूल सूक्ष्म और कारण नामक तीनों शरीरों से रहित, (अव्रणम्) घाव आदि से रहित, (अस्नाविरम्) स्नायु आदि बन्धनों से रहित, शुद्ध, अविद्यादि दोषों से रहित, (अपापविद्धम्) पापों से सदा दूर (कविः) क्रान्तदर्शी, मेधावी, (मनीषी) सबके मनो को प्रेरणा करने वाला, (परिभूः) व्यापक, सबका वशयिता (स्वयम्भूः) स्वयं अपनी सत्ता से सदा विद्यमान, माता-पिता द्वारा जन्म न लेने हारा है वह (याथातथ्यतः) यथार्थ रूप से (शाश्वतीभ्यः) सनातन से चली आयी (समाभ्यः) प्रजाओं के लिए (अर्थान्) समस्त पदार्थों को (वि अदधात्) रचता है और उनका ज्ञान देता है।

अन्धन्तमः प्र विशन्ति ये ऽ संभूतिमुपासते ।
ततो भूय ऽ इव ते तमो य ऽ उ सम्भूत्याᳬरताः ॥९॥

यजुर्वेद ४०।९

(ये) जो (असंभूतिम्) सत्व, रजस्, तमस् तीन गुणों वाली अव्यक्त प्रकृति की (उपासते) उपासना करते हैं वे (अन्धं तमः) गहरे अन्धकार में (प्रविशन्ति) चले जाते हैं। (ये उ) और जो (संभूत्याम्) मरुत् आदि विकारमय सृष्टि में (रताः) रमण करते हैं, उसी में मग्न हो जाते हैं (ते) वे (ततः) उससे भी (भूयः इव) अधिक गहरे (तमः) अन्धकार में प्रविष्ट होते हैं अर्थात् केवल प्रकृति के उपासक परमानन्द परमेश्वर की आनन्दमय परम ज्योति को प्राप्त नहीं करते, वे जड़ोपासना में मग्न रहते हैं और जो प्रकृति विकारों की ही उपासना करते हैं वे भी सुख नहीं पाते।

अन्यदेवाहुः सम्भवादन्यदाहुरसम्भवात् ।
इति शुश्रुम धीराणां ये नस्तद्विचचक्षिरे ॥१०॥

यजुर्वेद ४०।१०

(सम्भवात) उत्पन्न होने अर्थात् कार्यजगत् से (अन्यत् एव) अन्य ही फल (आहुः) करते हैं। (असम्भवात्) नहीं उत्पन्न होने अर्थात् कारण रूप प्रकृति के ज्ञान से (अन्यत्) अन्य ही फल (आहुः) कहते हैं। (ये) जो विद्वान् पुरुष (नः) हमें (तत्) इस तत्व को (विचचक्षिरे) विशेष रूप से बतलाते हैं, उन (धीराणाम्) बुद्धिमान पुरुषों से (एति) इस विषय का (सुश्रुम) श्रवण करें।

सम्भूतिं च विनाशं च यस्तद्वेदोभय ँ सह ।
विनाशेन मृत्युं तीर्त्वा सम्भूत्यामृतमश्नुते ॥११॥

यजुर्वेद ४०।११

(संभूतिम्) जिसमें नाना पदार्थ उत्पन्न होते हैं इस कार्य सृष्टि और (विनाशं च) जिसमें विनाश अर्थात् कारण में लीन होते हैं (उभयम्) दोनों को (यः) जो (सह) एक साथ (वेद) जान लेता है। वह (विनाशेन) सबके अदृश्य होने के परम कारण को जान कर (मृत्युम्) देह को छोड़ने के धर्म के भय को (तीर्त्वा) पार करके, उसको सर्वथा त्याग कर (संभूत्या) कारण से कार्यों के उत्पन्न होने के तत्व को जानकर (अमृतम्) उस अमर अविनाशी मोक्ष को (अश्नुते) प्राप्त करता है।

अन्धन्तमः प्र विशन्ति येऽ विद्यामुपासते ।
ततो भूय ऽ इव ते तमो य ऽ उ विद्याया ँ रताः ॥१२॥

यजुर्वेद ४०।१२

(ये) जो लोग (अविद्याम्) अविद्या अर्थात् नित्य, पवित्र, सुख और आत्मा से भिन्न पदार्थों को नित्य, पवित्र, सुख और आत्मा (उपासते) करके, जानते हैं, उसी प्रकार मिथ्या ज्ञान में मग्न रहते हैं वे (अन्धं तमः) गहरे अन्धकार में (प्रविशन्ति) प्रवेश करते हैं वे बड़े अज्ञान में रहते हैं और (ये उ) जो भी (विद्यायाम् रताः) विद्या अर्थात् केवल शास्त्राभ्यास में ही (रताः) लगे रहते हैं वे (ततः भूयः इव) उससे भी अधिक (तमः) अज्ञानान्धकार में कष्ट पाते हैं।

अन्यदेवाहुर्विद्याया ऽ अन्यदाहुरविद्यायाः ।
इति शुश्रुम धीराणां ये नस्तद्विचचक्षिरे ॥१३॥

यजुर्वेद ४०।१३

(विद्यायाः) विद्या का फल और कार्य (अन्यत् एव आहुः) दूसरा ही बतलाते हैं और (अविद्यायाः अन्यत् आहुः) अविद्या का फल और ही बतलाते हैं। (ये नः तद् विचचक्षिरे) जो हमें विद्या और अविद्या के स्वरूप का उपदेश करते हैं हम उन (धीराणाम्) बुद्धिमान् पुरुषों के मुखों से (इति शुश्रुम) इस तत्व का श्रवण किया करें।

विद्यां चाविद्यां च यस्तद्वेदोभय ँ सह ।
अविद्यया मृत्युं तीर्त्वा विद्ययामृतमश्नुते ।।१४।।

यजुर्वेद ४०।१४

(विद्यां च अविद्याम् च) विद्या और अविद्या (यः) जो (तत् उभयं वेद) इन दोनों के रूप जान लेता है वह (अविद्यया) अविद्या से (मृत्युं तीत्वा) मृत्यु को पार करके (विद्यया अमृतम् अश्नुते) विद्या से मोक्ष को प्राप्त करता है । 'अविद्यया' शरीरादि जड़ पदार्थ द्वारा पुरुषार्थ करके 'विद्यया' शुद्ध चित्त से सम्यक् तत्वदर्शन करके ।

वायुरनिलममृतमथेदं भस्मान्त ँ शरीरम् ।
ओ३म् क्रतो स्मर क्लिबे स्मर कृत ँ स्मर ।।१५।।

यजुर्वेद ४०।१५

(वायुः) वायु, प्राण, अपान, व्यान, समान, उदान, नाग, कूर्म, कृकल, देवदत्त, धनंजय आदि (अनिलम्) उक्त प्राणों के मूलकारण, वायु तत्व और (अमृतम्) अमृत आत्मा यह एक-दूसरे के आश्रित हैं । वायु के आश्रय प्राण, प्राणों के आश्रय आत्मा जीवन धारण करता है। (अथ) और पश्चात् (इदम्) यह शरीर (भस्मान्तम्) राख हो जाने तक ही है। इसलिए हे (क्रतो) कर्म के कर्त्ता जीव ! (ओ३म् स्मर) ओ३म् का स्मरण कर। 'ओ३म्' परमेश्वर का सर्वश्रेष्ठ नाम है और (क्लिवे) अपने भरसक सामर्थ्य और प्रयत्न से साधे हुए लोक की प्राप्ति के लिए। (स्मर) अपने अभिष्ट का स्मरण कर। (कृतं स्मर) अपने किये हुए कर्मों का स्मरण कर।

अग्ने नय सुपथा राये ऽस्मान्विश्वानि देव वयुनानि विद्वान् ।
युयोध्यस्मज्जुहुराणमेनो भूयिष्ठां ते नम ऽ उक्तिं विधेम ।।१६।।

यजुर्वेद ४०।१६

(अग्ने) हे प्रकाश स्वरूप ! करुणामय प्रभो ! तू हमें (सुपथा) धर्म के उपदेश मार्ग से (राये) विज्ञान, धन और सुख प्राप्त करने के लिए (सुपथा) सन्मार्ग से (नय) ले चल। (विश्वानि वमुनानि) सब उत्तम ज्ञानों को और मार्गों, लोकों को (विद्वान्) जानता हुआ (अस्मत्) हमसे (जुहुराणम्) कुटिल व्यवहार को (युयोधि) दूर कर । (ते) तेरे हम (भूयिष्ठाम्) बहुत-बहुत (नमः उक्तिम्) स्तुति वचन (विधेम) करें ।

हिरण्मयेन पात्रेण सत्यस्यापिहितं मुखम्।
यो ऽसावादित्ये पुरुषः सो ऽसावहम्। ओ३म् खं ब्रह्म ॥१७॥

यजुर्वेद ४०।१७

(हिरण्मयेन) हित और रमणीय ज्योतिर्मय (पात्रेण) पालक द्वारा (सत्यस्य) आत्मा और परमात्मा तत्व का (अपिहितम्) ढका हुआ (मुखम्) मुख खोला जाता है। (यः) जो (असौ) वह (आदित्ये) प्राण में (पुरुषः) शक्तिमान् प्रकाशकर्त्ता (सः असौ अहम्) वह ही मैं हूँ। (ओ३म्) सब संसार की रक्षा करने हारा वह (खम्) आकाश के समान व्यापक, अनन्त और आनन्दमय है और वही (ब्रह्म) गुण, कर्म, स्वभाव में सबसे बड़ा है।

उद्यम सूक्त
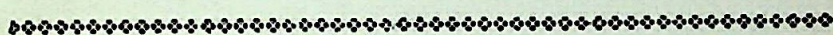
तं त्वा वाजेषु वाजिनं वाजयामः शतक्रतो ।
धनानामिन्द्र सातये ॥१॥

ऋग्वेद १।४।९

हे (शतक्रतो) सैकड़ों सामर्थ्यवान् राजन् ! (वाजेषु) संग्रामों में (वाजिनं) विजय प्राप्त कराने वाले ऐश्वर्यवान्, (तं त्वा) उस तुझको हे (इन्द्र) ऐश्वर्यवन् ! शत्रुनाशक ! (धनानां सातये) धनों के प्राप्त करने के लिये हम (वाजयामः) आदरपूर्वक प्रार्थना करते हैं, तुझे ऐश्वर्य पद से विभूषित करते हैं।

अर्थमिद्वा उ अर्थिन आ जाया युवते पतिम् ।
तुञ्जाते वृष्ण्यं पयः परिदाय रसं दुहे वित्तं मे अस्य रोदसी ॥२॥

ऋग्वेद १।१०५।२

जिस प्रकार (अर्थिनः) धनेच्छु (अर्थम् इत् उ) धन को (आयुवते) प्राप्त होते हैं (वा उ) उसी प्रकार (जाया) स्त्री (पतिम्) पति को (आ युवते) प्राप्त होकर प्रसन्न होती है। स्त्री पुरुष दोनों मिलकर जिस प्रकार (वृष्ण्यं पयः) पुष्टिकारक धातु, वीर्य का (तुञ्जाते) एक-दूसरे को प्रदान करते और लेते हैं उसी प्रकार धन और धनाभिलाषी दोनों (वृष्ण्यं पयः) सुखवर्धक, पुष्टिकारक अन्नादि लेते और देते हैं। धन ही

अन्नादि देता है और धन द्वारा ही लेता है। इसी प्रकार पृथ्वी और सूर्य राजा और प्रजा भी मिलकर (वृष्ण्यं पयः तुञ्जाते) वर्षण योग्य जल तथा बलवान् पुरुषों के योग्य बल वीर्य का परस्पर आदान-प्रदान करते और जिस प्रकार भूमि सूर्य से प्रकाश (परिदाय) लेकर उसको अपना (रसं दुहे) जल प्रदान करती है, स्त्री जिस प्रकार आश्रय, वस्त्र अन्न और हृदय-प्रेम आदि लेकर पति को (रसं दुहे) अति सुख प्रदान करती है और गौ जिस प्रकार (परिदाय) घास आदि खाकर (रसं दुहे) क्षीर दोहन करती है, उसी प्रकार प्रजा या भूमि भी (परिदाय) राजा के बल पराक्रम को लेकर (रसं दुहे) सारमय बहुमूल्य ऐश्वर्य प्रदान करती है। हे (रोदसी) सूर्य और पृथिवी के समान स्त्री-पुरुषो, राजा और प्रजाओं ! गुरु शिष्यों ! तुम (मे) मेरे (अस्य) इस प्रकार के कथन का सत्य रहस्य (वित्तम्) जानो।

अश्मन्वती रीयते सं रभध्वमुत्तिष्ठत प्र तरता सखायः ।
अत्रा जहाम ये असन्नशेवाः ये शिवान्वयमुत्तरेमाभि वाजान् ।।३।।

ऋग्वेद १०।५३।८

(अश्मन्वती रीयते) व्यापक आत्म-शक्ति से युक्त नदी के समान यह अनादि प्रवाह बराबर गति कर रहा है। हे विद्वान् पुरुषो ! (सं रभध्वम्) मिलकर उद्योग करो। (उत् तिष्ठत) उत्तम स्थिति प्राप्त करो। हे (सखायः) मित्रो ! (ये) जो (अशेवाः) अकल्याण, मल, पाप एवं दुःखदायी कारण हैं उनको (अत्र) यहाँ (जहाम) त्याग दें और (शिवान् वाजान् अभि) कल्याणकारी, सुखदायी ऐश्वर्यों और ज्ञानों को लक्ष्य कर (वयम्) हम (उत् तरेम) उत्तम पद पर पहुँचें।

अयं मे हस्तो भगवानयं मे भगवत्तरः ।
अयं मे विश्वभेषजोऽयं शिवाभिमर्शनः ।।४।।

ऋग्वेद १०।६०।१२

(अयं मे हस्तः भगवान्) यह मेरा हाथ ऐश्वर्यवान् है, (अयं मे भगवान् तरः) यह मेरा दूसरा हाथ और भी अधिक ऐश्वर्यवान् है। यह मेरा हाथ (विश्व-भेषजः) सब रोगों को औषधिवत् दूर करने वाला है। (अयं शिवाभिमर्शनः) यह मेरा हाथ सुख युक्त स्पर्श वाला हैं।

नहि स्थूर्यृतुथा यातमस्ति नोत श्रवो विविदे सङ्गमेषु ।
गव्यन्त इन्द्रं सख्याय विप्रा अश्वायन्तो वृषणं वाजयन्तः ॥५॥

ऋग्वेद १०।१३१।३

(स्थूरि) बैल रहित स्थिर पड़ी हुई गाड़ी (ऋतु-था) ठीक-ठीक समय पर मार्गों में जिस प्रकार (यातम् न अस्ति) जाने योग्य नहीं होती, उसी प्रकार (स्थूरि) एक व्यक्ति से ही गृहस्थ की गाड़ी नहीं चलती। अर्थात् गाड़ी के लिए (उत) और (संगमेषु) संग्रामों वा मिलापों में भी (श्रवः न विविदे) अन्न, यश, कीर्ति, ज्ञान का लाभ नहीं होता जब तक कि मेघ, सूर्य, उत्तम ज्ञानवान् पुरुष प्रयोक्ता नहीं। इसलिए (विप्राः) विद्वान् लोग (गव्यन्तः) गौ, बैल, भूमि और ज्ञान-वाणी की कामना करते हुए, और (अश्वायन्तः) संग्रामार्थ अश्व और अश्ववत् कार्यवाहक समर्थ पुरुष की इच्छा करते हुए, और (वाजयन्तः) बल, ऐश्वर्य, ज्ञान और वेग की कामना करते हुए, (वृषणम् इन्द्रम्) सुखों की वर्षा करने वाले प्रभु को (सख्याय) मित्रभाव के लिए चाहते हैं।

ऊर्ध्वो भव प्रति विध्याध्यस्मदाविष्कृणुष्व दैव्यान्यग्ने ।
अवस्थिरा तनुहि यातुजूनां जामिमजामि प्रमृणीहि शत्रून् ।
अग्नेष्ट्वा तेजसा सादयामि ॥६॥

यजुर्वेद १३।१३

हे तेजस्विन् राजन् ! तू (ऊर्ध्वः) सबसे ऊँचा होकर (भव) रह। (अस्मद् व्याधि प्रतिविध्य) हमारी व्याधियों का नाश कर। (दैव्यानि) दिव्य पदार्थों से बने विद्वान् पुरुषों के बनाये अस्त्रों को (आविः कृणुष्व) प्रकट कर। (स्थिरा) दृढ़ धनुषों को (अव तनुहि) नमा। (यातुजूनाम्) वेग से चढ़ाई करने वाले शत्रुओं के (जामिम्) सम्बन्धी और (अजामिम्) असम्बन्धी (शत्रून् प्र मृणीहि) शत्रुओं का नाश कर। हे राजन्! हे वज्र ! (त्वा) तुझको (अग्नेः) अग्नि के (तेजसा) तेज से (सादयामि) स्थापित करता हूँ।

यो जागार तमृचः कामयन्ते यो जागार तमु सामानि यन्ति ।
यो जागार तमयं सोम आह तवाहमस्मि सख्ये न्योकाः ॥७॥

सामवेद उ०।६।२।५।१।१८२६

जो विद्वान् ब्रह्मवेत्ता (जागार) अविद्या को नींद से जाग जाता है।

(तं) उसको (ऋचः) ऋग्वेद की ऋचाएँ और उसके समान ज्ञानप्रद जन भी (कामयन्ते) चाहते हैं और (यः) जो (जागार) अविद्या निद्रा से जाग जाता है (तम् उ) उसको ही (सामानि) साम के उपासना परक मन्त्र और उपासना करने वाले भक्त लोग भी (यन्ति) प्राप्त होते हैं (यः) जो (जागार) ज्ञानमार्ग में जागृत सावधान रहता है (तम्) उसको ही (अयं) यह (सोमः) सोमरूप सबका प्रेरक जगदीश्वर या संसार का ऐश्वर्य भी (आह) कहता है कि (तव सख्ये) तेरी मित्रता में ही (अहम्) मैं भी (न्योकाः) निवास करता हूँ।

सं चेध्यस्वाग्ने प्र च वर्धयेममुच्च तिष्ठ महते सौभगाय ।
मा ते रिषन्नुपसत्तारो अग्ने ब्रह्माणस्ते यशसः सन्तु मान्ये ।।८।।

अथर्ववेद २।६।२

हे (अग्ने) परमात्मन् ! राजन् (च) और (सम् इध्यस्व) हमारे हृदय में उत्तम रीति से प्रकाशित हो और (इमं च) इस जीव को (प्रवर्धय) खूब शक्ति बल विज्ञान से बढ़ा, उन्नत कर और (महते) बड़े भारी (सौभगाय) सौभाग्य समृद्धि के लिए (उत्तिष्ठ च) सबसे उन्नत होकर विराजमान हो, (ते) तेरे (उपसत्तारः) समीप पहुँचने हारे योगी, मुमुक्षु जन (मा रिषन्) विनाश और क्लेश को प्राप्त न हों। (अग्ने) ज्ञानप्रकाशक ! (ब्रह्माणः) ब्रह्म=वेद के जानने हारे विद्वान् (ते) तेरे (यशसः) यश स्वरूप कीर्ति से सम्पन्न (सन्तु) हों। (मा अन्ये) और दूसरे अविद्वान् विलासी लोग यश को प्राप्त न हों।

प्रेता जयता नर उग्रा वः सन्तु बाहवः ।
तीक्ष्णेषवो बलधन्वनो हतोग्रायुधा अबलानुग्रबाहवः ।।९।।

अथर्ववेद ३।१९।७

हे (नरः) नेता लोगो ! (प्र इत) आगे बढ़ो, (जयत) विजय करो (वः) तुम्हारी (बाहवः) बाहुएँ (उग्राः सन्तु) खूब बलशाली और शत्रुओं को विनाश करने में भयंकर हो उठें और आप लोग (तीक्ष्ण-इषवः, उग्र-आयुधाः) तीक्ष्ण धनुष, बाण और भयंकर-भयंकर हथियार धारण कर (उग्र-बाहवः) प्रचण्ड-बाहु होकर (अबल-धन्वनः) कच्चे निर्बल धनुष वाले (अबलान्) निर्बल शत्रुओं को (हत) विनाश करो।

उत् क्रामातः पुरुष माव पत्था मृत्योः पड्बीशमवमुञ्चमानः।
माच्छित्था अस्माल्लोकादग्नेः सूर्यस्य संदृशः ॥१०॥

अथर्ववेद ८।१।४

हे (पुरुष) जीव ! (अतः) इस अविद्या के पाश से तू (उत् क्राम) ऊपर उठ, (मा अव पत्थाः) नीचे मत गिर। (मृत्योः) मृत्यु की (पड्वीशम्) बेड़ियों को (अवमुञ्चमानः) छुड़ाता हुआ (अस्मात्) इस (लोकात्) लोक या जीवन से (मा छित्थाः) सम्बन्ध मत तोड़ और (अग्ने) आचार्य और (सूर्यस्य च) सबके प्रेरक परमेश्वर की शक्तियों का (संदृशः) भले प्रकार दर्शन कर।

उद्यानं ते पुरुष नावयानं जीवातुं ते दक्षतातिं कृणोमि।
आ हि रोहेममृतं सुखं रथमथ जिर्विर्विदथमा वदासि ॥११॥

अथर्ववेद ८।१।६

हे (पुरुष) जीव ! मनुष्य ! (ते) तेरी (उद्यानम्) उन्नति हो। (न अव-यानम्) अवनति न हो। (ते) तेरे (जीवातुम्) 'जीवन को मैं (दक्षतातिम्) बलयुक्त (कृणोमि) करता हूँ। तू (इमम्) इस (अमृतम्) अमृतरूप सौ वर्ष के जीवन से युक्त (रथम्) भोगों के आयतन रूप देह को (सुखम्) सुखपूर्वक (हि) निश्चय से (आ रोह) धारण कर और तू (जिर्विः) जीर्ण होकर बुढ़ापे में भी (विदथम्) अपने ज्ञानमय अनुभव का (आवदासि) सर्वत्र उपदेश कर।

उत्तिष्ठत सं नह्यध्वमुदाराः केतुभिः सह।
सर्पा इतरजना रक्षांस्यमित्राननु धावत ॥१२॥

अथर्ववेद ११।१०।१

हे (उदाराः) ऊपर से शत्रुओं पर शस्त्रों का वर्षण करने हारे वीर योद्धाओ ! आप लोग (केतुभिः सह) अपने-अपने चिन्हों से युक्त झण्डे सहित (उत्तिष्ठत) उठ खड़े हो और (सं नह्यध्वम्) युद्ध के लिए कमर कस कर तैयार हो जाओ। हे (सर्पाः) सर्पो ! सर्प के समान विषैले शस्त्रों का प्रयोग करने वालो या शत्रु के छिद्रों में प्रवेश करने वाले पुरुषो ! हे (इतरजना) इतर लोगो ! हे (रक्षांसि) रक्षाकारी लोगों ! तुम सब लोग (अमित्रान् अनु धावत) शत्रुओं पर चढ़ाई करो।

ज्ञानाज्ञान सूक्त

पावका नः सरस्वती वाजेभिर्वाजिनीवती ।
यज्ञं वष्टु धियावसु ॥१॥

ऋग्वेद १।३।१०

(वाजेभिः) बलों, ज्ञानों, ऐश्वर्यों और अन्नों से (वाजिनीवती) वल, ज्ञान, ऐश्वर्य अन्नादि को सिद्ध करने वाली क्रिया से युक्त (पावका) सबको पवित्र करने वाली (सरस्वती) शुद्ध जलों से युक्त नदी के समान उत्तम ज्ञानमयी और गुरु परम्परा से बहने वाली वेद वाणी और उसको धारण करने वाले विद्वान् जन (धियावसुः) परस्पर संग, उत्तम कर्म और ज्ञान के ऐश्वर्य को धारण करने वाले होकर यज्ञ, शिल्प व्यवहार, विद्याभ्यास और राष्ट्र को (वष्टु) प्रकाशित करें।

केतुं कृण्वन्नकेतवे पेशो मर्या अपेशसे ।
समुषद्भिरजायथाः ॥२॥

ऋग्वेद १।६।३

हे परमेश्वर ! हे राजन् ! हे विद्वान् ! हे (मर्याः) मनुष्यो ! तू (अकेतवे) अज्ञानी के अज्ञान को नाश करने के लिए उसको (केतुम्) विशेष ज्ञान और (अपेशसे) सुवर्णादि रहित धनहीन पुरुष के दारिद्रय को नाश करने के लिये (पेशः) सुवर्णादि धन (कृण्वन्) प्रदान करता

हुआ (उषद्‌भिः) सूर्य जिस प्रकार उषाकालों सहित उदय को प्राप्त होता है उसी प्रकार (उषद्‌भिः) प्रजा के अज्ञान और पाप दोषों को नष्ट कर डालने वाले विद्वान् और वीर पुरुषों सहित (अजायथाः) सामर्थ्यवान् प्रबल और प्रसिद्ध हो। हे (मर्याः) मनुष्यों ! आप लोग भी उसका सत्संग करो।

नू नो अग्न ऊतये सबाधसश्च रातये।
अस्माकासश्च सूरयो विश्वा आशास्तरीषणि ॥३॥

ऋग्वेद ५।१०।६

हे (अग्ने) अग्रणी नामक ! (सबाधसः) शत्रुपीड़क उपायों में कुशल, (अस्माकासः) हमारे वीर लोग (नः ऊतये) हमारी रक्षा (रातये च) और ऐश्वर्य दान के लिए हों और (सूरयः) विद्वान् लोग भी (विश्वाः आशाः) सब दिशाओं और सब कामनाओं को (तरीषणि) पार करने में समर्थ हों।

परिषद्यं ह्यरणस्य रेक्णो नित्यस्य रायः पतयः स्याम।
न शेषो अग्ने अन्यजातमस्त्यचेतानस्य मा पथो वि दुक्षः ॥४॥

ऋग्वेद ७।४।७

(अरणस्य) ऋण से रहित, पुरुष का (रेक्णः) धन (परिषद्यम्) पर्याप्त होता है, इसलिए हे (अग्ने) तेजस्वी विद्वान् ! हम लोग (नित्यस्य) नित्य, स्थायी (अरणस्य) ऋण और रण, संग्राम, लड़ाई-झगड़े आदि से मुक्त (रायः) धनैश्वर्य के भी (पतयः) स्वामी (स्याम) हों। क्योंकि ऋण लिया और लड़ाई-झगड़े में पड़ा हुआ धन स्थायी नहीं होता। वह पराया होने से हाथ से निकल जाता है। इसी प्रकार (अरणस्य) जिसके उत्पन्न करने में रमण अर्थात् स्वयं वीर्याधान नहीं किया ऐसे पुरुष (रेक्णाः) अन्य के वीर्य सेचन से उत्पन्न सन्तान भी (परि-सद्यं) त्याज्य ही होता है। क्यों ? क्योंकि (अन्य-जातम् शेषः) दूसरे से प्राप्त किया धन और पुत्र दोनों ही (न अस्ति) नहीं के बराबर है। इसलिए हे विद्वान् ! पराये का धन और पराये का पुत्र तो (अचेतानस्य) ना समझ का ही होता है। अविद्वान्, अप्रयत्नशील पुरुष दूसरे के धन और पुत्र को अपना समझ बैठते हैं। वस्तुतः है विद्वान् ! तू (पथः मा वि दुक्षः) सन्मार्गों को दूषित मत कर। अर्थात् सन्तान उत्पन्न करने और परिश्रम से धनोपार्जन करने आदि के शास्त्रीय उपायों पर दोषारोपण मत कर। अथवा (अचेतानस्य)

अनजान, अल्पायु शिशु 'नाबालिग' के (पथ:) प्राप्त करने योग्य धनादि को (मा वि दुक्ष:) दूषित मत कर, उस पर भी अपना अधिकार आदि जमाने की कुटिल चेष्टा न कर। अथवा (परिषद्यं रेक्ण: अन्यजातं च शेष: न अस्ति) परिषद् अर्थात् जन सभा, धार्मिक सभा आदि का धन और दूसरे से उत्पन्न पुत्र दोनों ही नहीं के समान हैं। वे अपने नहीं होते। हम (अरणस्य नित्यस्व रेक्ण: पतय: स्याम) झगड़े, विवाद से रहित स्थायी धन के स्वामी हों। (अचेतानस्य पथ: मा वि दुक्ष:) अनजान मूर्ख के मार्गों को पाखण्डादि से दूषित मत करो।

य आपिर्नित्यो वरुण प्रियः सन्त्वामागांसि कृणवत्सखा ते।

मा त एनस्वन्तो यक्षिन्भुजेम यन्धिष्मा विप्रः स्तुवते वरूथम् ॥५॥

ऋग्वेद ७।८८।६

हे (वरुण) सर्वश्रेष्ठ प्रभो! राजन्! तू (नित्य:) सदा का (आपि:) वन्धु (प्रिय:) प्रिय (सन्) होकर हमें प्राप्त है उस (त्वाम्) तेरे प्रति (ते सखा) तेरा मित्र यह जीव (आगांसि कृणवत्) नाना अपराध करता है। हे (यक्षिन्) यक्ष अर्थात् पूजा करने वाले भक्तजनों के स्वामिन्! हम लोग (ते) तेरे ऐश्वर्य का (एनस्वन्त:) पापी होकर (मा भुजेम) भोग न करें। तू (विप्र:) मेधावी, गुरु के समान (स्तुवते) स्तुतिशील को (वरूथं यन्धि) वरण करने और दु:खों, अज्ञानों को दूर करने योग्य उत्तम गृह, सुख, ज्ञान और बल दे।

यथा वशन्ति देवास्तथेदसत्तदेषां नकिरा मिनत्।

अरावा चन मर्त्यः ॥६॥

ऋग्वेद ८।२८।४

(देवा: यथा वशन्ति) विद्वान्, तेजस्वी, उत्तमजन जैसा चाहते हैं। (तेषां) उनकी वह इच्छा (तथा इत् असत्) वैसी ही सफल होती है, (मर्त्य: अरावा चन) अदानशील, मूर्ख मनुष्य (तेषां नकि: आमिनत्) उनका कुछ भी नहीं बिगाड़ सकता।

अभि वेना अनूषतेयक्षन्ति प्रचेतसः।

मज्जन्त्यविचेतसः ॥७॥

ऋग्वेद ६।६४।२१

(वेना: अभिअनुषत) रक्षक पुरुष उसकी स्तुति करते हैं।

(प्र-चेतस:) उत्तम चित्त वाले (इयक्षन्ति) उसकी पूजा करते हैं। (अविचेतस:) मिथ्या बुद्धि वाले जन (मज्जन्ति) डूब जाते हैं।

अक्षण्वन्तः कर्णवन्तः सखायो मनोजवेष्वसमा बभूवः।
आदघ्नास उपकक्षास उ त्वे ह्रदाइव स्नात्वा उ त्वे ददृश्रे ॥८॥

ऋग्वेद १०।७१।७

(अक्षण्वन्त:) आँखों वाले और (कर्णवन्त:) कानों वाले (सखाय:) मित्र भी (मन:-जवेषु) मन के वेगों अर्थात् मन द्वारा जानने या अनुभव करने योग्य ज्ञानों में (असमा: बभूव:) एक समान नहीं होते। जिस प्रकार (ह्रदा:) भूमि पर कोई जलाशय (आदघ्नास:) थोड़ी गहराई के होते हैं, (त्वे उ) और कोई (उप-कक्षास:) कांख तक गहरे जल के होते हैं और (स्नात्वा: उ त्वे) और कुछ स्नान करने, डूबने योग्य गहरे जल के भी होते हैं इसी प्रकार मनुष्यों में भी ज्ञान की (ददृश्रे) दृष्टि से तारतम्य होता है।

अहमेव स्वयमिदं वदामि जुष्टं देवेभिरुत मानुषेभिः।
यं कामये तंतमुग्रं कृणोमि तं ब्रह्माणं तमृषिं तं सुमेधाम् ॥९॥

ऋग्वेद १०।१२५।५

(अहम् एव) मैं परमेश्वर (इदं स्वयं वदामि) यह स्वयं उपदेश करता हूँ जिसका (देवेभि: उत मानुषेभि:) विद्वान् और मननशील जन (जुष्टम्) प्रेमपूर्वक श्रवण एवं मनन करते हैं। मैं (यं कामये) जिस-जिस को चाहता हूँ (तं तं) उस-उस को (उग्रम्) बलवान् (कृणोमि) करता हूँ और जिसको चाहता हूँ (तं ब्रह्माणं कृणोमि) उसको ब्रह्मा, चतुर्वेदवित् बनाता हूँ और (तम् ऋषिं) जिसको चाहता हूँ उसको ऋषि और (तं सु-मेधाम्) जिसको चाहता हूँ उसको उत्तम बुद्धि से युक्त करता हूँ।

ग्रावाणो अप दुच्छुनामप सेधत दुर्मतिम्।
उस्राः कर्तन भेषजम् ॥१०॥

ऋग्वेद १०।१७५।२

हे (ग्रावाण:) उत्तम उपदेशको और शत्रुमर्दक वीरो! आप लोग (दुच्छुनाम्) दु:खदायी विपत्ति को और दु:खकारिणी अविद्या को (अप सेधत) दूर करो। (दुर्मतिम् अप सेधत) दुष्टमति वाले को वा दुष्ट-बुद्धि और विपरीत मति को दूर करो और आप लोग (उस्रा:) उत्तम

मार्ग में गमन करने वाली किरणों के तुल्य होकर (भेषजम् कर्तन) रोग-ताप को दूर करने का उपाय करो।

देवस्य सवितुर्मतिमासवं विश्वदेव्यम्।
धिया भगं मनामहे ॥११॥

यजुर्वेद २२।१४

(देवस्य) सुखों के दाता, (सवितुः) राजा एवं उत्पादक, परमेश्वर के (मतिम्) ज्ञान विज्ञान का और (विश्वदेव्यम्) समस्त विद्वानों के हितकारी, (आसवम्) समस्त ऐश्वर्यों के उत्पादक (भगम्) ऐश्वर्य का (धिया) धारणावती बुद्धि से हम (मनामहे) मनन करते हैं।

त्वे ऽअग्ने स्वाहुत प्रियासः सन्तु सूरयः।
यन्तारो ये मघवानो जनानामूर्वान् दयन्त गोनाम् ॥१२॥

यजुर्वेद ३३।१४

हे (स्वाहुत) उत्तम पदार्थों और अन्नों को प्राप्त करने हारे (अग्ने) तेजस्विन्! (ये) जो (सूरयः) सूर्य के समान तेजस्वी, विद्वान् (यन्तारः) स्वयं जितेन्द्रिय अथवा (जनानां यन्तारः) मनुष्यों को नियम में रखने वाले (मघवानः) धन ऐश्वर्य से सम्पन्न होकर भी (गोनां ऊर्वान्) गौ आदि पशुओं के नाश करने वालों को (दयन्त) नाश करते एवं दण्ड देते हैं वे (त्वे) तेरे (प्रियासः) प्रिय (सन्तु) हों।

अन्धन्तमः प्र विशन्ति ये ऽविद्या मुपासते।
ततो भूय ऽइव ते तमो य उ विद्याया ँ रताः ॥१३॥

यजुर्वेद ४०।१२

(ये) जो लोग (अविद्याम्) अविद्या अर्थात् नित्य, पवित्र, सुख और आत्मा से भिन्न पदार्थों को नित्य, पवित्र, सुख और आत्मा (उपासते) करके जानते हैं, उसी प्रकार मिथ्या ज्ञान में मग्न रहते हैं, वे (अन्धं तमः) गहरे अन्धकार में (प्रवशन्ति) प्रवेश करते हैं। वे बड़े अज्ञान में रहते हैं और (ये उ) जो (विद्यायाम् रताः) विद्या अर्थात् केवल शास्त्राभ्यास में हो (रताः) लगे रहते हैं वे (ततः भूयः इव) उससे भी अधिक (तमः) अज्ञानान्धकार में कष्ट पाते हैं।

मा गतानाम्मा दीधीथा ये नयन्ति परावतम् ।
आ रोह तमसो ज्योतिरेह्या ते हस्तौ रभामहे ॥१४॥

अथर्ववेद ८।१।८

हे पुरुषो ! (गतानाम्) शरीर को छोड़कर जाने वालों के लिये (मा आ दीधीथाः) विलाप मत कर, (ये) जो (परावतम्) दूसरे लोक में या दूसरे शरीर में (नयन्ति) पहुँच जाते हैं तू उनका (मा आदीधीथाः) ध्यान मत कर और तू (तमसः) अज्ञान अन्धकार से निकल कर (ज्योतिः) अमृत, पुण्यरूप प्रकाश की तरफ (आ रोह) चढ़, हम विद्वान लोग (ते हस्तौ) तेरे हाथों को (रभामहे) पकड़ते हैं।

बोधश्च त्वा प्रतीबोधश्च रक्षतास्वप्नश्च
त्वानवद्राणश्च रक्षताम् ।
गोपायंश्च त्वा जागृविश्च रक्षताम् ॥१५॥

अथर्ववेद ८।१।१३

(बोधः) तुझे बोध कराने वाला तेरा गुरु और (प्रतिबोधः) प्रत्येक पदार्थ का ज्ञान कराने वाला उपदेशक ये दोनों (त्वा रक्षताम्) तेरी रक्षा करें। (अस्वप्नः) न सोने वाला पहरेदार और (अनवद्राणः) सदाचारी आचार्य (गोपायन्) तेरा रक्षक और (जागृविः) तेरी रक्षा में सदा जागरणशील सन्तरी ये सब तेरी रक्षा करें।

जीवतां ज्योतिरभ्येह्यर्वाङा त्वा हरामि शतशारदाय ।
अवमुञ्चन् मृत्युपाशानशस्तिं द्राघीय
आयुः प्रतरं दधामि ॥१६॥

अथर्ववेद ८।२।२

हे पुरुष ! तू (जीवताम्) प्राण धारण करने वाले, जीते जागते लोगों की (ज्योतिः) प्रकाश या तेज को (अर्वाङ्) साक्षात् (अभिएहि) प्राप्त कर। (त्वा) तुझको मैं ईश्वर (शतशारदाय) सौ वर्ष की आयु भोगने के लिए जीवलोक में (आहरामि) लाता हूँ और (मृत्युपाशन्) मृत्यु के बन्धनों को और (अशस्तिम्) निन्दनीय गति को (अव-मुञ्चत्) दूर करता हुआ (ते) तुझे (प्र-तरम्) उत्कृष्ट (द्राघीयः) दीर्घ (आयुः) आयु (दधामि) प्रदान करता हूँ।

सत्यासत्य सूक्त

अपादेति प्रथमा पद्वतीनां कस्तद्वां मित्रावरुणा चिकेत ।
गर्भो भारं भरत्या चिदस्य ऋतं पिपर्त्यनृतं नि तारीत् ॥१॥

ऋग्वेद १।१५२।३

जिस प्रकार (पद्वतीनां) पैरों वाले जन्तुओं से सबसे प्रथम (अपात्) पाद रहित उषा आती है और (मित्रावरुणा) दिन और रात्रि इन दोनों में से उस रहस्य को कोई नहीं जानता और जिस प्रकार (गर्भः) दोनों को ग्रहण या धारण करने में समर्थ आदित्य (अस्य) इस जगत् के (भारं भरति) पोषणादि कार्य करता और (ऋतं) व्यक्त प्रकाश को पूर्ण करता और (अनृतं) असत्य अन्धकार को (नितारीत्) दूर कर देता है उसी प्रकार (पद्वतीनां प्रथमा) चरण, अध्याय, पाद, सर्ग आदि विभाग वाली वाणी से भी (प्रथमा) प्रथम, श्रेष्ठ (अपात्) चरणादि से रहित वाणी (एति) प्रकट होती है, हे (मित्रा-वरुणा) अध्यापक विद्यार्थी आदि जनो (वां) आप दोनों में से (कः तत् चिकेत) कौन इस रहस्य को जानता है ? कोई नहीं। तो भी (गर्भः) विद्याओं को ग्रहण करने में समर्थ विद्यार्थी जिज्ञासु पुरुष (अस्य) इस सन्मुख स्थित आचार्य के (भारं आ भरति) पोषित ज्ञान को सब प्रकार से धारण करता है। वही (ऋतं पिपर्त्ति) उसके सुविचारित सत्य ज्ञान को पूर्ण करता और (अनृतं नि तारीत्) अज्ञान अन्धकार और अनृत व्यवहार को दूर करना उससे पार हो जाता है ।

सत्यमूचुर्नर एवा हि चक्रुरनु स्वधामृभवो जग्मुरेताम् ।
विभ्राजमानांश्चमसाँ अहेवावेनत्त्वष्टा चतुरो ददृश्वान् ॥२॥

ऋग्वेद ४।३३।६

(नरः) मनुष्य (सत्यम् ऊचुः) सत्य बोलें (एव हि) उसी प्रकार वे (सत्यम् अनु चक्रुः) सत्य ज्ञान के अनुसार ही कर्म करें। (ऋभवः स्वधाम्) अति प्रकाशमान सूर्य की किरण जिस प्रकार जल को ग्रहण करती हैं उसी प्रकार (ऋभवः) 'ऋत' सत्य ज्ञान, तेज और ऐश्वर्य से प्रकाशित होने वाले विद्वान् जन (एताम् स्वधाम्) इस सत्यमयी 'स्वधा' आत्मा की धारण-पोषण शक्ति को (जग्मुः) प्राप्त हों। (ददृश्वान्) सत्य का दर्शन करने वाला (त्वष्टा) सूर्यवत् तेजस्वी विद्वान् पुरुष (अह इव) निश्चय से, सदा ही (चतुरः चमसान्) भोग करने योग्य धर्म, अर्थ, काम, मोक्ष इन चारों को ही मेघ के तुल्य, भोग्य पदार्थों के दाता, अन्नवत् और (विभ्राजमानान्) विशेष कान्ति से चमकते हुए देखें और उनकी (अवेनत्) कामना करें।

यो मा पाकेन मनसा चरन्तमभिचष्टे अनृतेभिर्वचोभिः ।
आप इव काशिना संगृभीता असन्नस्त्वासत इन्द्र वक्ता ॥३॥

ऋग्वेद ७।१०४।८

हे (इन्द्र) ऐश्वर्यवन् ! हे दुष्टों के नाशकारिन् ! (यः) जो (पाकेन मनसा) परिपक्व = दृढ़, सत्ययुक्त ज्ञान वा चित्त से अथवा (पाकेन = वाच) उत्तम सत्य वचन और (मनसा) उत्तम ज्ञान सहित (चरन्तम्) आचरण करने वाले (मा) मुझ पर (अनृतेभिः वचोभि) असत्य वचनों द्वारा (अभि-चष्टे) आक्षेप करता है वह (असन्) असत्य का (वक्ता) कहने वाला (काशिना संगृभीताः आपः इव) मुट्ठी में लिए जलों के समान (नः) हमारे लिए (असन् असत) नहीं-सा होकर नष्ट हो।

स्रक्वे द्रप्सस्य धमतः समस्वरन्नृतस्य योना समरन्त नाभयः ।
त्रीन्त्स मूर्ध्नो असुरश्चक्र आरभे सत्यस्य नावः सुकृतमपीपरन् ॥४॥

ऋग्वेद ९।७३।१

(स्रक्वे) सर्जन करने योग्य विराट् जगत् में (धमतः द्रप्सस्य) रस स्वरूप प्रभु के जगत् का निर्माण करते हुए, (ऋतस्य योना) तेज और ज्ञान के आश्रय उस प्रभु में (योना नाभयः) गृह में तन्तुओं के तुल्य ही

समस्त (नाभयः) बद्ध जीव (सम् अस्वरन्) एक साथ स्तुति करते और (सम् अरन्त) संगत होते हैं। (सः असुरः) जीवों को प्राणों के देने वाले उस प्रभु ने (आरभे) कार्य करने के लिए (मूर्ध्नः) सिर के भी (त्रीन् चक्रे) तीन प्रमुख भाग बनाये। (सत्यस्य नावः) ये सत्य की नौकायें (सुकृतम्) शुभ कर्मकारी को (अपीपरन्) पार कर देती हैं।

सा मा सत्योक्तिः परिपातु विश्वतो द्यावा च यत्र ततनन्नहानि च।
विश्वमन्यन्निविशते यदेजति विश्वाहापो विश्वाहोदेति सूर्यः ॥५॥

ऋग्वेद १०।३७।२

(यस्य) जिसके आश्रय (द्यावा च अहानि च) दिन और रात्रियाँ भी (ततनन्) उत्पन्न होती हैं, (यद् एजति) जो चल रहा है वह (अन्यत् विश्वम्) जड़ से भिन्न चेतन भी जिसके आश्रय (निविशते) बसा है और जिसके आश्रय पर (आपः विश्वाहा) नदी, समुद्रादि और समस्त प्रजायें स्थित हैं, (विश्वाहा सूर्यः उदेति) जिसके आश्रय पर सूर्य उदित होता है (सा सत्योक्तिः) वह सत्य वचन (मा विश्वतः परिपातु) मेरी सब प्रकार से रक्षा करें।

सत्येनोत्तभिता भूमिः सूर्येणोत्तभिता द्यौः।
ऋते नादित्यास्तिष्ठन्ति दिवि सोमो अधिश्रितः ॥६॥

ऋग्वेद १०।८५।१

(सत्येन) सत्य से (भूमिः) उत्पादन करने और धारण करने वाली पृथिवी और उसके तुल्य स्त्री और प्रकृति शक्ति (उत्-तभिता) ऊपर थामी जाती है, धारण की जाती है। (सूर्येण) सूर्य के द्वारा (द्यौः) प्रकाशक तेज वाली उषा (उत्-तभिता) धारित होती है। (आदित्याः) वर्ष के बारह मास जो आदित्य अर्थात् सूर्य और पृथिवी के द्वारा उत्पन्न होते हैं वे भी (ऋतेन) सत्य द्वारा (तिष्ठन्ति) स्थिर होते हैं। (दिवि) आकाश में (सोमः) प्राणियों का उत्पादक सूक्ष्म जलीय और तेजस तत्व (ऋतेन) सूर्य के तेज के द्वारा (अधि-श्रितः) ऊपर पाता है। पुरुष जो विवाह करना चाहता है। उसे सूर्य के समान तेजस्वी तथा दिन के पूर्व भाग के समान अनुराग, तेज, स्नेह आदि के द्वारा आकर्षक होना चाहिये।

व्रतेन दीक्षामाप्नोति दीक्षयाप्नोति दक्षिणाम् ।
दक्षिणा श्रद्धामाप्नोति श्रद्धया सत्यमाप्यते ॥७॥

यजुर्वेद १९।३०

(व्रतेन) सत्यभाषण, ब्रह्मचर्य आदि नियम पालन से (दीक्षाम् आप्नोति) पुरुष दीक्षा को प्राप्त करता है। (दीक्षमा) दीक्षा से (दक्षिणाम् आप्नोति) प्रतिष्ठा और राजलक्ष्मी को प्राप्त होता है। (दक्षिणा) प्रतिष्ठा या शक्ति से (श्रद्धाम् आप्नोति) सत्य धारण करने की क्षमता को प्राप्त होता है। (श्रद्धया सत्यम् आप्यते) श्रद्धा से सत्य प्राप्त किया जाता है।

हिरण्मयेन पात्रेण सत्यस्यापिहितं मुखम् ।
यो ऽसावादित्ये पुरुषः सो ऽसावहम् । ओ३म् खं ब्रह्म ॥८॥

यजुर्वेद ४०।१७

(हिरण्मयेन) हित और रमणीय ज्योतिमय स्वर्णाम्बर (पात्रेण) पात्र द्वारा (सत्यस्य) आत्मा और परमात्म-तत्व का सत्य स्वरूप (अपिहितम्) ढका हुआ (मुखम्) मुख ज्ञानियों द्वारा खोला जाता है। (यः) जो (असौ) वह (आदित्ये) प्राण में (पुरुषः) शक्तिमान् प्रकाशकर्त्ता है (असौ अहम्) वह ही मैं हूँ। (ओ३म्) सब संसार की रक्षा करने हारा वह (खम्) आकाश के समान व्यापक, अनन्त और आनन्दमय है और वही (ब्रह्म) गुण, कर्म, स्वभाव में सबसे बड़ा है।

यदुवक्थानृतं जिह्वया वृजिनं बहु ।
राज्ञस्त्वा सत्य धर्मणो मुञ्चामि वरुणादहम् ॥९॥

अथर्ववेद १।१०।३

हे राजन्! (यद्) जो भी तू (जिह्वया) जिह्वया वाणी से (अनृतं) असत्य, अयथार्थ, (उववथा) बोलता है वह (बहु) बहुत ही बड़ा (वृजिनं) पाप है, उसको त्याग देना चाहिए। (अहम्) मैं सत्यधर्म का उपदेष्टा राजपुरोहित (त्वा) तुझे यथोचित् शिक्षा देकर उस (सत्यधर्मणः) सत्यस्वरूप सच्ची धर्म व्यवस्था करने हारे नियामक (वरुणात्) सर्वश्रेष्ठ (राज्ञः) राजा और परमेश्वर के आगामी दण्ड से (मुञ्चामि) छुड़ाता हूँ।

इदं विद्वानाञ्जन सत्यं वक्ष्यामि नानृतम् ।
सनेयमश्वं गामहमात्मानं तव पूरुष ॥१०॥

अथर्ववेद ४।६।७

हे (आ-अञ्जन) अञ्जन के समान भीतरी आँख खोल देने वाला ज्ञान ! (इदं विद्वान्) इस सब बात को जानता हुआ मैं (सत्यं वक्ष्यामि) सत्य ही बोलूँ (न अनृतम्) झूठ न बोलूँ । हे (पुरुष) ज्ञानमय आत्मन् ! विद्वान् !(तव) तेरे लिये (अश्वं गाम्) अश्व और गौ और (आत्मानं) अपने को भी (अहं) मैं (सनेयम्) समर्पित कर दूँ पर तेरी अवश्य रक्षा करूँ ।

ऋतस्य पन्थामनु पश्य साध्वङ्गिरसः सुकृतो येन यन्ति ।
तेभिर्याहि पथिभिः स्वर्गं यत्रादित्या मधु भक्षन्ति
तृतीये नाके अधि वि श्रयस्व ॥११॥

अथर्ववेद १८।४।३

(ऋतस्य) सत्यस्वरूप प्रजापति के उस (पन्थाम्) मार्ग को (साधु) भली प्रकार (अनु पश्य) साक्षात् कर (येन्) जिससे (सुकृतः) उत्तम रूप से योगादि कर्म करने हारे (अंगिरसः) ज्ञानी पुरुष (यन्ति) जाते हैं । (तेभिः) उन (पथिभिः) मार्गों से हे पुरुष ! तू (स्वर्गम्) सुखमय उस स्वर्ग लोक को (याहि) प्राप्त हो (यत्र) जहाँ (आदित्याः) अखण्ड ब्रह्म के पुत्र रूप परम योगी, आदित्य के समान तेजस्वी पुरुष (मधु) ब्रह्ममय, अमृत, अभय, आनन्द का (भक्षयन्ति) भोग करते हैं । हे पुरुष ! तू (तृतीये) उस तीर्णतम, सबसे उत्कृष्ट, (नाके) सर्व दुःख रहित, निःश्रेयस पद में (अधि वि श्रयस्व) अपने आपको प्रतिष्ठित कर ।

पाप विमोचक सूक्त

सं पूषन्नध्वनस्तिर व्यंहो विमुचो नपात् ।
सक्ष्वा देव प्र णस्पुर ॥१॥

ऋग्वेद १।४२।१

हे (पूषन) सबके पालन-पोषण करने हारे सूर्य और पृथिवी के समान सबके रक्षक तथा पोषक ! तू (अध्वन:) कठिन मार्गों से (सं तिर) भी अच्छी प्रकार पार पहुँचा दे। हे (विमुच: नपात्) विविध पदार्थों और सुखों को प्रजा पर न्यौछावर करने वाले, मेघ के समान उदार पुरुषों को नष्ट न होने देने वाले राजन् ! तू (अंह: वि तिर:) पाप और रोग पीड़ा से मुक्त कर। हे (देव) प्रकाशवन् ! दानशील ! तू (न: पुर:) हमारे आगे (प्र सक्ष्व) मार्ग दर्शक रूप में रह। अथवा—(अध्वन: सं वि तिर) मार्ग को पार कर और हे (नपात् अंह: विमुच:) प्रजा को न गिरने देने वाले ! तू पाप और दुःख से मुक्त कर।

यो न: पूषन्नघो वृको दु:शेव आदिदेशति ।
अप स्म तं पथो जहि ॥२॥

ऋग्वेद १।४२।२

हे (पूषन) प्रजा के पोषक ! (य:) जो (अघ:) पापी (वृक:) दूसरों के धनों का चोर, (दु:शेव:) दु:खदायी होकर (न:) हम पर (आदिदेशति) शासन करता है (तं) उसको तू (पथ:) हमारे मार्ग से कांटे के समान (अप जहि) दूर उखाड़ फेंक।

अप त्यं परिपन्थिनं मुषीवाणं हुरश्चितम् ।
दूर मधि स्रुतेरज ।।३।।

ऋग्वेद १।४२।३

हे राजन् ! तू (परिपन्थिनम्) दूसरे पर आक्रमण करने के लिए मार्ग से हटकर छिपने वाले और मार्ग में जाते हुए, पर आक्रमण करने वाले, (मुषीवाणम्) चोरी से मूसे के समान दूसरे के घर में सैंध लगाकर चुराये धन को ले भागने वाले, (हुरः चितम्) नाना प्रकार की कुटिल चालों से या झपट कर दूसरे के पदार्थों को हर लेने वाले, (त्यं) इन चार प्रकार के चोरों को (स्रुतेः) मार्ग से (दूरम् अधि अप अज) बलपूर्वक शासन द्वारा दूर कर ।

त्वं तस्य द्वयाविनो ऽघशंसस्य कस्य चित् ।
पदाभि तिष्ठ तपुषिम् ।।४।।

ऋग्वेद १।४२।४

हे राजन् ! (त्वं) तू (द्वयाविनः) आँख के सामने देखते-देखते और पीठ पीछे दोनों प्रकार से पदार्थ चुराने वाले, (अघशंसस्य) पाप और हत्यादि करने की घात में लगे, (कस्य चित्) क्या तेरा करके चुराने वाले (तस्य) उस नाना प्रकार के दुष्ट पुरुष के (तपुषिम) प्रजा को सन्ताप देने वाले गण के (पदा) ऊपर पैर रखकर, उन पर बलपूर्वक शासन करके (अभितिष्ठ) उसका मुकाबला कर, उनको वीरतापूर्वक दबा ।

आ तत्ते दस्र मन्तुमः पूषन्नवो वृणीमहे ।
येन पितृनचोदयः ।।५।।

ऋग्वेद १।४२।५

हे (दस्र) दुष्टों के नाश करने हारे ! हे (मन्तुमः) उत्तम ज्ञान और मनन सामर्थ्य वाले ! हे (पूषन्) प्रजा के पोषक राजन् ! (येन) जिस शासन-बल से तू (पितृन्) माता-पिता के समान प्रजा के पालक अधिकारी पुरुषों को (अचोदयः) प्रेरित करता है, हम (ते) तेरे (तत्) उस (अवः) प्रजा के रक्षक तथा व्यवहार को (वृणीमहे) चाहते हैं ।

अथा नो विश्वसौभग हिरण्यवाशीमत्तम ।
धनानि सुषणा कृधि ॥६॥

ऋग्वेद १।४२।६

हे (विश्वसौभग) समस्त श्रेष्ठ सुखप्रद ऐश्वर्यों के स्वामिन् ! हे (हिरण्यवाशीमत्तम) सबसे अधिक हित और प्रिय वाणी के बोलने हारे परमेश्वर ! और सुन्दर सुवर्ण और लोहादि धातु के बने शस्त्रास्त्रों से सम्पन्न राजन् ! उत्तम वाणी से युक्त विद्वान् ! (अथ) तू (नः) हमें उत्तम शिल्पी के समान (सु-सना) सुख से प्रदान करने योग्य (धनानि) धन और ऐश्वर्य (कृधि) प्रदान कर ।

अति नः सश्चतो नय सुगा नः सुपथा कृणु ।
पूषन्निह क्रतुं विदः ॥७॥

ऋग्वेद १।४२।७

हे (पूषन्) समस्त जगत् के पोषक परमेश्वर ! राष्ट्र प्रजा के पोषक राजन् ! विद्वान् ! (नः) हम लोगों को (सुगा) सुख से जाने योग्य (सुपथा) उत्तम मार्ग से (अति कृणु) सब विघ्न बाधाओं से पार कर । और हमें (सश्चतः कृणु) अपने उद्देश्यों तक पहुँचने वाला बना । (इह) इस संसार में तू ही (क्रतुम्) कर्त्तव्यों और ज्ञानों को (विदः) जानता और बनाता है, हमें भी आकर ज्ञान करा । तू उन सब कर्त्तव्यों और विज्ञानों को स्वयं (विदः) जान और जना ।

अभि सूयवसं नय न नवज्वारो अध्वने ।
पूषन्निह क्रतुं विदः ॥८॥

ऋग्वेद १।४२।८

हे (पूषन्) सबको अन्नादि से परिपुष्ट करने हारे प्रभो ! राजन् ! (सूयवसं) जिस प्रकार पशुपाल अपने पशुओं को उत्तम चारे से भरे खेत में चराने के लिए ले जाता है उसी प्रकार तू भी हमें (सूयवसम् अभि नय) उत्तम यव आदि अन्नों और औषधियों से युक्त देश को पहुँचा जिससे (अध्वने) मार्ग का (नवज्वारः) कोई नया संताप, पीड़ा, थकान आदि (न) हो । (इह) संसार में तू ही (क्रतुं) कर्म सामर्थ्य और ज्ञान को भी (विदः) प्राप्त कर और करा ।

शग्धि पूर्धि प्र यंसि च शिशीहि प्रास्युदरम् ।
पूषन्निह क्रतुं विदः ॥९॥

ऋग्वेद १।४२।९

हे (पूषन्) सर्व पोषक ! राजन् ! सभा-सेनाध्यक्ष ! तू (शग्धि) सर्व कार्य करने में समर्थ है। तू हमें (पूर्धि) समस्त ऐश्वर्यों से पूर्ण कर। (प्र यंसि च) तू ही अच्छी प्रकार हमें सब ऐश्वर्य दान कर। (शिशीहि) तू अच्छी प्रकार तीक्ष्ण तेजस्वी हो। तू ही हमारे (उदरम्) पेटों को अन्न से (प्रासि) पूर्ण कर। तू ही (क्रतुम् विदः) समस्त कर्त्तव्यों और ज्ञानों को जान और जना।

न पूषणं मेथामसि सूक्तैरभि गृणीमसि ।
वसूनि दस्ममीमहे ॥१०॥

ऋग्वेद १।४२।१०

हम लोग (पूषणं) सबके पोषक पुरुष को (न मेथामसि) न मारें, उसे पीड़ित न करें। प्रत्युत (सूक्तैः) उत्तम वचनों से (अभि-गृणीमसि) उससे वार्तालाप करें। (दस्मम्) शत्रु के नाश करने वाले एवं दर्शनीय, अति उत्तम पुरुष से हम (वसूनि) ऐश्वर्यों की (ईमहे) याचना करें (पूषणं सूक्तैः अभिगृणीमसि, दस्मं मेथामसि) अपने पोषक से मधुर वचन कहें और हिंसक को मारें।

चरित्र-जीवन निर्माण सूक्त

दूराविहेव यत्सत्यरुणप्सुरशिश्वितत् ।
वि भानुं विश्वधातनत् ॥१॥

ऋग्वेद ८।५।१

(यत्) जिस प्रकार (अरुणप्सुः) अरुण कान्तियुक्त उषा (दूरात् सती) दूर रहकर भी (इह इव) यहाँ ही, समीप विद्यमान के समान (अशिश्वितत्) जगत् को श्वेत कर देती है और (विश्व-धा) सब प्रकार से (भानुं) कान्ति को (वि अतनत्) फैलाती है उसी प्रकार (अरुणप्सुः) अरुण कान्तियुक्त, स्वस्थ, (दुरात् सती) दूर देश में रहती हुई भी सच्चरित्र स्त्री (इह इव) जैसे यहाँ ही हो, ऐसे गृहवत् ही (अशिश्वितत्) अपने उज्ज्वल चरित्र से जगत् को शुभ्र करती है और (विश्वधा) सब प्रकार से (भानुं वि अतनत्) अपनी कीर्ति, दीप्ति को फैलाती है ।

अस्मभ्यं वाजिनीवसू मघवद्भ्यश्च सप्रथः ।
छर्दिर्यन्तमदाभ्यम् ॥२॥

ऋग्वेद ८।५।१२

हे (वाजिनी वसू) अन्न, ऐश्वर्य, बल आदि उत्पन्न करने वाली क्रिया, सेना आदि को धनवत् पालने वाले वीर, विद्वान् स्त्री पुरुषो ! आप दोनों (अस्मभ्यम्) हमारे और (मघवद्भ्यश्च) उत्तम धन सम्पन्न पुरुषों के लिए (अदाभ्यम् छर्दिः) न नाश होने योग्य, गृह प्रदान करो ।

भद्रं मनः कृणुष्व वृत्रतूर्ये येना समत्सु सासहः ।
अव स्थिरा तनुहि भूरि शर्धतां वनेमा ते अभिष्टिभिः ।।३।।

ऋग्वेद ८।१९।२०

हे नायक ! प्रभो ! तू (वृत्रतूर्ये) दुष्टों के नाशकारी संग्राम में (येन) जिस ज्ञान और बल से (समत्सु) संग्रामों में (सासहः) शत्रुओं को पराजित करता है, तू उसी (मनः) मन और ज्ञान को (भद्रं) हमें सुखदायक कर और (शर्धतां) बल हिंसक शत्रुओं के (स्थिरा) दृढ़ सैन्यों को भी (अव तनुहि) नीचे कर, नाश कर । जिससे हम (अभिष्टिभिः) अभिलषित सुखों से (ते वनेम) तेरी सेवा करें ।

त्रातारो देवा अधि वोचता नो मा नो निद्राईशत मोत जल्पिः ।
वयं सोमस्य विश्वह प्रियासः सुवीरासो विदथमा वदेय ।।४।।

ऋग्वेद ८।४८।१४

हे (देवाः) ज्ञानप्रद विद्वान् पुरुषो ! आप लोग (त्रातारः) रक्षक होकर (नः अधि वोचत) हमें उपदेश करो, जिससे (नः) हम पर (निद्रा) निन्दित कुत्सित गति, निद्रा आलस्यादि (मा ईशत) अधिकार न करे (उत) और (जल्पि मा ईशत) बकवास करने की बुरी आदत वा बकवासी पुरुष हम पर वश न करे। (विश्वहा) सदा. सब दिनों, (वयं) हम (सोमस्य प्रियासः) सोम, पुत्र, शिष्य, ऐश्वर्यवान् आदि के प्रिय और (सु-वीरासः) उत्तम वीर्यवान्, पुत्रवान्, विद्वान् होकर (विदथम् आवदेम) ज्ञान का उपदेश, कथोपकथन करें ।

कुह स्थः कुह जग्मथुः कुह श्येनेव पेतथुः ।
अन्ति षद्भूतु वामवः ।।५।।

ऋग्वेद ८।७३।४

(कुह स्थः) आप कहीं रहो, (कुह जग्मथुः) कहीं भी जाते हो, (कुह श्येना इव पेतथुः) कभी भी दो श्येनों के समान वेग से, उत्तम आचार चरित्रवान् होकर गमन करो। (वाम् अन्ति सद् अवः भूतु) तुम दोनों के समीप सदा सत् ज्ञान, रक्षा बल हो ।

अहमिन्द्रो न परा जिग्य इद्धनं न मृत्यवे ऽव तस्थे कदा चन ।
सोममिन्मा सुन्वन्तो याचता वसु न मे पूरवः सख्ये रिषाथन ॥६॥

ऋग्वेद १०।४८।५

(अहम् इन्द्रः) मैं ऐश्वर्यवान् प्रभु (धनं न इत् परा जिग्ये) धन से कभी हार नहीं सकता और (न मृत्यवे अव तस्थे) न मृत्यु के नीचे कभी अपने को हारा हुआ पाता हूँ। हे विद्वानों आप लोग (सोमं सुन्वन्तः) सर्वोत्पादक प्रभु की उपासना करते हुए (मा इत् याचन) मुझसे नाना याचना किया करो। हे (पूरवः) मनुष्यों ! आप लोग (मे सख्ये न रिषाथन) मेरे सख्य भाव में रह के कभी विनाश को प्राप्त न होओ।

विश्वकर्मा त्वा सादयत्वन्तरिक्षस्य
पृष्ठे व्यचस्वतीं प्रथस्वतीमन्तरिक्षं
यच्छान्तरिक्षं दृ ँ हान्तरिक्षं मा हि ँ सीः ।
विश्वस्मै प्राणायापानाय व्यानायो-
दानाय प्रतिष्ठायै चरित्राय ।
वायुष्टवाभिपातु मह्या स्वस्त्या छर्दिषा
शन्तमेन तया देवतयाङ्गिरस्वद् ध्रुवा सीद ॥७॥

यजुर्वेद १४।१२

हे राजशक्ते ! (व्यचस्वतीम्) विविध रूपों से विस्तृत और (प्रथस्वतीम्) विस्तृत ऐश्वर्य वाली (त्वा) तुझको (विश्वकर्मा) समस्त उत्तम कार्यों के करने हारा पुरुष राजा (अन्तरिक्षस्य पृष्ठे) अन्तरिक्ष के समान सबके बीच पूजनीय पुरुष के पृष्ठ पर अर्थात् उसके बल या आश्रय पर स्थापित करे। तू स्वयं (अन्तरिक्षम्) अपने भीतर विद्यमान पूज्य पुरुष या प्रजा के रक्षक राजा को (यच्छ) बल प्रदान कर (अन्तरिक्षं दृंह) उसी 'अन्तरिक्ष' नाम राजा को दृढ़ कर। (अन्तरिक्षं) उस अन्तरिक्ष पद पर विद्यमान सर्वरक्षक राजा का (मा हिंसीः) विनाश न कर। (विश्वस्मै) सबके (प्राणाय) प्राण, (अपानाय) अपान, (व्यानाय) व्यान, (उदानाय) उदान (प्रतिष्ठाय) प्रतिष्ठा और (चरित्राय) चरित्र की रक्षा के लिए (वायुः) वीर्यवान्, पुरुष (मह्यास्वस्त्या) बड़ी भारी सम्पत्ति या शक्ति से (शंतमेन) शान्तिदायक (छर्दिषा) तेज और पराक्रम से

(त्वा अभि पातु) तेरी रक्षा करे। (तथा देवतया) उस देह स्वरूप पुरुष के साथ तू (अंगिरस्वत्) अग्नि के समान तेजस्विनी (ध्रुवा सीद) स्थिर होकर रहे।

यज्जाग्रतो दूरमुदैति दैवं तदु सुप्तस्य तथैवैति ।
दूरङ्गमं ज्योतिषां ज्योतिरेकं तन्मे मनः शिवसंकल्पमस्तु ॥८॥

यजुर्वेद ३४।१

(यत्) जो (मनः) मन, संकल्प विकल्पकारी अन्तःकरण (जाग्रतः) जागते हुए पुरुष का (दूरम् उद् आ एति) दूर-दूर के पदार्थों तक जाता है और (सुप्तस्य) वही सोते हुए पुरुष का (तथा एव) उसी प्रकार (एति) उसके भीतर आ जाता है। (तत्) वह (उ) निश्चय से (ज्योतिषाम्) प्रकाश वाले ग्रह नक्षत्रादि के बीच सूर्य के समान, नाना विषयों को प्रकाशित करने वाले इन्द्रियगण के बीच में (दूरंगमम्) दूर तक पहुँचने वाला (ज्योतिः) प्रकाशक साधन है। वही (दैवम्) देव अर्थात् विषयों में रमण करने वाले आत्मा का ही (एकम्) एकमात्र भीतरी साधन है। (तत्) वह मेरा (मनः) मन, ज्ञान का साधन सदा (शिवसंकल्पम्) शुभ संकल्प वाला (अस्तु) हो।

ज्याके परि णो नमाश्मानं तन्वं कृधि ।
वीडुर्वरीयोऽरातीरप द्वेषांस्या कृधि ॥९॥

अथर्ववेद १।२।२

हे (ज्याके) धनुष की डोरी के समान शर का प्रक्षेप करने हारी सभापते ! सैने ! (नः) हमारे लिए (परि नम) उत्तम व्यवस्था का सम्पादन कर, या सेनापति की आज्ञा का पालन कर, हे इन्द्र ! (तन्वं) विस्तृत राष्ट्र के शरीर को (अश्मानं) चट्टान के समान दृढ़, अजेय (कृधि) बना, या अपने विस्तृत व्यूह को अभेद्य कर। हे इन्द्र ! राजन् ! सेनापते ! (वीडुःवरीया) सेना के वीर भट्टों को स्तम्भन करने हारा तू (अरातीः) कर न देने हारे (द्वेषांसि) और द्वेष रखने वाले शत्रुओं को (अप आ कृधि) परे हटा।

अयं लोकः प्रियतमो देवानामपराजितः ।
यस्मै त्वमिह मृत्यवे दिष्टः पुरुष जज्ञिषे ।
स च त्वानु ह्वयामसि मा पुरा जरसो मृथाः ।।१०।।

अथर्ववेद ५।३०।१७

(अयं) यह (अपरा-जितः) किसी से न हारने वाला, सदा बलवान् (प्रिय-तमः) अत्यन्त प्रिय, रुचिकर (देवानाम्) देवगण इन्द्रियों का (लोकः) शरीर है। हे पुरुष ! हे देहपुरी के वासी जीवात्मन् ! (यस्मै) जिसके कारण (त्वम्) तू (इह) इसमें रह कर (मृत्यवे दिष्टः) मृत्यु के भाग्य में पड़ा हुआ ही (जज्ञिषे) उत्पन्न होता है, अर्थात् शरीर त्यागने के लिए ही शरीर का ग्रहण करता है। इसलिए (सः च) वह तू इस देह से असंग है। (त्वा अनु-ह्वयामसि) हम विद्वान् मुक्तजन तुझको बार-बार फिर-फिर चेताते हैं कि (जरसः पुरा) बुढ़ापे से पहले (मा मृथाः) प्राणों को मत छोड़।

मा गतानामा दीधीथा ये नयन्ति परावतम् ।
आ रोह तमसो ज्योतिरेह्या ते हस्तौ रभामहे ।।११।।

अथर्ववेद ८।१।८

हे पुरुष ! (गतानाम्) शरीर को छोड़कर जाने वालों के लिए (मा आ दीधीथाः) विलाप मत कर, (ये) जो (परावतम्) दूसरे लोक में या दूसरे शरीर में (नयन्ति) पहुँच जाते हैं तू उनका (मा आदीधीथाः) ध्यान मत कर और तू (तमसः) अज्ञान अन्धकार से निकल कर (ज्योतिः) अमृत, पुण्यरूप प्रकाश की तरफ (आ रोह) चढ़। हम विद्वान् लोग (ते हस्तौ) तेरे हाथों को (रभामहे) पकड़ते हैं।

इहेमाविन्द्र सं नुद चक्रवाकेव दम्पती ।
प्रजयैनौ स्वस्तकौ विश्वमायुर्व्यश्नुताम् ।।१२।।

अथर्ववेद १४।२।६४

हे (इन्द्र) परमेश्वर ! (इमौ) इन दोनों (चक्रवाका इव) चकवा-चकवी के समान परस्पर प्रेम से बँधे (दम्पती) पति-पत्नी भाव से मिले हुए जोड़े को (सं नुद) प्रेरणा कर कि (एनौ) वे दोनों (सु-अस्तकौ) उत्तम घर में रहते हुए (प्रजया) अपनी प्रजा सहित (विश्वम् आयुः) पूर्ण आयु को (वि अश्नुताम्) नाना प्रकार से भोग प्राप्त करें।

प्र च्यवस्व तन्वं सं भरस्व मा ते गात्रा वि हायि मो शरीरम् ।
मानो निविष्टमनुसंविशस्व यत्र भूमेर्जुषसे तत्र गच्छ ॥१३॥

अथर्ववेद १८।३।९

हे पुरुष ! तू (तन्वम्) अपने शरीर को (प्र-च्यवस्व) उद्यमी बना और उसको (सं भरस्व) फिर भली प्रकार से पुष्ट कर। (ते) ताकि तेरे (गात्रा) नाना अंग (मा विहायि) छूट न जाये, (मो शरीरम्) शरीर भी तेरा न छूट जाये। जहाँ तेरा (मनः) मन (निविष्टम्) लगा है वहीं उसे प्रविष्ट कर। (भूमेः) भूमि लोक के (यत्र) जिस भाग में तुझे (जुषसे) प्रेम लगा है (तत्र) वहाँ तू (गच्छ) चला जा।

विवस्वान् नो अमृतत्वे दधातु परैतु मृत्युरमृतं न ऐतु ।
इमान् रक्षतु पुरुषाना जरिम्णो मो ष्वेषामसवो यमं गुः ॥१४॥

अथर्ववेद १८।३।६२

(विवस्वान्) विविध ऐश्वर्यों से युक्त राजा, सूर्य वा परमेश्वर (नः) हमें (अमृतत्वे) दीर्घ जीवन के मार्ग में (दधातु) बनाये रखें। (मृत्युः) प्राणों का देह से छूटने की घटना (परा एतु) दूर चली जाय। (अमृतम्) सैकड़ों वर्षों का जीवन (नः) हमें (एतु) प्राप्त हो। वह प्रभु (इमान् पुरुषान्) इन राष्ट्रवासी पुरुषों की (आ जरिम्णः) शरीर के स्वयं जीर्ण हो जाने के काल तक (रक्षतु) रक्षा करे। (एषाम्) इनके (असवः) प्राण (यमम्) मृत्यु के (मो सु गुः) वश न हों।

दान सूक्त

एवा हि ते विभूतय ऊतय इन्द्र मावते ।
सद्यश्चित्सन्ति दाशुषे ॥१॥

ऋग्वेद १।८।९

(एव) निश्चय से, हे (इन्द्र) ईश्वर ! (ते विभूतयः) तेरी ये विविध ऐश्वर्यों से युक्त विभूतियाँ सब (मावते) मेरे जैसे (दाशुषे) अपने को आत्म समर्पण कर देने वाले जीव की (ऊतये) रक्षा, व्यवहार साधन, ज्ञानवर्धन और ऐश्वर्य बढ़ाने के लिये ही (सद्यः चित्) सदा ही, (सन्ति) होती हैं।

अधा मन्ये श्रत्ते अस्मा अधायि वृषा चोदस्व महते धनाय ।
मा नो अकृते पुरुहूत योनाविन्द्र क्षुध्यद्भयो वय आसुतिं दाः ॥२॥

ऋग्वेद १।१०४।७

हे (पुरुहूत) अनेक प्रजाओं से सत्कार करके योग्य राजन् ! (अघ) मैं भी (ते अस्मै) तेरा (मन्ये) मान करता हूँ। (ते) तेरे कार्य और वचन (श्रत् अधायि) सत्य और आदर योग्य माने जायें। तू (वृषा) सब सुखों को वर्षाने हारा, मेघ और सूर्य के समान उदार, बलवान् होकर (महते धनाय) बड़े भारी ऐश्वर्य प्राप्त करने के लिए (चोदस्व) हमें प्रेरित कर। हे राजन् (नः) हमें (अकृते योनौ) बे बने, बिन सजे, टूटे फूटे, ढहे घर में (मा दाः) मत रख और (नः क्षुध्यद्भ्यः) हम में से भूख से पीड़ित जनों को (वयः) अन्न और (आसुतिम्) दूध आदि पान करने योग्य पदार्थ (दाः) प्रदान कर।

मा पृणन्तो दुरितमेन आरन्मा जारिषुः सूरयः सुव्रतासः ।
अन्यस्तेषां परिधिरस्तु कश्चिदपृणन्तमभि संयन्तु शोकाः ।।३।।

ऋग्वेद १।१२५।७

(सूरयः) विद्वान् (सुव्रतासः) उत्तम रीति से व्रत, धर्माचरण और नियम मर्यादाओं का पालन करने हारे, धार्मिक गृहस्थ (पृणन्तः) भरण पोषण करने वाले पुरुष (दुरितम्) दुःख या दुखावस्था प्राप्त करने वाले (एनः) पापाचरण की (मा आरन्) न करें और वे (मा जारिषुः) जार के समान दूसरों की स्त्री आदि पर लम्पटता आदि कुकर्म न करें। अथवा (मा जारिषुः) बुद्धि, बल और आयु का नाश न करें । (तेषाम्) उनमें से (कश्चित् अन्यः) कोई एक पुरुष उनका (परिधिः अस्तु) सब ओर से रक्षा करने हारा हो। परन्तु (अपृणन्तम्) पालन-पोषण न करने वाले को (शोकाः) शोक दुःख और पीड़ायें (अभि संयन्तु) सब तरफ से प्राप्त हों।

देवंदेवं राधसे चोदयन्त्यस्मद्र्यक्सूनृता ईरयन्ती ।
व्युच्छन्ती नः सनये धियो धा यूयं पात स्वस्तिभिः सदा नः ।।४।।

ऋग्वेद ७।७९।५

हे विदुषि ! सौभाग्यवती ! तू (देवं-देवं) प्रत्येक विद्वान् पुरुष को (राधसे) प्रदान योग्य धन (चोदयन्ती) स्वीकार करने की प्रार्थना करती हुई और (अस्मद्रयक्) हमारे प्रति (सूनृता) उत्तम वचन कहती हुई, (वि उच्चन्ती) विशेष गुण प्रकट करती हुई, (नः सनये) हमें दान देने के लिए (धि यः धाः) नाना लौकिक वैदिक कर्म और शुभ संकल्प कर। हे विद्वान् स्त्री पुरुषो ! (यू यं नः स्वस्तिभिः सदा पात) आप लोग हमारी उत्तम-उत्तम उपायों से सदा रक्षा करो।

विदद्यत्पूर्व्यं नष्टमुदीमृतायुमीरयत् ।
प्रेमायुस्तारीदतीर्णम् ।।५।।

ऋग्वेद ८।७९।६

(यत्) जो (पूर्व्यम् नष्टम्) पहले के तृप्त या नष्ट हुए को (विदत्) पाता या जान लेता है, वह (ईम्) उस ज्ञान को (ऋतायुम्) सत्य ज्ञान के अभिलाषी पुरुष के प्रति (ईरयत्) उपदेश करे। वह मानो, (ईम्) उसको (अतीर्णम्) अप्रदत्त (आयुः) नया जीवन (प्रतारित्) प्रदान करता है। विद्या दान करना भी नव जीवन देने के समान है।

उच्चा दिवि दक्षिणावन्तो अस्थुर्ये अश्वदाः सह ते सूर्येण ।
हिरण्यदा अमृतत्वं भजन्ते वासोदाः सोम प्र तिरन्त आयुः ॥६॥

ऋग्वेद १०।१०७।२

(दक्षिणावन्तः दिवि उच्चा अस्थुः) दानशील पुरुष सदा (दिवि) आकाश में तारों के तुल्य (उच्चा अस्थुः) ऊँची स्थिति को प्राप्त होते हैं। (ये) जो (अश्व-दाः) अपनी विद्या के बल से राष्ट्र या जन-समाज को वेग से जाने वाले अश्व, रथ और अन्य वेगवान् साधन प्रदान करते हैं (ते) वे (सूर्येण सह) सूर्य के समान (अस्थुः) स्थिति को प्राप्त होते हैं। (हिरण्य-दाः) सुवर्ण आदि का दान देने वाले (अमृतत्वं भजन्ते) अमृत का सेवन करते हैं। हे (सोम) विद्वान् (वासः-दाः) वस्त्र देने वाले वा सज्जनों को उत्तम गृह आदि आश्रय देने वाले (आयुः प्र तिरन्ते) अपनी दीर्घ आयु प्राप्त करते हैं।

न भोजा मम्रुर्न न्यर्थमीयुर्न रिष्यन्ति न व्यथन्ते ह भोजाः ।
इदं यद्विश्वं भुवनं स्वश्चैतत्सर्वं दक्षिणैभ्यो ददाति ॥७॥

ऋग्वेद १०।१०७।८

(भोजाः) भोजन आदि द्वारा सत्कार करने वाले जन (न मम्रुः) कभी मरण को प्राप्त नहीं होते । (नि-अर्थम्) निकृष्ट अर्थ या नीच गति को (न ईयुः) प्राप्त नहीं होते, (न रिष्यन्ति) कभी पीड़ित नहीं होते, वे (भोजाः) दाताजन (न व्यथन्ते) क्लेश को प्राप्त नहीं होते । (इ यत् विश्वं भुवनं) यह जो समस्त उत्पन्न जगत् और (ऐतत सर्वं स्वः) यह समस्त सुख है यह सब (एभ्यः दक्षिणा ददाति) उनको दक्षिणा ही प्रदान करती है।

न वा उ देवाः क्षुधमिद्वधं ददुरुताशितमुप गच्छन्ति मृत्यवः ।
उतो रयिः पृणतो नोप दस्यत्युतापृणन्मर्डितारं न विन्दते ॥८॥

ऋग्वेद १०।११७।१

(देवाः) विद्वान् लोग (क्षुधम् इत वधं न ददुः) भूख के कारण दूसरे को नाश करने का दण्ड न देवें (उतं) क्योंकि (आशितम्) खाने वाले को भी (मृत्यवः) मरणकारी अवसर (उप गच्छन्ति) प्राप्त होते हैं।

(उतो) और (पृणतः रयिः) अन्यों को पालने वाले का धन (न उप दस्यति) कभी नाश को प्राप्त नहीं होता। (उत) और (अपृणन्) दूसरों को न पालने वाला (मर्डितारं न विन्दते) अपने प्रति सुख देने और दया करने वाले को नहीं पाता।

या आध्राय चकमानायपित्वो ऽन्नवान्त्सन्रफितायोपजग्मुषे ।
स्थिरं मनः कृणुते सेवते पुरोतो चित्स मर्डितारं न विन्दते ।।९।।

ऋग्वेद १०।११७।२

(यः) जो (आध्राय) भरण पोषण करने योग्य निर्बल को, और (पित्वः चकमानाय) अन्नों को चाहने वाले बुभुक्षित याचक को और (रफिताय) पीड़ित दुःखी को और (उप-जग्मुषे) समीप प्राप्त अतिथि को देखकर (अन्नवान् सन्) स्वयं अन्न वाला होकर भी न देने के लिए अपना (मनः स्थिरं कृणुते) मन स्थिर कर लेता है, और (पुरा सेवते) उसको देने के पहले खा लेता है, (उतो न चित्) वह (मडितारं न विन्दते) अपने पर दया करने वाले को नहीं पाता।

स इद्भोजो यो गृहवे ददात्यन्नकामाय चरते कृशाय ।
अरमस्मै भवति यामहूता उतापरीषु कृणुते सखायम् ।।१०।।

ऋग्वेद १०।११७।३

(यः गृहवे ददाति) जो ग्रहण करने वाले उत्तम पात्र को अन्न आदि देता है, और (यः) जो (अन्न-कामाय चरते ददाति) अन्न की अभिलाषा से भिक्षा आचरण करने वाले को अन्नदान करता है और जो (कृशाय) निर्बल को अन्न देता है, (अस्मै यामहूतौ) उसको यज्ञ के निमित्त (अरं भवति) बहुत अधिक प्राप्त होता है, (सः इत् ओजः) वही सच्चा रक्षक है, (उत) और वह (अपरीषु सखायं कृणुते) परायों में वा शत्रु आदि की प्रजाओं में भी अपना सहायक प्राप्त कर लेता है।

न स सखा यो न ददाति सख्ये सचाभुवे सचमानाय पित्वः ।
अपास्मात्प्रेयान्न तदोको अस्ति पृणन्तमन्यमरणं चिदिच्छेत् ।।११।।

ऋग्वेद १०।११७।४

(सः न सखा) वह मित्र नहीं (यः) जो (सचा-भुवे) साथ रहने वाले को, और (सचमानाय) सेवा करने वाले (सख्ये) मित्र को (पित्वः न ददाति)

अन्न नहीं देता। (तत् ओकः न अस्ति) वह रहने योग्य घर के समान नहीं होता (अस्मात् अप) मनुष्य उससे दूर ही रहते हैं। (अन्यम् पृणन्तम्) शत्रु भी यदि पालन करता है तो लोग उसको भी (अरणं चित् इच्छेत्) उत्तम स्वामी के तुल्य चाहने लगते हैं।

ईशा वास्यमिद ँ सर्वं यत्किञ्च जगत्यां जगत्।
तेन त्यक्तेन भुञ्जीथा मा गृधः कस्य स्विद्धनम् ॥१२॥

यजुर्वेद ४०।१

(जगत्याम्) इस सृष्टि में (यत् किंच) जो कुछ भी (जगत्) चर, प्राणी, जंगम संसार या गतिशील हैं (इदम्) वह (सर्वम्) सब (ईशा) सर्वशक्तिमान् परमेश्वर से (वास्यम्) व्याप्त है। (तेन त्यक्तेन) उस त्याग किये हुए, या (तेन) उस परमेश्वर से (त्यक्तेन) दिए हुए पदार्थ से (भुञ्जीथाः) भोग, सुख अनुभव कर। (कस्य स्वित्) किसी के भी (धनम्) धन लेने की (मा गृधः) चाह मत कर। अथवा (धनं कस्य स्वित् ?) यह धन किसका है ? किसी का नहीं। इसलिए (मा गृधः) लालच मत कर। अर्थात् धन का सदुपयोग यही है कि कामनाओं की पूर्ति के पश्चात् शेष धन को दान करते रहना। लालचवश तिजोरियों में वन्द करके नहीं रखना।

शतहस्त समाहर सहस्रहस्त सं किर।
कृतस्य कार्यस्य चेह स्फातिं समावह ॥१३॥

अथर्ववेद ३।२४।५

हे (शतहस्त) सैकड़ों हाथों श्रमिजनों के स्वामिन् ! और हे (सहस्र-हस्त) हजारों हाथों–श्रमिजनों के स्वामिन् ! (संकिरा) खेत में एक ही समय सर्वत्र बीज बखेर और (कृतस्य) अपने किये (कार्यस्य) कृषि-कार्य की (इह) उस उपजाऊ क्षेत्र में (स्फातिं) हमारी फसल को (सम आवह) प्राप्त कर। अथवा हे मानव ! तू सौ हाथों अर्थात् सौ प्रकार के साधनों से धन को कमा और हजार हाथों अर्थात् हजार प्रकार के दानादि साधनों से बखेर अर्थात् आगामी जीवन रूपी खेत के धन रूपी बीज को दान के द्वारा बोये।

त्वं ह्यङ्ग वरुण ब्रवीषि पुनर्मघेष्ववद्यानि भूरि ।
मो षु पणीरँभ्ये तावतो भूग्मा त्वा वोचन्नराधसं जनासः ॥१४॥

अथर्ववेद ५।११।७

(अंग वरुण) हे राजन् ! (त्वं हि ब्रवीषि) आपका यह उपदेश है कि (पुनः मघेषु) त्याग, त्याग कर पुनः-पुनः धन प्राप्त करने वाले लालची पुरुषों में (भूरि) बहुत से (अवद्यानि) निन्दा योग्य दोष होते हैं। हे वरुण ! प्रभो ! (एतावतः पणीन्) इन ऐसे व्यवहारिक पुरुषों की ओर (मो सु अभिभूत्) तू कभी अपने स्वरूप को प्रकट नहीं करता है। (जनासः) लोग (त्वा) तुझे (अराधसं) अराधनीय वा ऐश्वर्यहीन (मा वोचन्) नहीं कहते हैं।

आसीनासो अरुणीनामुपस्थे रयिं धत्त दाशुषे मर्त्याय ।
पुत्रेभ्यः पितरस्तस्य वस्वः प्र यच्छत त इहोर्जं दधात् ॥१५॥

अथर्ववेद १८।३।४३

हे (पितरः) राष्ट्र के पालक, माता-पिता, गुरुजन एवं वृद्ध पुरुषो ! आप लोग (अरुणीनाम्) लाल वर्ण वाली अर्थात् स्वस्थ माताओं या गौओं तथा पृथ्वियों के (उपस्थे) समीप, उसके आश्रय में (आसीनासः) रहते हुए, (दाशुषे) अन्न आदि देने वाले (मर्त्याय) मरणधर्मा पुरुष को (रयिं धत्त) धन प्रदान करो और (पितरः) पिता लोग जिस प्रकार (पुत्रेभ्यः) पुत्रों को धनादि प्रदान करते हैं उसी प्रकार आप लोग भी (वस्वः) धन (प्रयच्छत) प्रदान करो। (ते) हे नाना विभागों के अध्यक्ष अधिकारी पुरुषों ! आप लोग (इह) इस राष्ट्र में (ऊर्जम्) बलकारक अन्न (दधात्) प्रदान करो ।

प्रार्थना सूक्त

आश्रुत्कर्ण श्रुधी हवं नू चिद्दधिष्व मे गिरः ।
इन्द्र स्तोममिमं मम कृष्वा युजश्चिदन्तरम् ॥१॥

ऋग्वेद १।१०।९

हे (आश्रुत्कर्ण इन्द्र) सर्वत्र श्रवण करने वाले कानों से युक्त परमेश्वर ! तू (नु) निश्चय से (मे हवं) मेरी स्तुति को (श्रुधि) श्रवण करता है । तू (गिरः दधिष्व) मेरी स्तुति वाणियों को धारण कर, सुन । (मम युजः) मुझ समाहित चित्त वाले योगाभ्यासी साधक मित्र के (इमं स्तोमं चित्) इस स्तुति समूह को (अन्तरम्, कृष्व) भीतर कर अथवा (मम अन्तरं शुद्धं कृष्व) मेरे हृदय को शुद्ध कर ।

ता महान्ता सदस्पती इन्द्राग्नी रक्ष उब्जतम् ।
अप्रजाः सन्त्वत्रिणः ॥२॥

ऋग्वेद १।२१।५

(ता) वे दोनों वीर्यवान् अधिकारी पुरुष (इन्द्राग्नी) पूर्वोक्त इन्द्र और अग्नि (महान्ता) महान् पद, पराक्रम और वीर्य वाले (सदस्पती) राजसभा के पालक सभापति के तुल्य होकर (रक्षः) दुष्ट राक्षस पुरुषों को (उब्जतम्) झुका देवें, उनके क्रूर कर्मों को छुड़ाकर सरल स्वभाव बना दें और (अत्रिणः) प्रजा को लूट खसोट कर खाने वाले (अप्रजाः) प्रजा रहित (सन्तु) हों । अर्थात् उनके अगले आने वाले वैसे प्रजा नाशक पैदा न हों ।

यदिन्द्र चित्र मेहनास्ति त्वादातमद्रिवः ।
राधस्तन्नो विदद्वस उभयाहस्त्या भर ॥३॥

ऋग्वेद ५।३९।१

हे (अद्रिवः) सूर्यवत् अभेद्य एवं मेघों के समान उदार पुरुषों और दृढ़ सैनिकों के स्वामिन् ! हे (चित्र) पूज्य ! अद्भुत गुण, कर्म, स्वभाव ! हे (विदद् वसो) प्राप्त धन के स्वामिन् ! हे प्राप्त करने और ज्ञान करने वालों को बसाने और उनमें बसने वाले वा उनके धनों और प्राणों के स्वामिन् ! (मेहना) जिस प्रकार सूर्य वृष्टि लाता है उसी प्रकार हे (इन्द्र) ऐश्वर्यवन् ! (यद्) जो (मेहना) उत्तम दान देने वा वृष्टिवत् उदारता से देने योग्य धन वा ज्ञान है वह (त्वादातम्) सब तेरे ही द्वारा देने योग्य है। उन सबकी माता तू है (नः) हमें (तत्) वह (राधः) धनैश्वर्य तू (उभया हस्ति) दोनों हाथों से (आ भर) प्राप्त करा अर्थात् तू उदारता पूर्वक दोनों हाथों से दे और हम आदर पूर्वक दोनों हाथों से लें ।

स्वस्ति पन्थामनुचरेम सूर्याचन्द्रमसाविव ।
पुनर्ददताघ्नता जानता सं गमेमहि ॥४॥

ऋग्वेद ५।५१।१५

हम लोग (पन्थाम्) उत्तम मार्ग पर (स्वस्ति) सुखपूर्वक (अनुचरेम) एक-दूसरे के पीछे चलें और (सूर्या-चन्द्रमसौ-इव) हम स्त्री-पुरुष सूर्य और चन्द्र के समान अन्यों को सुख देने के लिए उत्तम आचरण का अनुष्ठान करें। (पुनः) बार-बार हम लोग (ददता) ज्ञान और ऐश्वर्य के देने वाले और (अघ्नता) व्यर्थ ताड़न, हिंसा और कठोर दण्ड न देने वाले (जानता) ज्ञानवान् पुरुष से (संगमेमहि) मिला करें, उसका सत्संग किया करें।

प्र ये गृहादममदुस्त्वाया पराशरः शतयातुर्वसिष्ठः ।
न ते भोजस्य सख्यं मृषन्ताधा सूरिभ्यः सुदिना व्युच्छान् ॥५॥

ऋग्वेद ७।१८।२१

(ये) जो लोग (त्वाया) तेरी कामना वा नीति से (गृहात्) गृह से निकल कर भी (अममदुः) बराबर प्रसन्न रहते हैं और (पराशरः) दुष्टों का नाशक (शत-यातुः) सैकड़ों वीरों को साथ लेकर चलने वाला

वा सैकड़ों दुष्टों को दण्डित करने वाला (वसिष्ठः) सर्वश्रेष्ठ जन, अर्थात् प्रमुख प्रजाजन ये सब और (ये) जो (ते भोजस्य) तुझ पालक राष्ट्र भोक्ता के (सख्यं) मित्र भाव को (न मृषन्त) नहीं भूलते या सहन नहीं करते और उन (सूरिभ्यः) विद्वानों के तू (सुदिना) शुभ दिन (वि उच्छान्) प्रकट कर जिससे वे और अधिक हर्षित हों।

नू मित्रो वरुणो अर्यमा नस्त्मने तोकाय वरिवो दधन्तु।
सुगा नो विश्वा सुपथानि सन्तु यूयं पात स्वस्तिभिः सदा नः ॥६॥

ऋग्वेद ७।६२।६

(नु) अवश्य, शीघ्र ही (मित्रः) स्नेहवान् और मरने से बचाने वाला सर्व मित्र विद्वान् (वरुणः) श्रेष्ठ पुरुष और (अर्यमा) न्यायकारी, दुष्टों का दमन करने हारा पुरुष (नः) हमारे (त्मने) अपने लिए (नः तोकाय) हमारे पुत्र के लिए भी (वरिवः) उत्तम धन और सेवा कार्य (दधन्तु) प्रदान करें। जिससे (नः) हमारे (विश्वा) सब कार्य (सुगा) सुगम और (सु-पथानि) उत्तम मार्ग युक्त (सन्तु) हों। हे विद्वान् जनों! (यूयं नः सदा स्वस्तिभिः पात) आप लोग हमारी सदा कल्याणकारी साधनों से रक्षा करें।

सखाय आ नि षीदत पुनानाय प्र गायत।
शिशुं न यज्ञैः परि भूषत श्रिये ॥७॥

ऋग्वेद ९।१०४।१

हे (सखायः) मित्रो (आ नि सीदत) आओ, चारों ओर घेरा लगाकर बैठ जाओ। (पुनानाय) पवित्रकर्त्ता प्रभु के लिए (प्र गायत) स्तुति करो। (शिशुं) बालक के तुल्य पवित्र, प्रभु को (श्रिये) ऐश्वर्य प्राप्ति के लिये (यज्ञैः परिभूषत) यज्ञों से सुशोभित करो, उसकी स्तुति करो।

सं मा तपन्त्यभितः सपत्नीरिव पर्शवः।
नि बाधते अमतिर्नग्नता जसुर्वेर्न वेवीयते मतिः ॥८॥

ऋग्वेद १०।३३।२

(सपत्नीः) सौतों के समान (पर्शवः) आत्मा से स्पर्श करने वाली कुवासनायें (मा अभितः तपन्ति) मुझे सब ओर से तपाती हैं। (अमतिः)

अज्ञान (मा नि बाधते) मुझे पीड़ित करता है और (नग्नता मा नि बाधते) नंगापन जैसे लज्जित, शीत, ग्रीष्मादि से पीड़ित करता है वैसे ही (नग्नतानि बाधते) हे प्रभो ! तेरी स्तुति योग्य वाणी का अभाव भी मुझे दुःख देता है। ऐसे ही (जसुः नि बाधते) सर्वनाशक मृत्यु का भय भी मुझे बेचैन कर रहा है। (वे न मतिः) हे प्रभो ! पक्षी के समान उत्तम ज्ञानी की (मतिः) शत्रु स्तम्भनकारिणी शक्ति और बुद्धि, (मा वे वीतये) मुझे निरन्तर प्राप्त हो।

पृथक् प्रायन्प्रथमा देवहूतयोऽकृण्वत श्रवस्यानि दुष्टरा।
न ये शेकुर्यज्ञियां नावमारुहमीर्मैव ते न्यविशन्त केपयः ॥९॥

ऋग्वेद १०।४४।६

(प्रथमाः) श्रेष्ठ (देव-हूतयः) ईश्वर के स्तुति करने वाले जन (पृथक्) अलग-अलग (प्र अग्मन्) आगे बढ़ जाते हैं। वे (श्रवस्यानि) श्रवण करने योग्य (दुस्तरा) अपूर्व कीर्तिजनक कर्म का सम्पादन कर लेते हैं। और (ये) जो (यज्ञियाम् नावम्) प्रभु की उपासनामयी नौका पर (आरुहम् न शेकुः) आरूढ़ नहीं हो सकते (ते) वे (केपयः) कुत्सित आचरणों में लिप्त रहकर (ईर्माइव नि अविशन्त) ऋणग्रस्त के तुल्य नीचे पड़े रहते हैं।

एवैवापागपरे सन्तु दूढ्योऽश्वा येषां दुर्युज आयुयुज्रे।
इत्था ये प्रागुपरे सन्ति दावने पुरूणि यत्र वयुनानि भोजना ॥१०॥

ऋग्वेद १०।४४।७

(एव एव) इस प्रकार (अपरे) दूसरे जो ब्रह्म की उपासना से रहित (दूढ्यः) दुष्ट-बुद्धि जन हैं (येषां) जिनके (युः युवः अश्वाः) कुमार्ग में जाने वाले अश्वों के तुल्य बलवान् इन्द्रियगण (आ युयुज्रे) इधर-उधर के विषयों में लगते हैं। वे (अपाग् एव एव सन्तु) दूर वा नीचे ही नीचे पतित (सन्तु) हो जाते हैं। (यत्र) जिसमें (पुरूणि वयुनानी) बहुत से ज्ञान और (पुरूणि भोजना) बहुत से ऐश्वर्य हैं उस (परे) ब्रह्म में जो (दावने सन्ति) दान देने के लिए सदा तत्पर हैं वे (इत्था) सचमुच (प्राक् सन्तु) आगे बढ़ने वाले होते हैं।

ककर्दवे वृषभो युक्त आसीदवावचीत्सारथिरस्य केशी ।
दुधेर्युक्तस्य द्रवतः सहानस ऋच्छन्ति ष्मा
निष्पदो मुद्गलानीम् ।।११।।

ऋग्वेद १०।१०२।६

(ककर्दवे) दुःख बन्धन को काटने के लिए (वृषभः) समस्त सुखों के वर्षाने वाले प्रभु को (युक्तः आसीत्) योग द्वारा समाहित चित्त से ध्यान किया जाता है। वह (केशीं) सूर्य के तुल्य नाना ज्ञानरश्मियों से सम्पन्न होकर (अस्य) इस जीव को (सारथिः) रथ संचालक के समान (अवावचीत्) स्पष्ट रूप से उपदेश करता है। (अनसा) प्राणशक्ति के साथ (द्रवतः) वेग से जाने वाले (युक्तस्य) योग द्वारा समाहित, (दुधेः) दुर्गम्य, (निष्पदः) ज्ञानक्षेत्र से दूर उस आत्म-तत्व की (मुद्गलानीम्) सुखदात्री परमानन्ददायक शक्ति को (अनसा सह ऋच्छन्ति) अपने प्राण ही के साथ साक्षात् करते हैं।

मयीदमिन्द्रऽइन्द्रियं दधात्वस्मान् रायो मघवानः सचन्ताम् ।
अस्माक ँ सन्त्वाशिषः सत्या नः सन्त्वाशिष ऽ उपहूता
पृथिवी मातोप मां पृथिवी माता ह्वयतामग्निराग्नीध्रात्
स्वाहा ।।१२।।

यजुर्वेद २।१०

हे (इन्द्रः) परमेश्वर (मयि) मुझमें (इदम्) प्रत्यक्ष (इन्द्रियम्) तेज और आत्मबल को (दधातु) धारण करावें। (अस्मान्) हमें (मघवानः) बल आदि से पूर्ण (रायः) ऐश्वर्य (सचन्ताम्) प्राप्त हों। (अस्माकम्) हमारी (आशिषः) कामनायें (सत्याः) सफल (सन्तु) हों। (पृथिवी माता) पृथिवी के समान अन्नदात्री, (माता) पालन करने वाली माता (उपहूता) आदर से युक्त हो और (पृथिवी माता) यह विशाल सुखदात्री माता (माम्) मुझको (उप ह्वयताम्) उपदेश कर और उसके पश्चात् (अग्नीध्रात्) ज्ञानोपदेशक आचार्य के स्थान से (अग्निः) ज्ञानी मुझे (स्वाहा) उपदेश करे।

दूतं वो विश्ववेदसं हव्यवाहममर्त्यम् ।
यजिष्ठमृञ्जसे गिरा ।।१३।।

सामवेद पू० १।१।२।२।१२

हे अग्ने (विश्ववेदसं) समस्त धनों के स्वामी, समस्त ज्ञान सम्पन्न

(हव्यवाहम्) समस्त भोग्य पदार्थों को प्राप्त करने वाले (अमर्त्यं) कभी न मरने वाले (दूतं) दूत के समान परोपकारी (यजिष्ठम्) यज्ञ करने वाले (वः) तुमको मैं (गिरा) वेदवाणी के द्वारा (ऋञ्जसे) अपने अनुकूल भजता हूँ आपकी साधना करता हूँ।

शं मे परस्मै गात्राय शमस्त्ववराय मे।
शं मे चतुर्भ्यो अंगेभ्यः शमस्तु तन्वे मम ॥१४॥

अथर्ववेद १।१२।४

(मे) मेरे (परस्मै) उत्कृष्ट (गात्राय) शरीर के उत्तम भाग अर्थात् सिर के लिए (शं) कल्याण और सुख हो। (मे) मेरे (अवराय) नीचे के भाग अर्थात् छाती, हाथ तथा पेट आदि को भी (शम् अस्तु) सुख हो। (मे) मेरे (चतुर्भ्यः) चारों (अंगेभ्यः) अंगों अर्थात् दो बाहु, दो टांगों को भी (शं) सुख हो। (मम) मेरे (तन्वे) समस्त शरीर को भी (शम् अस्तु) सुख हो। समाज के चारों वर्णों और शरीर के चारों भागों का कल्याण हो।

अदारसृद् भवतु देव सोमास्मिन् यज्ञे मरुतो मृडता नः।
मा नो विददभिभा मो अशस्तिर्मा नो विदद् वृजिना द्वेष्या या ॥१५॥

अथर्ववेद १।२०।१

हे (देव) प्रकाशमान ! हे (सोम) सेना के प्रेरक सेनापते ! हमारा शत्रु (अदारसृद्) हमारी स्त्रियों का मान भंग करने वाला न (भवतु) हो और (अस्मिन्) इस (यज्ञे) यज्ञ या संग्राम में (मरुतः) मरुद् गण, प्राण वीर भट और वैश्यगण (नः) हमें (मृडत्) सुख आनन्द दें। (अभिभाः) हमारे मुकाबले पर आने वाला शत्रु (नः) हमें (मा विदद्) न पा सके। (अशस्तिः) कीर्ति रहित शत्रु (मा उ) हमें न पा सके और (वृजिना) पापी और (या) जो (द्वेष्या) द्वेष करने हारे या द्वेष के कारण उत्पन्न पाप भी (नः) हमें (मा विदद्) न प्राप्त हों।

अपवासे नक्षत्राणामपवास उषसामुत।
अपास्मत् सर्वं दुर्भूतमप क्षेत्रियमुच्छतु ॥१६॥

अथर्ववेद ३।७।७

(नक्षत्राणाम्) नक्षत्रों के (अपवासे) अस्त हो जाने (उत) और

(उषसाम्) उषाकाल प्रभात वेला के भी (अपवासे) व्यतीत हो जाने पर (अस्मत्) हमारे शरीरों से (दुर्भूतं) कष्टदायक, (सर्वं) सब प्रकार का (क्षेत्रियं) शरीरगत रोग (अप उच्छतु) दूर हो जाय। अर्थात् सूर्य ज्योति ताप स्नान से निरोगता प्राप्त होती है।

मह्यं यजन्तां मम यानीष्टाकूतिः सत्या मनसो मे अस्तु।
एनो मा नि गां कतमच्चनाहं विश्वे देवा अभिरक्षन्तु मेह ॥१७॥

अथर्ववेद ५।३।४

(मम यानि इष्टानि) मेरे जो इष्ट-अभिलषित सुखदायक पदार्थ और यज्ञ कर्म हैं वे (मह्यं) मुझे (यजन्ताम्) प्राप्त हों और (मे मनसः) मेरे मन का (आ-कूतिः) दृढ़ संकल्प (सत्या अस्तु) सत्य हो। (अहम्) मैं (कतमत् चन) किसी भी (एनः) पाप को (मा निगाम्) प्राप्त न होऊँ। (विश्वे देवा) समस्त देव, विद्वान, पुरुष (मा) मेरी (इह) यहाँ (रक्षन्तु) रक्षा करें।

परोऽपेहि मनस्पाप किमशस्तानि शंससि।
परेहि न त्वा कामये वृक्षान् वनानि
सं चर गृहेषु गोषु मे मनः ॥१८॥

अथर्ववेद ६।४५।१

(मनः-पाप) हे मानसिक पाप, दुर्विचार! (परः अपेहि) दूर हट. तू (अशस्तानि) निन्दा योग्य कार्य करने को (किम्) क्यों (शंससि) कहता है। (परा इहि) चल परे हो। (न त्वाम् कामये) मैं तुझे नहीं चाहता। हे (मनः) मेरे मन! तू पाप से हटकर (वृक्षान् वनानि सं चर) हरे-हरे वृक्षों और वनों उपवनों में विहार कर और (गृहेषु गोषु सं चर) अपने घर की व्यवस्थाओं और गोपालन में तत्पर हो।

यथेन्द्रो द्यावापृथिव्योर्यशस्वान् यथाप ओषधीषु यशस्वतीः।
एवा विश्वेषु देवेषु वयं सर्वेषु यशसः स्याम ॥१९॥

अथर्ववेद ६।५८।२

(यथा) जिस प्रकार (इन्द्रः) परमेश्वर (द्यावापृथिव्योः) आकाश और पृथिवी के बीच (यशस्वान्) सर्वशक्तिमान् है और (यथा) जिस प्रकार

(आपः ओषधीषु) सब औषधियों में जल (यशस्वतीः) बल वाले हैं। (एवा) इसी प्रकार (विश्वेषु देवेषु) समस्त विद्वानों में और (सर्वेषु) सब जीवों में (वयम्) हम (यशसः) यशस्वी और बलवान् (स्याम) हों।

असंतापं मे हृदयमुर्वी गव्यूतिः ।
समुद्रो अस्मि विधर्मणा ॥२०॥

अथर्ववेद १६।३।६

(मे हृदयम्) मेरा हृदय (असंतापम्) संताप रहित हो। मेरी (गव्यूतिः) वाणी की गति या इन्द्रियों की पहुँच (उर्वी) विशाल हो और मैं (विधर्मणा) विशेष धारण सामर्थ्य से (समुद्रः अस्मि) समुद्र के समान विशाल, सर्व गुणरत्नों का आश्रय होऊँ।

सदाचार सूक्त

देवानां भद्रा सुमतिर्ऋजूयतां देवानां रातिरभिनो निवर्तताम्।
देवानां सख्यमुप सेदिमा वयं देवा न आयुः प्र तिरन्तु जीवसे ।।१।।

ऋग्वेद १।८९।२

(ऋजूयतां) सरल मार्ग से जाने वाले धर्मात्मा (देवा नाम्) विद्वानों की (भद्रा) कल्याण और सुख देने वाली (सुमतिः) उत्तम बुद्धि व ज्ञान (नः) हमें (नि वर्तताम्) सदा प्राप्त हों। (वयम्) हम (देवानाम्) दानशील, विजयी, उत्साही, तेजस्वी पुरुषों के (सख्यम्) मित्र भावों को (उप सेदिमा) सदा प्राप्त करें। वे (देवाः) विद्वान् जन (नः) हमारे (आयुः) जीवन को (जीवसे) दीर्घकाल तक जीवन के लिए (प्र तिरन्तु) खूब बढ़ावें। उसी प्रकार (ऋजूयताम्) ऋतु अनुकूल प्राप्त होने वाले या प्राण बल को धारण करने वाले अग्नि, जल, पृथिवी, सूर्य आदि दिव्य गुण वाले तेजस्वी पदार्थों का (सुमतिः) उत्तम स्तम्भन बल तथा धर्मात्मा विद्वानों की शुभ मति हमें प्राप्त हो, उनकी उत्तम (रातीः) दानशक्ति हमें प्राप्त हो। हम उनकी (सख्यम्) अनुकूलता को प्राप्त करें।

तृणस्कन्दस्य नु विशः परि वृङ्क्त सुदानवः।
ऊर्ध्वान्नः कर्त जीवसे ॥२॥

ऋग्वेद १।१७२।३

हे (सुदानवः) उत्तम दानशील पुरुषो ! आप लोग (तृणस्कन्दस्य) जो तृण के समान निर्बलों पर आक्रमण करने वाला अत्याचारी राजा है उसके (विशः) अधीन प्रजा को (परिवृङ्क्त) उससे बचाओ। (नः) हमारे (जीवसे) जीवन की रक्षा के लिए हमें (ऊर्ध्वान् कर्त्त) ऊँचा करो।

नू न इन्द्रावरुणा गृणाना पृङ्क्तं रयिं सौश्रवसाय देवा।
इत्था गृणन्तो महिनस्य शर्धोऽपो न नावा दुरिता तरेम ॥३॥

ऋग्वेद ६।६८।८

हे (इन्द्रावरुण) शत्रुहन्तः ! हे शत्रुवारक सेनापति एवं सैन्यवर्ग ! आप दोनों (देवा) विजयशील होकर (गृणाना) माता-पिता के तुल्य उत्तम-उत्तम आज्ञायें और उपदेश करते हुए, (सौश्रवसाय) उत्तम कीर्ति लाभ करने के लिए (रयिं पृङ्क्तम्) ऐश्वर्य प्राप्त करो। (इत्था) इस प्रकार सत्य-सत्य (महिनस्य शर्धः) महान् पुरुष, प्रभु के बल की हम लोग (गृणन्तः) स्तुति करते हुए (नावा अपः न) नाव से जलों के समान (नावा) उत्तम स्तुति और तेरी प्रेरणा से हम लोग (दुरिता) सब पापों और कष्टों से (तरेम्) पार हो जायें।

न यातव इन्द्र जूजुवुर्नो न वन्दना शविष्ठ वेद्याभिः।
स शर्धदर्यो विषुणस्य जन्तोर्मा शिश्नदेवा अपि गुर्ऋतं नः ॥४॥

ऋग्वेद ७।२१।५

हे (इन्द्र) ऐश्वर्यवन् ! सूर्यवत् तेजस्विन् ! (यातवः) पीड़ा देने वाले, वा आक्रमणकारी लोग (नः न जुजुवुः) हम तक न पहुँचें, हमारा घात न करें। हे (शविष्ठ) बलशालिन ! (वेद्याभिः) ज्ञान प्राप्त करने की क्रियाओं से वे पीड़ादायक लोग (नः वन्दना) हमारे स्तुत्य उपदेश योग्य उत्तम कार्यों तक भी (न जूजुवः) न पहुँचें न नाश करें। (अर्यः) स्वामी, राजा (विषुणस्य जन्तोः) विस्तृत फैले प्रजाजन को (शर्धत्) उत्साहित करे और (शिश्न-देवः) उपस्थन्द्रिय से क्रीड़ा विलास करने वाले, कामी, नीच पुरुष (नः) हमारे (ऋतं) सत्य व्यवहार, धर्म, कर्म, वेद ज्ञान और हमारे अन्न जल को भी (मा अपि गुः) प्राप्त न हों।

अगोरुधाय गविषे द्युक्षाय दस्म्यं वचः।
घृतात्स्वादीयो मधुनश्च वोचत ॥५॥

ऋग्वेद ८।२४।२०

हे विद्वान् लोगो (अगो-रुधाय) जो पुरुष आप लोगों की वाणी पर रोक न करे और (गविषे) जो आपकी वेद-वाणी को चाहे, उस (द्युक्षाय) तेजस्वी पुरुष के लिए (घृतात् स्वादीय:) घी से भी अधिक स्वाद, शान्तिप्रद और (मधुनः च) मधु वा अन्न से भी अधिक मधुर, पुष्टिप्रद, बलप्रद (दस्म्यं वच:) दर्शनीय वा अज्ञान के नाशक वचन का (वोचत) उच्चारण करो।

अधः पश्यस्व मोपरि सन्तरां पादकौ हर।
मा ते कशप्लकौ दृशन् स्त्री हि ब्रह्मा बभूविथ ॥६॥

ऋग्वेद ८।३३।१९

हे स्त्री ! तू (अधः पश्यस्व) नीचे देख, विनयशील हो। (मा उपरि) ऊपर मत देख, उद्धत मत हो। (पादकौ) दोनों पैरों को (संतराम्) अच्छी प्रकार एकत्र कर रख, असभ्यता से पैर मत फैला। (ते) तेरे (कशप्लकौ मा दृशन्) टखनों को कोई भी न देखे। ऐसे विनयाचार से तू (स्त्रि हि) स्त्री होकर भी अवश्य (ब्रह्मा बभूविथ) वेदवेत्ता वा पूज्य हो सकती है।

त्वोतासस्तवावसा स्याम वन्वन्त आमुरः।
सोम व्रतेषु जागृहि ॥७॥

ऋग्वेद ९।६१।२४

हे (सोम) ऐश्वर्यवान् ! (त्वा-उतास:) तुझसे सुरक्षित होकर (तव अवसा) तेरे रक्षा-बल से हम (आमुर:) चारों ओर से मारने वाले शत्रुओं का (वन्वन्त:) विनाश करते हुए (स्याम) रहें। (व्रतेषु) हमारे उत्तम कामों में (जागृहि) सचेत हो।

अक्षेत्रवित्क्षेत्रविदं ह्यप्राट् स प्रैति क्षेत्रविदानुशिष्टः।
एतद्वै भद्रमनुशासनस्योत स्रुतिं विन्दत्यञ्जसीनाम् ॥८॥

ऋग्वेद १०।३२।७

(अक्षेत्रवित्) मार्ग को न जानने वाला (हि) अवश्य (क्षेत्रविदं

अप्राट्) मार्ग को जानने वाले पुरुष से पूछता है। (सः) वह (क्षेत्रविदं) क्षेत्रज्ञ विद्वान् से (अनुशिष्टः) शिक्षित होकर (प्र एति) उत्तम मार्ग को प्राप्त करता है (अनुशासनस्य) गुरु के अनुशासन का (एतत् वै भद्रम्) यही कल्याणदायक फल है कि वह अनुशासित, अज्ञ पुरुष भी (अञ्जसीनाम्) ज्ञान को प्रकाशित करने वाली वाणियों की (स्रुतिं) स्तुति को (विन्दति) प्राप्त करता है।

जाया तप्यते कितवस्य हीना माता पुत्रस्य चरतः क्वस्वित् ।
ऋणावा बिभ्यद्धनमिच्छमानोऽन्येषामस्तमुप नक्तमेति ॥९॥

ऋग्वेद १०।३४।१०

(कितवस्य) 'तेरा क्या' इस प्रकार अन्यों पर आक्षेप करके विचरने वाले, उच्छृंखल वा द्यूतव्यसनी पुरुष की (हीना) त्यागी हुई (जाया) स्त्री भी (तप्यते) दुःखित होती है और (क्वस्वित् चरतः) कहीं-कहीं विचरते व्यसनी पुत्र को (माता) माता भी (तप्यते) दुःखी होती है। वह (ऋणावा) ऋण ग्रस्त होकर (धनम् इच्छमानः) धन चाहता हुआ, (बिभ्यद्) भय करता हुआ, (नक्तम्) रात के समय (अन्येषाम् अस्तम्) औरों के घर चोरी के लिए (एति) जाता है।

अक्षैर्मा दीव्यः कृषिमित्कृषस्व वित्ते रमस्व बहु मन्यमानः ।
तत्र गावः कितव तत्र जाया तन्मे वि चष्टे सवितायमर्यः ॥१०॥

ऋग्वेद १०।३४।१३

हे (कितव) अभिमानी राजा! तू अधिक मद में आकर प्रजा को कह लेता है 'किं तव' तेरा क्या है, इसी से तू भी 'कितव' है। (अक्षैः मा दीव्यः) पासों से मत खेल, प्रत्युत (कृषिम् इत् कृषस्व) तू खेती किया कर, परिश्रम से भूमि में कृषि कर और उसी को (बहु मन्यमानः) बहुत मानता हुआ (वित्ते रमस्व) प्राप्त धन में आनन्द लाभ कर। हे (कितव) उत्तम कर्म करने वाले! (तत्र गावः) उसी कर्म में तेरी गौएँ, (तत्र जाया) उसी में स्त्री, अर्थात् गृह सुख प्राप्त होता है (अयम् अर्यः सविता) यह सर्व प्रेरक स्वामी (मे तत् वि चष्टे) मुझे उसी का उपदेश कर।

व्रतेन दीक्षामाप्नोति दीक्षयाप्नोति दक्षिणाम् ।
दक्षिणा श्रद्धामाप्नोति श्रद्धया सत्यमाप्यते ॥११॥

यजुर्वेद १९।३०

(व्रतेन) सत्य भाषण, ब्रह्मचर्य आदि नियम पालन से (दीक्षाम्

आप्नोति) पुरुष दीक्षा को प्राप्त करता है। (दीक्षया) दीक्षा से (दक्षिणाम् आप्नोति) प्रतिष्ठा और राज्यलक्ष्मी को प्राप्त होता है (दक्षिणा) प्रतिष्ठा या शक्ति से (श्रद्धाम् आप्नोति) सत्य धारण करने की क्षमता को प्राप्त होता है। (श्रद्धया सत्यम् आप्यते) श्रद्धा से सत्य प्राप्त किया जाता है।

जिह्वाया अग्रे मधु मे जिह्वामूले मधूलकम् ।
ममेदह क्रतावसो मम चित्तमुपायसि ॥१२॥

अथर्ववेद १।३४।२

(जिह्वायाः) जिह्वा के (अग्रे) अग्रभाग में (मधु) ब्रह्मज्ञान रहे और (जिह्वामूले) जिह्वा के मूल भाग मानस में भी (मधूलकम्) अति अधिक मनोहर ज्ञानामृत हो। हे ब्रह्मविद्ये ! (मम) मेरे (क्रतौ) क्रियावान् कर्त्ता आत्मा में (इत् अह) अवश्य ही (असः) तू विद्यमान रह और (मम) मेरे (चित्तम्) चित्त में भी (उपायसी) व्याप्त रहे।

मधुमन्मे निक्रमणं मधुमन्मे परायणम् ।
वाचा वदामि मधुमद् भूयासं मधुसन्दृशः ॥१३॥

अथर्ववेद १।३४।३

(मे) मेरा (निक्रमणं) कार्यों में प्रवृत्त होना या जाना (मधुवत्) मधु के समान मधुर, सुखकर हो। (मे परायणम्) मेरा कार्यों की समाप्ति तक पहुँचना या पुनः आना भी (मधुमत्) सुखकारी हो। (वाचा) वाणी से (मधुमत्) मधु के समान मनोहर, प्रेम युक्त वचन (वदामि) बोलूँ और मैं सब प्रकार से (मधुसंदृशः) मधु के समान मैं देखने और दिखाने हारा वा मधुर दृष्टि वाला (भूयासम्) हो जाऊँ।

सध्रीचीनान् वः संमनसस्कृणोम्येकश्नुष्टींत्संवननेन सर्वान् ।
देवाइवामृतं रक्षमाणाः सायंप्रातः सौमनसो वो अस्तु ॥१४॥

अथर्ववेद ३।३०।७

(सध्रीचीनान्) एक कार्य में उद्योग करने वाले एवं एक स्थान पर एकत्र होने वाले (वः सर्वान्) आप लोगों को (संवननेन) एक-दूसरे के प्रति प्रेम उत्पन्न करके और आप लोगों के समान द्रव्य भाग देकर (एकश्नुष्टीन्) एक जैसा भोजन करने और (संमनसः) समान चित्त वाले

(कृणोमि) करता हूँ। आप लोग (अमृतं) अमृत अर्थात् सत्य आत्मा की (रक्षमाणा:) रक्षा करते हुए (देवा इव) इन इन्द्रयगणों के समान रहो और (व:) आप लोगों का (सायं-प्रात:) सायंकाल और प्रात:काल दोनों समय (सौमनस:) उत्तम हृदय परस्पर आदर प्रेम युक्त चित्त अस्तु रहें।

अपक्रामन् पौरुषेयाद् वृणानो दैव्यं वचः ।
प्रणीतीरभ्यावर्तस्व विश्वेभिः सखिभिः सह ।।१५।।

अथर्ववेद ७।१०५।१

(पौरुषेयाद्) पुरुषों या सामान्य जन की स्तुति और निन्दा से (अपक्रामन्) परे रहते हुए, हे ज्ञानवान् साधक ! तू (दैव्यम्) परमेश्वर की (वच:) पवित्र वाणी को (वृणान:) स्वीकार करके अपने (विश्वेभि:) समस्त (सखिभि:) मित्रों सहित (प्रणीती:) वेदप्रतिपादित आदेशों पर (अभि-आवर्त्तस्व) आचरण कर। गुरुजन उपनयन और समावर्त्तन के समय शिष्यों को इस मन्त्र का उपदेश करते थे ।

एता एना व्याकरं खिले गा विष्ठिता इव ।
रमन्तां पुण्या लक्ष्मीर्याः पापीस्ता अनीनशम् ।।१६।।

अथर्ववेद ७।११५।४

(खिले) बाड़े में (वि-ष्ठिता:) बैठी हुई (गा:) गौओं को (इव) जैसे ग्वाला अलग-अलग पहचानता है वैसे मैं भी (एता:) अपने भीतर बैठी हुई (एना) नाना वृत्तियों को (वि-आकरम्) पृथक-पृथक विवेक पूर्वक जाचूँ। (या:) जो (पुण्या:) पवित्र (लक्ष्मी:) लक्ष्मियाँ प्रवृत्तियाँ हैं वे मेरे जीवन में (रमन्ताम्) प्रकट हों और (या:) जो (पापी:) बुरी प्रवृत्तियाँ हैं (ता:) उनको मन से (अनीनशम्) नष्ट कर दूँ।

मधुमती स्थ मधुमतीं वाचमुदेयम् ।।१७।।

अथर्ववेद १६।२।२

हे आप्त पुरुषो ! आप लोग (मधुमती स्थ) मधु अर्थात् ज्ञान से सम्पन्न हो, मैं भी (मधुमतीम्) मधुर, ज्ञान से पूर्ण (वाचम्) वाणी उदेयम् बोलूँ ।

मानवता सूक्त

मा नः शंसो अररुषो धूर्तिः प्रणङ् मर्त्यस्य ।
रक्षा णो ब्रह्मणस्पते ॥१॥

ऋग्वेद १।१८।३

(अररुषः) अदानशील अथवा पीड़ादायी (मर्त्यस्य) मनुष्य की (धूर्त्तिः) विनाशकारी शक्ति (प्रणक्) नष्ट हो और (नः शंसः मा प्रणक्) और हमारी ख्याति नष्ट न हो। हे (ब्रह्मणस्पते) महान् ब्रह्माण्ड के स्वामिन् परमेश्वर ! महान् राष्ट्र के पालक राजन् ! वेद के पालक आचार्य ! (नः रक्ष) हमारी तू रक्षा कर। (अररुषः धूर्तिः शंसः नः मा प्रणक्) दुष्ट पुरुष का नाशकारी, कष्टप्रद वचन या उपदेश हम तक न पहुँचे। अपितु वेदज्ञ विद्वान् हमारी रक्षा करे।

हत वृत्रं सुदानव इन्द्रेण सहसा युजा ।
मा नो दुःशंस ईशत ॥२॥

ऋग्वेद १।२३।९

(सुदानवः) उत्तम जल और रश्मि आदि पदार्थों को ग्रहण करने वाले वायुगण जिस प्रकार (इन्द्रेण युजा) विद्युत के साथ (सहसा वृत्रम्)

बलपूर्वक मेघ को आघात करते हैं उसी प्रकार हे (सुदानवः) उत्तम वेतन, उपायन आदि ऐश्वर्यों को प्राप्त करने हारे ! आप लोग (युजा) अपने साथी, सहयोगी (इन्द्रेण) शत्रुहन्ता, सेनापति के साथ (सहसा) बलपूर्वक (वृत्रम्) राष्ट्र के घेर लेने वाले या शक्ति में बढ़ने वाले शत्रु को (हत) मारो और हम पर (दुःशंसः) दुष्ट, दुःखदायी, अधार्मिक वचन बोलने या बुरा शासन करने वाले अथवा बुरी ख्याति वाले दुष्ट पुरुष (मा ईशत) कभी स्वामी न रहें।

ज्योतिर्वृणीत तमसो विजानन्नारे स्याम दुरितादभीके ।
इमा गिरः सोमपाः सोमवृद्ध जुषस्वेन्द्र पुरुतमस्य कारोः ॥३॥

ऋग्वेद ३।३९।७

जिस प्रकार सूर्य उत्पन्न होकर (तमसः ज्योतिः वृणीत) अन्धकार से प्रकाश को पृथक कर देता है उसी प्रकार (विजानन्) विशेष ज्ञानवान् पुरुष सदा (तमसः) अन्धकार से (ज्योतिः) प्रकाश को, अविद्या से विद्या को (वृणीत) सदा पृथक कर, वरण करता रहे। हम लोग (दुरिताद् आरे) दुष्टाचरण से पृथक और (अभीके) भय रहित सत्याचरण में (स्याम) लगे रहें। हे (सोमपाः) ज्ञान और ऐश्वर्य को पान और पालन करने हारे हैं। (सोमवृद्ध) ज्ञान और ऐश्वर्य के द्वारा बढ़े हुए ज्ञानवृद्ध, अनुभववृद्ध और धनाध्यक्ष ! हे (इन्द्र) ऐश्वर्यवन् ! ज्ञानदर्शिन् ! तू (पुरुतमस्य) बहुतों में श्रेष्ठ, बहुतों से शत्रुओं और विघ्नों के नाशक, (कारोः) क्रियाकुशल, विद्वान पुरुष की (इमाः गिरः) इन उपदेश वाणियों को (जुषस्व) प्रेम से ग्रहण कर।

उलूकयातुं शुशुलूकयातुं जहि श्वयातुमुत कोकयातुम् ।
सुपर्णयातुमुत गृध्रयातुं दृषदेव प्र मृण रक्ष इन्द्र ॥४॥

ऋग्वेद ७।१०४।२२

हे (इन्द्र) शत्रुओं के नाशक ! राजन् ! (उलूक-यातुम्) बड़े उल्लू के समान चाल चलने और उसके समान छिप कर प्रजा के धन, प्राण पर आक्रमण करने और उनको भयभीत करने वाले को, (शुशुलूकयातुम) छोटे उल्लू के समान अति कर्कश बोल कर डराने और प्रजा के गरीब जनों को पीड़ित करने वाले को, (श्व-यातुम्) कुत्ते के समान भौंककर,

बककर, कठोर वचन कहकर, डरा धमका कर प्रजाजनों को पीड़ा देने वाले, (कोक-यातुम्) उलूक की तीसरी जाति के समान प्रजा को कष्ट देने वाले (सुपर्ण यातुम्) बाज के समान झपटने वाले (उत) और (गृध्रयातुम्) गीध के समान गोल बनाकर उदासीन प्रजा को नोच कर खा जाने वाले, (रक्षः) दुष्ट जनों को (दृषदा इव) सिलबट्टे या चक्की के पाटों के समान पीस डालने वाले (प्र मृण) दण्ड द्वारा नष्ट कर डाल।

इन्द्र जहि पुमांसं यातुधानमुत स्त्रियं मायया शाशदानाम्।
विग्रीवासो मूरदेवा ऋदन्तु मा ते दृशन्त्सूर्यमुच्चरन्तम् ॥५॥

ऋग्वेद ७।१०४।२४

हे (इन्द्र) ऐश्वर्यवन्! तू (यातुधानं पुमांसं) पीड़ा देने वाले पुरुष को और (मायया शाशदानाम्) माया से प्रजा की नाशक (स्त्रियं उत) स्त्री को भी (जहि) दण्डित कर। (मूर-देवाः) मूढ़ होकर विषयों में क्रीड़ा करने वाले या कराने वाली, मृत्यु की पीड़ा देने वाले दुष्ट लोग (वि-ग्रीवासः) बिना गर्दन के होकर (ऋदन्तु) नष्ट हों। (ते) वे (उत्-चरन्तं) उगते हुए (सूर्यं मा दृशन्) सूर्य को भी न देख सकें।

नेह भद्रं रक्षस्विने नावयै नोपया उत।
गवे च भद्रं धेनवे वीराय च
श्रवस्यते ऽनेहसो व ऊतयः सुऊतयो व ऊतयः ॥६॥

ऋग्वेद ८।४७।१२

(इह) इस लोक में (रक्षस्विने भद्रं न) दुष्ट पुरुषों के स्वामी को सुख ऐश्वर्य आदि न हो, (न अवयै उत न उपयै) और वह न दूर जा सके न समीप आ सके। वा विपरीत इसके (गवे च धेनवे भद्रं) दुधार बैल और गौ का कल्याण हो और (श्रवस्यते वीराय च भद्रं) अन्न, बल, यश के इच्छुक वीर और ज्ञान के इच्छुक विद्वान् को सुख, कल्याण हो (वः ऊतयः अनेहसः) आप लोगों की रक्षाएँ निष्पाप और (वः ऊतयः सु-ऊतयः) आप लोगों की रक्षाएँ व रक्षा साधन उत्तम रक्षा साधन होते हैं।

त्वयेदिन्द्र युजा वयं प्रति ब्रवीमहि स्पृधः।
त्वमस्माकं तव स्मसि ॥७॥

ऋग्वेद ८।९२।३२

(त्वया इत् युजा) तुझ सहायक से ही (वयं) हम (स्पृधः)

स्पर्धा करनें वालों का (प्रति ब्रवीमहि) प्रति वचन वा उत्तर दे सकें। हे (इन्द्र) ऐश्वर्यवन् ! विद्वान् ! (त्वम् अस्माकम्) तू हमारा है और हम (तव स्मसि) तेरे हैं।

प्रत्नान्मानादध्या ये समस्वरञ्छ्लोकयन्त्रासो रभसस्य मन्तवः।
अपानक्षासो बधिरा अहासत ऋतस्य पन्थां न तरन्ति दुष्कृतः ॥८॥

ऋग्वेद ९।७३।६

(ये) जो विद्वान् जन (प्रत्नात् मानात्) अति प्राचीन ज्ञानमय प्रभु से (अधि) उसके अधीन रहकर (सम् अस्वरन्) अच्छी प्रकार ज्ञान प्राप्त करते हैं वे (श्लोक-यन्त्रासः) वेद मय ज्ञान से अपने को व्यवस्थित करते हुए (रभसस्य मन्तवः) सर्वकर्त्ता प्रभु को भली प्रकार जानते हैं और (बधिराः) जो गुरुवचनों के प्रति बहरे बहुश्रुत और (अनक्षासः) बिना आँख के अविवेकी होते हैं वे (ऋतस्य) वेद वा यज्ञ के (पन्थाम्) सत् मार्ग को (अपअहासत) दूर ही त्याग देते हैं। वे (दुष्कृतः) दुष्ट-कर्मा जन (न तरन्ति) पार नहीं जाते।

मा प्र गाम पथो वयं मा यज्ञादिन्द्र सोमिनः।
मान्तः स्थुर्नो अरातयः ॥९॥

ऋग्वेद १०।५७।१

हे (इन्द्र) विद्या, ज्ञान, प्रकाश के देने हारे (वयं) हम लोग (सोमिनः) उत्तम शासन वाले होकर (पथः) गमन करने योग्य सन्मार्ग और (यज्ञात्) उपासनीय यज्ञ रूप प्रभु से (मा प्र गाम) दूर न हों। (अरातयः) ज्ञान धनादि न देने वाले स्वार्थी (नः अन्तः मा तस्थुः) हमारे बीच में न रहे।

इयं ते यज्ञिया तनूरपो मुञ्चामि न प्रजाम्।
अ ँ होमुचः स्वाहाकृताः पृथिवीमाविशत पृथिव्या सम्भव ॥१०॥

यजुर्वेद ४।१३

हे पुरुष ! (इयं) यह (ते) तेरी (यज्ञिया तनूः) यज्ञ के योग्य या यज्ञ अर्थात् आत्मा के निवास के योग्य होकर जैसे (अपः) जलों का त्याग नहीं करती, प्रत्युत उनको अपने भीतर धारण करती है, वैसे ही मैं पुरुष

भी (प्रजाम् न मुञ्चामि) प्रजा का परित्याग नहीं करता और हे आप्त पुरुषो ! हे प्राणो ! जल जैसे (पृथिवीम् आविशन्ति) पृथ्वी के भीतर प्रवेश कर जाते हैं वैसे ही तुम भी (अंहोमुचः) आत्मा से उसके किये पाप कर्मों को छुड़ाने वाले और (स्वाहाकृताः) वेद-वाणी द्वारा उत्तम यज्ञानुष्ठान करने हारे प्राण जैसे पृथ्वी के विकार-देह में प्रविष्ट हैं वैसे ही (पृथिवीम् आविशत) पृथ्वी में स्थिर गृह आदि बनाकर रहो और (पृथिव्याम्) पृथ्वी पर हे पुरुष ! तू (सम्भव) भली प्रकार अपनी प्रजा उत्पन्न कर।

माहिर्भूर्मा पृदाकुर्नमस्त ऽ आतानानर्वा प्रेहि।
घृतस्य कुल्या ऽ उप ऽ ऋतस्य पथ्याऽअनु ।।११।।

यजुर्वेद ६।१२

हे पुरुष ! तू (अहिः) सूर्य के समान क्रोधी (मा भूः) मत हो और तू (पृदाकुः) अजगर के समान अपने संगी को हड़प जाने वाला उसके प्राणों का नाशक (मा भूः) मत हो। स्त्री पुरुष को और प्रजा राजा को कहती है कि (आतान) हे यज्ञ संपादक पुरुष ! हे प्रजा के सुख को भली प्रकार विस्तार करने वाले पुरुष ! या सुख के विस्तारक ! (ते नमः) हम तेरा आदर करते हैं। (अनर्वा प्रेहि) तू अहिंसक होकर आ और (घृतस्य कुल्याः) घृत आदि पुष्टिप्रद पदार्थ या जल की धारा अर्थात् सत्कारार्थ इन जलों को मुख आदि प्रक्षालन के लिए (उप इहि) प्राप्त हो और अन्न के (पथ्या) योग्य भोजनों को भी (अनु) पीछे स्वीकार कर।

आयुर्यज्ञेन कल्पतां प्राणो यज्ञेन कल्पतां चक्षुर्यज्ञेन कल्पता ँ
श्रोत्रंयज्ञेन कल्पतां पृष्ठं यज्ञेन कल्पतांयज्ञो यज्ञेन कल्पताम् ।
प्रजापतेः प्रजा ऽ अभूम स्वर्देवा ऽ अगन्मामृता ऽ अभूम ।।१२।।

यजुर्वेद ६।२१

(यज्ञेन) परस्पर के आदान-प्रतिदान तथा प्रजापति रूप यज्ञ से (आयुः) सब प्रजाओं का दीर्घ जीवन (कल्पताम्) स्वस्थ बना रहे। (यज्ञेन प्राणः कल्पताम्) एक-दूसरे के अन्न आदि दान से प्राण पुष्ट हों। (यज्ञेन चक्षुः कल्पताम्) यज्ञ से ज्ञान-व्यवहार के देखने में समर्थ चक्षु बलवान् हो। (यज्ञेन श्रोत्रं कल्पताम्) यज्ञ द्वारा ही श्रवण शक्ति समर्थ बनी रहे। (यज्ञः) हमारे यज्ञ, ईश्वरोपासना और धर्मकार्य सब (यज्ञेन कल्पताम्) उत्तम राजा के प्रजा पालन के कार्य से बने रहें। हम सब (प्रजापतेः)

प्रजा के पालक राजा और परमेश्वर की (प्रजाः अभूम) प्रजायें बनी रहें। हम लोग (देवाः) ज्ञानवान् होकर (स्वः अगन्म) परम सुखमय मोक्ष और सुखप्रद राज्य को प्राप्त हों। हम (अमृताः अभूम) परमेश्वर के राज्य में मुक्त हो जायें और उत्तम प्रजापालक राजा के राज्य में (अमृताः) पूर्ण सौ वर्ष और उससे भी अधिक आयु वाले हों।

दृते दृꣳह मा मित्रस्य मा चक्षुषा सर्वाणि भूतानि समीक्षन्ताम्।
मित्रस्याहं चक्षुषा सर्वाणि भूतानि समीक्षे।
मित्रस्य चक्षुषा समीक्षामहे ॥१३॥

यजुर्वेद ३६।१८

हे (दृते) समस्त दुःखों और अज्ञानों के विदारक! महावीर! राजन! परमेश्वर! (मा दृहं) मुझे दृढ़ कर। (मा) मुझको (सर्वाणि भूतानि) समस्त प्राणीगण (मित्रस्य चक्षुषा) मित्र की दृष्टि से देखें और (अहम्) मैं भी (सर्वाणि भूतानि) सब प्राणियों को (मित्रस्य चक्षुषा) मित्र की दृष्टि से (समीक्षे) देखूँ। हम सब (मित्रस्य चक्षुषा) मित्र की दृष्टि से (समीक्षा महे) एक-दूसरे को देखा करें।

शप्तारमेतु शपथो यः सुहार्त् तेन नः सह।
चक्षुर्मन्त्रस्य दुर्हार्दः पृष्टीरपि शृणीससि ॥१४॥

अथर्ववेद २।७।५

(शपथः) निन्दाजनक गाली आदि वचन (शप्तारं) निन्दा करने वाले पुरुष के पास ही (एतु) रहे। (यः) और जो (सुहार्त्) हमारे प्रति उत्तम हृदय वाला, मित्रभाव से है (तेन सह) उसके साथ (नः) हमारा भी मैत्रीभाव है और हम (चक्षुर्मन्त्रस्य) नेत्रों के संकेत से गुप्त-गुप्त परामर्श करने वाले (दुर्हार्दः) दुष्ट हृदय वाले पुरुष की (पृष्टीः) स्पर्शकारी, मर्मवेधक कुकृत्यों को उसकी पसलियों के समान (शृणीससि) विनाश करें।

सहृदयं सांमनस्यमविद्वेषं कृणोमि वः।
अन्यो अन्यमभि हर्यत वत्सं जातमिवाघ्न्या ॥१५॥

अथर्ववेद ३।३०।१

मैं प्रभु (वः) तुम सबको (सहृदयं) एक हृदय वाला (सांमनस्यं)

एक चित्त वाला, (अविद्वेषं) परस्पर द्वेष से रहित (कृणोमि) करता हूँ। (जातं वत्सं अघ्न्या इव) जिस प्रकार उत्पन्न हुए बच्चे के प्रति प्रेम से खिचकर गाय दौड़ी हुई जाती है। उसी प्रकार (अन्यः अन्यम् अभि हर्यत) एक-दूसरे के पास मिलने के लिए प्रेम से खिचकर जाओ।

उतदेवा अवहितं देवा उन्नयथा पुनः ।
उतागश्चक्रुषं देवा देवा जीवयथा पुनः ॥१६॥

अथर्ववेद ४।१३।१

(उत) और हे (देवाः) विद्वान्, दिव्य गुण युक्त पुरुषो ! इस पुरुष को या बालक को (अवहितं) सावधान, प्रमाद-रहित करो और हे (देवाः) विद्वान् पुरुषो ! (पुनः) पुनः-पुनः अपराध करने एवं नीच भावों में जा पड़ने पर भी उसे उत्तम उपदेशों और सद्व्रतों के आचरणों द्वारा (उत्, नयथ) बार-बार उन्नत करो। (उत) और (आगः चक्रुषं) पापाचरण करने पर भी इस पुरुष या बालक को (देवाः पुनः उन्नयथ) हे विद्वानों ! बार-बार उन्नत करो। हे (देवाः) देव समान सदाचारी पुरुषो ! यदि आत्मा पापाचरण द्वारा सर्वथा मर चुका हो और उसे पाप पुण्य और भले-बुरे का ज्ञान भी न रहे तो भी (पुनः) बार-बार (जीवयथ) उसे जीवित करो, उसके आत्मा की चेतना को पुनः जगाओ जिससे वह पाप को पाप और धर्म को धर्म समझे।

यस्तिष्ठति चरति यश्च वञ्चति यो निलायं चरति यः प्रतङ्कम् ।
द्वौ संनिषद्य यन्मन्त्रयेते राजा तद् वेद वरुणस्तृतीयः ।१७॥

अथर्ववेद ४।१६।२

(यः) तो (तिष्ठति) खड़ा है, (यः चरति) और जो चलता है, (यः च वञ्चति) और जो दूसरे को ठगता है, (यः निलायं चरति) जो छिप-छिप कर कहीं जाता है, (यः प्रतंकं चरति) जो दूसरों को भारी पीड़ा देने आदि अत्याचारों को करता है और (यत्) जो कुछ (द्वौ) दो पुरुष भी (संनिषद्य) एक साथ मिलकर, बैठकर (मन्त्रयेते) गुप्त विचार करते हैं, (राजा वरुणः) सबका शासक वरुण परमात्मा (तृतीयः) उन दोनों के साथ तीसरा होकर (वेद) उसकी गुप्त बातों को जानता है। यह वरुण परमात्मा की गुप्त विज्ञता और सर्वव्यापकता का प्रमाण है।

मा ते मनस्तत्र गान्मा तिरो भून्मा
जीवेभ्यः प्र मदो मानु गाः पितॄन् ।
विश्वे देवा अभि रक्षन्तु त्वेह ॥१८॥

अथर्ववेद ८।१।७

हे पुरुष ! (ते मनः) तेरा चित्त (तत्र) उस निषिद्ध कर्म में (मा गात्) न जाय । (मा तिरा भूत्) तेरा चित्त तिरछा, कुपथगामी न हो (जीवेभ्यः) जीवों के हित के लिए (मा प्र मः) तू प्रमाद मत कर । (पितृन) अपने बूढ़े पालकों के पीछे मृत्यु के मुख में (मा अनु गाः) मत जा । प्रत्युत (त्वा) तुझको (विश्वे देवाः) समस्त देव, विद्वान् और इद्रियाँ (इह) इस शरीर में चिरकाल तक (अभि रक्षन्तु) सुरक्षित रखें ।

आ रभस्वेमाममृतस्य श्नुष्टिमच्छिद्यमाना जरदष्टिरस्तु ते ॥
असुं त आयुः पुनरा भरामि रजस्तमो मोप गा मा प्रमेष्ठाः ॥१६॥

अथर्ववेद ८।२।१

हे पुरुष ! (इमाम्) इस (अमृतस्य) अमृत, पूर्ण सौ वर्ष की आयु के (श्नुष्टिम्) भोग प्राप्त करने का (आरभस्व) उद्योग कर । (ते) तेरी (जरदष्टिः) जरावस्था तक की जीवन यात्रा और उपभोग सामग्री (अच्छिद्यमाना) निरन्तर जुटी (अस्तु) रहे । मैं (ते) तेरे (असुम्) प्राण को और (आयुः) दीर्घ जीवन को (पुनः) फिर (आ भरामि) प्रदान करता हूँ । हे पुरुष ! तू (रजः तमः) राजस और तामस भोग विलासों में (मा उप गाः) मत जा और इस प्रकार (मा प्र मेष्ठाः) तू शीघ्र मृत्यु को प्राप्त न हो । सात्विक वृत्ति से जीवन निर्वाह करने से दीर्घ जीवन प्राप्त होता है ।

अघमस्त्वघकृते शपथः शपथीयते ।
प्रत्यक् प्रतिप्रहिण्मो यथा कृत्याकृतं हनत् ॥२०॥

अथर्ववेद १०।१।५

(अघ-कृते) जैसे पापाचरण करनें वाले को (अघम् नस्तु) पाप का फल मिलता है, (शपथीयते शपथः) गाली दुर्वचन कहने वाले को इन कटु-वचनों का फल प्राप्त होता है, इसी प्रकार हम (प्रत्यक्) भेजी सेना को लौटा कर (प्रति प्रहिण्मः) भेजने वाले की ओर वापिस कर देते हैं, (यथा) जिससे (कृत्याकृतं हनत्) उसका किया हिंसा का काम उस करने वाले को ही पीड़ित करे ।

अनागोहत्या वै भीमा कृत्ये मा नो गामश्वं पुरुषं वधीः ।
यत्रयत्रासि निहिता ततस्त्वोत्थापयामसि
पर्णाल्लघीयसी भव ॥२१॥

अथर्ववेद १०।१।२९

हे (कृत्ये) शत्रु द्वारा भेजी गई सेना ! (अनागोः हत्या) निरपराध पुरुषों का घात करना (भीमा) बड़ा भयानक कृत्य है। अतः (नः) हमारे (गाम् अश्वं पुरुषं मा वधीः) गौ घोड़े और पुरुषों को मत मार। (यत्र यत्र) जहाँ-जहाँ तू (निहिता असी) रखी गई है, अर्थात् तूने जहाँ-जहाँ अपने डेरे डाले हैं (ततः) वहाँ-वहाँ से (त्वा उत्थापयामसि) तुझे हम उठा दें। तू अपमानित होकर (पर्णात्) पत्ते से भी अधिक (लघीयसी) हल्की (भव) हो जा।

निकृष्ट कर्म त्याज्य सूक्त

जुआ, पाँसे, कौड़ी, ताश अथवा अन्य कोई खेल के साधन एवं मद्यपान पर स्त्री में रुचि, ईर्ष्या आदि बड़े नीच कर्म हैं। ये वह अंगारे हैं जो ठण्डे होते हुए भी जलाते हैं और हाथ वालों बल वालों और परिश्रम-शीलों को निर्बल, निकम्मा और आलसी बना देते हैं, जिस कारण से वह कायर और चिन्ताग्रस्त सदा बने रहते हैं।

नीचा वर्तन्त उपरि स्फुरन्त्यहस्तासो हस्तवन्तं सहन्ते ।
दिव्या अङ्गारा इरिणे न्युप्ताः शीताः सन्तो हृदयं निर्दहन्ति ।।१।।

अथर्ववेद १०।३४।९

(नीचाः) नीच प्रवृत्ति के लोग (वर्त्तन्ते) होते हैं। वे (उपरि) ऊँचे पद पर आकर (स्फुरन्ति) अधीनों को कष्ट देते हैं। वे (अहस्तासः) हनन साधनों से रहित होकर ही (हस्तवन्तं) हथियार वालों को (सहन्ते) सहते हैं, वे (दिव्याः) क्रीड़ाशील मोदप्रिय होकर (इरिणे अंगाराः) कूप में जलते अंगारों के समान (इरिणे) अन्न-जलदाता के लिए भी (अंगाराः) अंगारों के तुल्य सन्तापदायक (न्युप्ताः) बने रहते हैं। वे (शीताः सन्तः) ठण्डे निरपेक्ष और निर्दय होकर (हृदयं निर्दहन्ति) हृदय को जलाया करते हैं।

(नीचा वर्तन्त) नीच हैं (उपरि स्फुरन्ति) परन्तु ऊपर को उछलते हैं (अहस्तासः) विना हाथ वाले हैं। (हस्तवन्तं सहन्ते) परन्तु हाथ वाले

को वश में करते हैं (दिव्या अंगाराः) ये खेल के अंगारे हैं (इरिणे न्युप्ताः) खेलने के स्थान पर रखे हैं (शीताः सन्तः) ठण्डे चुपचाप होते हुए भी (हृदयं निर्दहन्ति) हृदय को जलाते हैं।

जाया तप्यते कितवस्य हीना माता पुत्रस्य चरतः क्वस्वित् ।
ऋणावा बिभ्यद्धनमिच्छमानोऽन्येषामस्तमुप नक्तमेति ॥२॥

ऋग्वेद १०।३४।१०

(कितवस्य) 'तेरा क्या' इस प्रकार अन्यों पर आक्षेप करके विचरने वाले, उच्छृंखल वा द्युतव्यसनी पुरुष की (हीना) त्यागी हुई (जाया) स्त्री भी (तप्यते) दुःखित होती है और (क्वस्वित् चरतः) कहीं-कहीं विचरते व्यसनी पुत्र की (माता) माता भी (तप्यते) दुःखी होती है। वह (ऋणावा) ऋण ग्रस्त होकर (धनम् इच्छमानः) धन चाहता हुआ, (विभ्यद्) भय करता हुआ, (नक्तम्) रात के समय (अन्येषाम् अस्तम्) औरों के घर चोरी के लिए (उप एति) जाता है।

स्त्रियं दृष्ट्वाय कितवं ततापान्येषां जायां सुकृतं च योनिम् ।
पूर्वाह्णे अश्वान्युयुजे हि बभ्रून्त्सो अग्नेरन्ते वृषलः पपाद ॥३॥

ऋग्वेद १०।३४।११

(कितवं–कितवः) तेरा क्या ? इस प्रकार अन्यों से छीन झपट करने वाला मनुष्य (स्त्रियं दृष्ट्वा ततापः) स्त्री को देखकर दुःखित होता है। वह (अन्येषां जायां) औरों की स्त्री को और (सुकृतं योनिं च) औरों के पुण्य कर्म वा उत्तम रीति से बने घर को देखकर (ततापः) दुःखी होता है। वह (पूर्वाह्णे) दिन के पूर्व भाग में (वभ्रून्) हृष्ट-पुष्ट, (अश्वान्) वेगगामी अश्वों के तुल्य अपने प्राणों को (युयुजे) जोड़ता है। (सो) वह (वृषलः) मूढ़, अधार्मिक (अग्नेः अन्ते) रात में आग के समीप (पपाद) पहुँच जाता है।

यो वः सेनानीर्महतो गणस्य राजा व्रातस्य प्रथमो बभूव ।
तस्मै कृणोमि न धना रुणध्मि दशाहं प्राचीस्तदृतं वदामि ॥४॥

ऋग्वेद १०।३४।१२

हे विद्वान् जनों ! (वः महतः गणस्य) आप लोगों के समूह का जो (सेनानीः) नायक है और जो (प्रथमो राजा बभूव) सर्व श्रेष्ठ राजा है

(तस्मै अहं दश प्राची: कृणोमि) मैं उसके आदरार्थं दशों अंगुली आगे करता हूँ, उसे नमन करता हूँ। अथवा (तस्मैः दश प्राचीः कृणोमि) उसके लिए मैं प्रभु दशों दिशाओं के समान बढ़ने वा उदय होने के लिए करता हूँ। (न धना रुणध्मि) उसके लिए मैं धन भी रोक के नहीं रखता हूँ। (तत् ऋतं वदामि) उसके लिए मैं सत्य वचन का उपदेश करता हूँ।

अक्षैर्मा दीव्यः कृषिमित्कृषस्व वित्ते रमस्व बहु मन्यमानः।
तत्र गावःकितव तत्र जाया तन्मे वि चष्टे सवितायमर्यः ॥५॥

ऋग्वेद १०।३४।१३

हे (कितव) गर्वीले राजा ! तू अधिकार मद से, आकर प्रजा को कह लेता है कि 'किं तव' तेरा क्या है, इसी से तू भी 'कितव' है।(अक्षैः मा दीव्यः) पासों से मत खेल, प्रत्युत (कृषिम् इत् कृषस्व) तू खेती किया कर, परिश्रम से भूमि में कृषि कर। और उसी को (बहु मन्यमानः) बहुत मानता हुआ (वित्ते रमस्व) प्राप्त धन में आनन्द लाभ कर। हे (कितव) उत्तम कर्म करने वाले ! (तत्र गावः) उसी कर्म में तेरी गौएँ, (तत्र जाया) उसी में स्त्री, अर्थात् गृहसुख प्राप्त होता है (अयम् अर्थः सविता) यह सर्वप्रेरक स्वामी (मे तत् वि चष्टे) मुझे उसी का उपदेश कर।

(अक्षैर्मा दीव्यः) जुआ मत खेलो (कृषिमित्कृषस्व) खेती करो। (वित्ते रमस्व बहु मन्यमानः) बहुत मानते हुए धन में रमा करो (कितव) ऐ ज्वारी (तत्र) उस खेती में (गावः) गायें (जाया) स्त्री आदि सब सुख हैं (तन्मे) मेरे लिए यह बात (अयं अर्यः सविता विचष्टे) वेद के ऋषिजन कहते हैं कि मेरे अन्तरात्मा में यह उपदेश जगत् का स्वामी और रचयिता परमेश्वर कह रहा है।

मांसाहार अभक्ष्य सूक्त

य: पौरुषेयेण क्रविषा समङ्क्ते यो अश्व्येन पशुना यातुधानः ।

यो अघ्न्याया भरति क्षीरमग्ने तेषां शीर्षाणि हरसापि वृश्च ।।१।।

ऋग्वेद १०।८७।१६

(य: यातुधान:) जो राक्षस (पौरुषेयेण क्रविषा:) मनुष्य के मांस से (य:) जो (अश्व्येन पशुना) घोड़े या अन्य पशु के मांस से (समङ्क्ते) अपने को पुष्ट करता है (य:) जो (अघ्न्याया:) गौ के (क्षीरम्) दूध को (भरति) चुराता है (हे अग्ने) हे राजन् ! (तेषाम्) उनके (शीर्षाणि अपि) सिर भी (हरसा) तीक्ष्ण शस्त्र से (वृश्च) काट ।

वि मुच्यध्वमघ्न्या देवयानाऽअगन्म तमसस्पारमस्य ।

ज्योतिरापाम ।।२।।

यजुर्वेद १२।७३

हे मनुष्यो ! जैसे तुम लोग (अघ्न्या:) रक्षा के योग्य (देवयाना:) दिव्य भोगों की प्राप्ति के हेतु गौओं को प्राप्त हो, सुन्दर संस्कार किये अन्नों का भोजन करके रोगों से (विमुच्यध्वम्) पृथक् रहते हो वैसे हम लोग भी बचें । जैसे तुम लोग (तमस:) रात्रि के (पारम्) पार को प्राप्त होते हो वैसे हम भी (अगन्म) प्राप्त होवें । जैसे तुम लोग (अस्य) इस सूर्य के (ज्योति:) प्रकाश को व्याप्त होते हो वैसे हम भी (आपाम) व्याप्त होवें ।

इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालंकार है। मनुष्यों को चाहिए कि गौ आदि पशुओं को कभी न मारें, न मरवावें तथा किसी को न मारने दें। जैसे सूर्य के उदय से रात्रि निवृत्त होती है वैसे वैद्यक-शास्त्र की रीति से पथ्य अन्नादि पदार्थों का सेवन कर रोगों से बचो।

ये वाजिनं परिपश्यन्ति पक्वं यऽईमाहुः सुरभिर्निर्हरेति।
ये चार्वतो मा ँ सभिक्षामुपासतऽउतो
तेषामभिगूर्त्तिर्नऽइन्वतु ।।३।।

यजुर्वेद २५।३५

(ये) जो (अर्वतः) घोड़े के (मांसभिक्षाम्) मांस के मांगने की (उपासते) उपासना करते (च) और (ये) जो घोड़ा को (ईम्) पाया हुआ मारने योग्य (आहुः) कहते हैं, उनको (निःहर) निरन्तर हरो, दूर पहुँचाओ (ये) जो (वाजिनम्) वेगवान घोड़ों को (पक्वम्) पक्का सिखा के (परिपश्यन्ति) सब ओर से देखते हैं (उतो) और (तेषाम्) उनका (सुरभिः) अच्छा सुगन्ध और (अभिगूर्तिः) सब ओर से उद्यम (नः) हम लोगों को (इन्वतु) प्राप्त हों, उनके अच्छे काम हमको प्राप्त हों। (इति) इस प्रकार दूर पहुँचाओ।

जो घोड़े आदि उत्तम पशुओं का मांस खाना चाहें वे राजा आदि श्रेष्ठ पुरुषों को रोकने चाहिए जिससे मनुष्य का उद्यम सिद्ध हो।

यन्नीक्षणं मा ँ स्पचन्याऽ उखाया
या पात्राणि यूष्ण ऽ आसेचनानि।
ऊष्मण्या ऽपिधाना चरूणामंकाः
सूनाः परिभूषन्त्यश्वम् ।।४।।

यजुर्वेद २५।३६

(या) जो (ऊष्मण्या) गरमियों में उत्तम (अपिधाना) ढाँपने (आसेचनानि) और सिचाने हारे (पात्राणि) पात्र वा (यत्) जो (मांस्पचन्याः) मांस जिसमें पकाया जाय उस (उखायाः) बटलोई का (नीक्षणम्) निकृष्ट देखना वा (चरूणाम्) पात्रों को (अंकाः) लक्षण किये हुए (सूनाः) प्रसिद्ध पदार्थ तथा (यूष्णः) वढ़ाने वाले के (अश्वम्) घोड़े को (परि, भूषन्ति) सब ओर से सुशोभित करते हैं वे सब स्वीकार करने योग्य हैं।

यदि कोई घोड़े आदि उपकारी पशुओं और उत्तम पक्षियों का मांस खावें तो उनको यथापराध अवश्य दण्ड देना चाहिए।

मनुष्यों को मांस न खाना चाहिए। इस विषय को अगले मन्त्र में कहा है।

मा त्वाग्निर्ध्वनयीद् धूमगन्धिर्मोखा भ्राजन्त्यभि विक्त जघ्रिः।
इष्टं वीतमभिगूर्त्तं वषट्कृतं तं देवासः प्रति गृभ्णन्त्यश्वम् ॥५॥

यजुर्वेद २५।३७

हे मनुष्यो ! जैसे (देवासः) विद्वान्‌जन जिस (इष्टम्) चाहे हुए (वीतम्) प्राप्त (अभिगूर्त्तम्) चारों ओर से जिसमें उद्यम किया गया। (वषट्कृतम्) ऐसी क्रिया से सिद्ध हुए (अश्वम्) वेगवान् घोड़े को (प्रति गृभ्णन्ति) प्रतीति से ग्रहण करके उसको तुम (अभि) सब ओर से (विक्त) जानो (त्वा) उसको (धूमगन्धिः) धुआँ से गन्ध जिसका वह (अग्निः) अग्नि (मा) मत (ध्वनयीत्) शब्द करे वा (तम्) उसको (जघ्रिः) जिससे किसी वस्तु को सूँघते हैं वह (भ्राजन्ती) चमकती हुई (उखा) बटलोई को (मा) मत हिंसवावे। अर्थात् मांस आदि हिंसक पदार्थों से बटलोई को दूषित मत कर।

हे मनुष्यो ! जैसे विद्वान् जन मांसाहारियों को निवृत्त कर घोड़ा आदि पशुओं की वृद्धि और रक्षा करते हैं वैसे तुम भी करो और अग्नि आदि के विघ्नों से अलग रखो।

मा त्वा क्रव्यादभि मंस्तारात् संकसुकाच्चर।
रक्षतु त्वा द्यौ रक्षतु पृथिवी सूर्यश्च त्वा रक्षतां चन्द्रमाश्च।
अन्तरिक्षं रक्षतु देवहेत्या ॥६॥

अथर्ववेद ८।१।१२

हे पुरुष (त्वा) तुझको (क्रव्यात्) मांस खाने की आदत वाला मनुष्य अथवा जन्तु (मा अभि मंस्त) न आ दबोचे। (संकसुकात्) नाश करने वाले लोभी जीव से तू (आरात्) दूर रहकर (चर) चल। (द्यौः) आकाश (त्वा) तेरी (रक्षतु) रक्षा करे। (पृथिवी रक्षतु) पृथिवी तेरी रक्षा करे। (सूर्यः च चन्द्रमाः च) सूर्य और चन्द्रमा (त्वा रक्षताम्) तेरी रक्षा करें और (अन्तरिक्षम्) अन्तरिक्ष वायुमण्डल तेरी (देव हेत्याः) दैवी आघातकारी पदार्थों से (रक्षतु) रक्षा करे।

आरादरातिं निर्ऋतिं परो ग्राहिं क्रव्यादः पिशाचान् ।
रक्षो यत् सर्वं दुर्भूतं तत् तमइवाप हन्मसि ।।७।।

अथर्ववेद ८।२।१२

(तमः इव) जैसे प्रकाश द्वारा अन्धकार दूर कर दिया जाता है। वैसे हम (निर्ऋतिम्) अज्ञानमय पाप की प्रवृत्ति को, (अरातिम्) कृपणता को (ग्राहिम्) हाथ पैर जकड़ देने वाली सम्पत्ति को चाट जाने वाली लोभवृत्ति को, (क्रव्यादः) मांसाहारी को और (पिशाचान्) पिशाचवृत्ति मांसाहारी वृत्ति मनुष्य को (रक्षः) विघ्नकारी पुरुषों को और (यत्) जो कुछ (दुर्भूतम्) दुष्ट या दुःखकारी पदार्थ हैं (तत्) उसे (परः) परे (अरात्) दूर ही (अप हन्मसि) मार भगायें।

यः पौरुषेयेण क्रविषा समङ्क्ते यो अश्व्येन पशुना यातुधानः ।
यो अघ्न्याया भरति क्षीरमग्ने तेषां शीर्षाणि हरसापि वृश्च ।।८।।

अथर्ववेद ८।३।१५

(यः) जो आदमी (पौरुषेयेण) आदमी के (क्रविष) मांस से (सम् अङ्क्ते) अपने को पुष्ट करता है और (यः) जो (यातु-धानः) पीड़ादायक पुरुष (अश्व्येन) घोड़े के मांस से या (पशुना) अन्य पशु के मांस से अपने को पुष्ट करता है। (यः) जो (अघ्न्यायाः) गाय के (क्षीरम्) दूध को (भरति) चुरा लेता है (तेषाम्) उन प्रजापीड़क लोगों के (शीर्षाणि) सिरों को हे (अग्ने) राजन्! (हरसा) अपने शस्त्र से (अपि वृश्च) काट ले।

विषं गवां यातुधाना भरन्ताम वृश्चन्तामदित्ये दुरेवाः ।
परैणान् देवः सविता ददातु परा भागमोषधीनां जयन्ताम् ।।९।।

अथर्ववेद ८।३।१६

यदि (यातुधानाः) प्रजापीड़क लोग (गवाम्) गौ आदि पशुओं को (विषम्) विष (भरन्ताम्) दें और उनको मार डालें। यदि (दुरेवाः) दुष्ट चाल-चलन के लोग (अदितये) गाय को (आ वृश्चन्ताम्) काटें तब (देवः) राजा (सविता) सबका प्रेरक (एनान्) इनको (पराददातु) राज्य से दूर करे या इनका सर्वस्व हर ले और वे (ओषधीनाम्) अन्न आदि और रोगनाशक औषधियों के (भागम्) भाग-जीवनोपयोगी अन्न को (परा जयन्ताम) न पा सकें।

संवत्सरीणं पय उस्रियायास्तस्य माशीद् यातुधानो नृचक्षः ।
पीयूषमग्ने यतमस्तितृप्सात् तं प्रत्यञ्चमर्चिषा
विध्य मर्मणि ॥१०॥

अथर्ववेद ८।३।१७

हे (नृचक्षः) प्रजाओं पर कृपा दृष्टि रखने वाले राजन् ! (यातुधानः) प्रजापीड़क आदमी (उस्रियायाः) गाय का (संवत्सरीणम्) वर्ष भर में उत्पन्न होने वाला जितना (पयः) दूध है (तस्य) उसके कुछ अंश को भी (मा आशीत्) न खा सके । हे (अग्ने) राजन् ! और (यतमः) दुष्ट पुरुषों में से कोई भी (पीयूषम्) गोदुग्ध रूप अमृत को (तितृप्सात्) भर पेट पावे तो (तम्) उसको (प्रत्यञ्चम्) सबके सामने (अर्चिषा) अग्नि की लपट से (मर्मणि) मर्म स्थान में मार । उसको तपे लोहे की छड़ों से मर्म स्थानों में बींधा जावे ।

सनादग्ने मृणसि यातुधानान् न त्वा रक्षांसि पृतनासु जिग्युः ।
सहमूरानतु दह क्रव्यादो मा ते हेत्या मुक्षत दैव्यायाः ॥११॥

अथर्ववेद ८।३।१८

हे (अग्ने) राजन् ! तू (यातु-धानान्) प्रजापीड़कों को (सनात्) सदा से ही (मृडसि) विनष्ट करता है । (त्वा) तुझे (रक्षांसि) राक्षस लोग (पृतनासु) संग्रामों में भी (न जिग्युः) न जीत पावें । (क्रव्यादः) मांसखोरों को (सह-मूरान्) मूढ़ लोगों, अज्ञानी लोगों के साथ ही (अनु दह) भस्म कर डाल । (ते दैव्यायाः) तेरे दिव्य गुणयुक्त और राजकीय (हेत्याः) दण्डकारी शस्त्र से (ते) वे दुष्ट पुरुष (मा मुक्षत) बचने न पावें ।

मनु जी महाराज की दृष्टि में :—

यो ऽहिंसकानि भूतानि हिनस्त्यात्मसुखेच्छया ।
स जीवंश्चमृतश्चैव न क्वचित्सुखमेधते ॥

मनु ५।४५

जो अहिंसक जीवों को अपने सुख की लालसा से मारता है, वह जीता हुआ वा मरकर कहीं सुख से नहीं बढ़ता ।

समुत्पत्तिं च मांसस्य बधबन्धौ च देहिनाम् ।
प्रसमीक्ष्य निवर्तेत सर्वमांसस्य भक्षणात् ।।

मनु ५।४९

मांस की घिनौने लहू आदि से उत्पत्ति और प्राणधारियों के बाँधने अथवा बध करने को देखकर हर एक प्रकार के मांस भक्षण से हटा रहे।

ना ऽ कृत्वा प्राणिनां हिंसा मांस मुत्पद्यते क्वचित् ।
नच प्राणिवधः स्वर्ग्यस्तस्मान्मांसं विवर्जयेत् ।।

मनु ५।४८

प्राणियों की हिंसा किये बिना कहीं मांस उत्पन्न नहीं होता, और प्राणियों का मारना स्वर्ग के लिए अच्छा नहीं, इसलिए मांस को त्यागे।

अनुमन्ता विशसिता निहन्ता क्रयविक्रयी ।
संस्कर्ता चोपहर्ता च खादकश्चेति घातकाः ।।

मनु ५।५१

बध करने की अनुमति देने वाला, काटने वाला, मारने वाला, मांस का खरीदने वाला, बेचने वाला, पकाने वाला और खाने वाला यह सब पशु के मारने वाले माने जाते हैं।

राष्ट्र भूमि सूक्त

एक धर्म-ग्रन्थ, एक संस्कृति, एक विचारधारा के मानव जिस भू भाग पर जन्मे, वही क्षेत्र उनका राष्ट्र है और वही मातृभूमि है। हमने माता के गर्भ से जन्म लिया, उसकी छाती में जो दूध है वह हमारे लिए है, उस पर किसी दूसरे का कोई अधिकार नहीं। इसी प्रकार जो हमारा राष्ट्र है, जिस भूमि के क्षितिज पर हमारी संस्कृति का दिवाकर उदित हुआ उस पर भी किसी दूसरे का कोई अधिकार नहीं।

आलस्य और प्रमादवश राष्ट्र और संस्कृतियाँ पदाक्रान्त हो जाती हैं।

"संस्कृतियाँ भूतकाल के आधार पर वर्तमान में भविष्य के लिए जीवित रहती हैं।" इस प्रकार किसी भी राष्ट्रीय जीवन के लिये एक महत्वपूर्ण परामर्श है, कि जो संस्कृतियाँ और राष्ट्र अपने अतीत पर दृष्टि डालकर अपनी भूलों को छोड़ने का और अच्छाइयों को बनाये रखने का व्रत नहीं लेतीं वे संसार में उन्नति नहीं कर सकतीं।

जब हमारा प्रमाद चरम सीमा तक पहुँच जाता है तो हम, भूतकाल के गौरव को बड़ी सुविधा से भुला देते हैं, मूर्खतावश भविष्य निर्माण का कोई ध्यान ही नहीं रखते और स्वार्थवश वर्तमान में स्वाभिमान रहित होकर भी शान से जी रहे हैं। परन्तु क्या इस प्रकार हम अपना कुछ विकास कर सकते हैं? नहीं! न हमारा विकास हो सकता है, न उन्नति और न ही रक्षा हो सकती है।

जब स्वाभिमान जागता है तो संस्कृति की रक्षा हेतु बलिदानी अपना शीश हथेली पर रखकर आगे आते हैं और प्रभु की वाणी वेदाज्ञा का अनुसरण कर आगे बढ़ते हैं।

सूक्त

इळा सरस्वती मही तिस्त्रो देवीर्मयोभुवः ।
बर्हिः सीदन्त्वस्त्रिधः ॥१॥

ऋग्वेद १।१३।९

(इड़ा) इडा, (सरस्वती) सरस्वती और (मही) मही (तिस्त्रःदेवीः) तीनों देवियें (मयोभुवः) सुख उत्पन्न करने हारी हैं। वे तीनों (अस्त्रिधः) अक्षय, अविनाशिनी, अहिंसनीय होकर (बर्हिः) आसन और गृह में अथवा राष्ट्र में (सीदन्तु) विराजें।

स्योना पृथिवि भवानृक्षरा निवेशनी ।
यच्छा नः शर्म सप्रथः ॥२॥

ऋग्वेद १।२२।१५

हे (पृथिवि) पृथिवि ! तू (स्योना) सुखप्रद (अनृक्षरा) कांटों से और दुःखप्रद शत्रुओं से रहित, (निवेशनी) प्रजा के बसने योग्य, (भव) हो। तू (सप्रथः) विस्तृत अवकाश और ऐश्वर्य से युक्त (नः) हमें (शर्म) शरण, सुख (यच्छ) प्रदान कर।

आ यद्वामीयचक्षसा मित्र वयं च सूरयः ।
व्यचिष्ठे बहुपाय्ये यतेमहि स्वराज्ये ॥३॥

ऋग्वेद ५।६६।६

हे (मित्र) परस्पर स्नेहवान् स्त्री-पुरुषो ! हे (ईय-चक्षसा) ज्ञान करने योग्य दर्शन वा करने वाले विद्वान् पुरुष ! (यत्) जो (वाम्) आप लोगों के बन्धुजन हैं वे और (वयं च) हम भी (सूरयः) समस्त विद्वान्जन मिलकर (व्यचिष्ठे) अति विस्तृत (बहुपाय्ये) बहुत से वीर पुरुषों द्वारा रक्षा करने योग्य (स्वराज्ये) स्वराज्य के निमित्त (आ यतेमहि) सब प्रकार से यत्नवान् होते रहें।

ध्रुवं ते राजा वरुणो ध्रुवं देवो बृहस्पतिः ।
ध्रुवं त इन्द्रश्चाग्निश्च राष्ट्रं धारयतां ध्रुवम् ॥४॥

ऋग्वेद १०।१७३।५

हे राजा प्रजाजन ! (ते राष्ट्रं) तेरे राष्ट्र को (राजा वरुणः) दीप्तिमान् सर्वश्रेष्ठ पुरुष (धारयताम्) धारण करे। (बृहस्पतिः देवः ध्रुवं धारयताम्) बड़े बल वा वेद-ज्ञान का पालक सेनापति वा ब्राह्मण तेरे राष्ट्र को धारण करे। (इन्द्रः च अग्नि चः) तेजस्वी तथा शत्रु सन्तापक जन भी (ते राष्ट्रं ध्रुवं धारयताम्) तेरे राष्ट्र को स्थिर रूप से धारण करे।

वाजस्येमं प्रसवः सुषुवेऽग्रे सोम ँ राजानमोषधीष्वप्सु ।
ता ऽ अस्मभ्यं मधुमतीर्भवन्तु वय ँ राष्ट्रे
जागृयाम पुरोहितः स्वाहा ॥५॥

यजुर्वेद ९।२३

(वाजस्य प्रसवः) संग्राम और वीर्य का ऐश्वर्य या समृद्धि ही (अग्रे) सबसे प्रथम (ओषधीषु सोमम्) औषधियों में जैसे सोम सर्वश्रेष्ठ सबसे अधिक वीर्यवान् है वैसे ही (अप्सु) प्रजाओं में (इमं राजानम्) सर्वोपरि सम्राट को (सुपुवे) उत्पन्न करता है। (ताः) वे औषधियाँ (अस्मभ्यम्) हमारे लिए (मधुमतीः) अन्न आदि पदार्थों से सम्पन्न हों और वे प्रजायें भी अन्नादि ऐश्वर्य से युक्त हों। (वयम्) हम अमात्य आदि राष्ट्र के पालक पुरुष (राष्ट्रे) राष्ट्र के सब कार्यों में (पुरोहिताः) अग्रसर होकर राष्ट्र में (स्वाहा) उत्तम शासन व्यवस्था सहित (जागृयाम) सदा जागते रहें।

आ ब्रह्मन् ब्राह्मणो ब्रह्मवर्चसी जायतामाराष्ट्रे राजन्यः
शूर ऽ इषव्योऽतिव्याधी महारथो जायतां दोग्ध्री
धेनुर्वोढानड्वानाशुः सप्तिः पुरन्धिर्योषा जिष्णू
रथेष्ठाः सभेयो युवास्य यजमानस्य वीरो जायतां
निकामे निकामे नः पर्जन्यो वर्षतु फलवत्यो न
ओषधयः पच्यन्तां योगक्षेमो नः कल्पताम् ॥६॥

यजुर्वेद २२।२२

हे (ब्रह्मन्) महान् शक्ति वाले ब्रह्मन् ! (राष्ट्रे) राष्ट्र में (ब्रह्मणः)

वेद का विद्वान् (ब्रह्मवर्चसी) ब्रह्मवर्चस्वी, वीर्यवान् (आ जायताम्) हो और राष्ट्र में (राजन्यः) राजा, क्षत्रियगण (शूरः) शूर, (इषव्यः) धनुर्धर, (अतिव्याधी) अति वेग और बल से शत्रु को परास्त करने वाला, (महारथः) महारथी, बड़े-बड़े रथारोही वीरों का स्वामी, (आ जायताम्) हो। (धेनुः दोग्ध्री) गाय बहुत दूध देने वाली (अनड्वान् वोढा) बैल खूब बोझा उठाने में समर्थ (आशुः सप्तिः) घोड़ा अति वेगवान् और (योषा पुरन्धिः) स्त्री कुटुम्ब को धारण करने में समर्थ हो। (जिष्णुः रथेष्ठाः) रथ पर स्थित वीर, विजयीशील हो। (अस्य यजमानस्य) सबको वेतन देने हारे राजा के राष्ट्र में (सभेयः युवा) सभा में साधु, उत्तम वक्ता और युवा (वीरः) वीर्यवान् पुरुष (आ जायताम्) हों। (नः) हमारे राष्ट्र में (निकामे निकामे) प्रत्येक प्रार्थना के अवसर पर जब-जब भी हमें आवश्यकता हो, तब-तब (पर्जन्यः वर्षतु) मेघ बरसे। (नः) हमारी (ओषधयः) औषधि, अन्न आदि (फलवत्यः) फल वाली होकर (पच्यन्ताम्) पकें। (नः) हमारे राष्ट्र में (योगक्षेमः) जो धन पहले प्राप्त न हो, वह प्राप्त हो, जो प्राप्त है, वह सुरक्षित (कल्पताम्) रहे।

सत्यं बृहदृतमुग्रं दीक्षा तपो ब्रह्म यज्ञः पृथिवीं धारयन्ति।
सा नो भूतस्य भव्यस्य पत्न्युरुं लोकं पृथिवी नः कृणोतु ॥७॥

अथर्ववेद १२।१।१

(बृहत् सत्यं) महान् सत्य, (उग्रं ऋतम्) उग्र बलवान्, भयकारी, 'ऋत' परम सत्यव्यवस्था, (दीक्षा) कार्य करने का दृढ़ संकल्प, (तपः) तपस्या, (ब्रह्म) वेद का ज्ञान और (यज्ञः) यज्ञ ये पदार्थ (पृथिवीं धारयन्ति) समस्त पृथिवी को धारण करते हैं। (सा) वह पृथिवी (नः) हमारे (भूतस्य) व्यतीत हुए कार्यों और (भव्यस्य) आगे होने वाले कार्यों की (पत्नी) स्वामिनी है। वह (पृथिवी) पृथिवी (नः) हमारे लिए (उरुं लोकं) विशाल स्थान (कृणोतु) प्रदान करे, जिसमें हम निवास करें और फूलें-फलें।

असंबाधं मध्यतो मानवानां यस्या उद्वतः प्रवतः समं बहु।
नानावीर्या ओषधीर्या बिभर्ति पृथिवी नः प्रथतां राध्यतां नः ॥८॥

अथर्ववेद १२।१।२

(मानवानाम्) मनुष्यों को (असंबाधम् मध्यतः) बिना एक-दूसरे

को पीड़ा दिये ही अर्थात् आवास हीन पड़ी हुई (यस्याः) जिस भूमि के (उद्वतः) ऊँचे और (प्रवतः) लम्बे-चौड़े या नीचे बहुत से भाग हैं और (बहु) बहुत-सा भाग (समम्) समान भी है, (या पृथिवी) जो पृथिवी (नानावीर्या) नाना प्रकार के वीर्यों वाली (ओषधीः) औषधियों को (बिभर्ति) धारण करती है, वह (नः प्रथताम्) हमारे लिए विशाल रूप में प्राप्त हो, हमारी भूमि सम्पत्ति खूब बढ़े और (नः राध्यताम्) हमें भरपूर अन्न, फल आदि सम्पत्ति प्राप्त करावे।

यस्यां समुद्र उत सिन्धुरापो यस्यामन्नं कृष्टयः संबभूवुः।
यस्यामिदं जिन्वति प्राणदेजत् सा नो भूमिः पूर्वपेये दधातु ॥९॥

अथर्ववेद १२।१।३

(यस्यां) जिस भूमि पर (समुद्रः) समुद्र (उत) और (सिन्धुः) बहने वाले नद-नाले और नाना प्रकार के (आपः) जल हैं और (यस्याम्) जिस पर (अन्नम्) अन्न (कृष्टयः) और नाना खेतियाँ (संबभूवुः) होती हैं, (यस्याम्) जिस पर (इदम्) यह (प्राणत् एजत्) जीता-जागता, चलता-फिरता संसार (जिन्वति) अन्न-जल खा-पीकर तृप्त होता और प्राण धारण करता है, (सा भूमिः) वह भूमि (नः) हमें (पूर्वपेये) पूर्व पुरुषों से प्राप्त करने योग्य उत्तम पद पर (दधातु) स्थापित करे।

विश्वंभरा वसुधानी प्रतिष्ठा हिरण्यवक्षा जगतो निवेशनी।
वैश्वानरं बिभ्रती भूमिरग्निमिन्द्रऋषभा द्रविणे नो दधातु ॥१०॥

अथर्ववेद १२।१।६

(विश्वम्भरा) समस्त विश्व का भरण-पोषण करने वाली वह पृथिवी ही (वसुधानी) सब बहुमूल्य धन सम्पत्तियों का भण्डार है। वह सबकी (प्रतिष्ठा) प्रतिष्ठा, मान और यश को बढ़ाने वाली, (हिरण्य वक्षाः) सुवर्ण आदि धातुओं को अपनी कोख में धारण करने वाली और (जगतः) समस्त संसार को अपने ऊपर (निवेशनी) बसाती है। वह (भूमिः) सबको उत्पन्न करने वाली भूमि (वैश्वानरम्) समस्त प्राणियों को और उसके हितकारी (अग्निम्) अग्नि और उसके समान तापकारी राजा को (बिभ्रती) धारण करती हुई, (इन्द्र-ऋषभा) इन्द्र अर्थात् राजा

को सर्व श्रेष्ठ रूप से अपने ऊपर शासक रूप से धारण करती हुई या (इन्द्र-ऋषभा) इन्द्र अर्थात् सूर्य रूप महावृषभ के समक्ष स्वयं गौ के समान उसके तेज से अपने में नाना चर-अचर सृष्टि को उत्पन्न करने हारी वह पृथिवी (नः) हमें (द्रविणे) धन ऐश्वर्य में (दधातु) स्थापित करे।

यस्यामापः परिचराः समानीरहोरात्रे अप्रमादं क्षरन्ति।
सा नो भूमिर्भूरिधारा पयो दुहामथो उक्षतु वर्चसा ॥११॥

अथर्ववेद १२।१।९

(यस्याम्) जिस पृथिवी पर (आपः) जल (परिचराः) लोक सेवा में लगे परिचारकों के समान (समानीः) समान भाव से (अहोरात्रे) दिन-रात (अप्रमादम्) प्रमाद शून्य होकर (क्षरन्ति) वहते हैं, (सा भूमिः) वह भूमि (भूरिधारा) वहुत-सी जल धाराओं से युक्त (नः) हमें (पयः दुहाम्) पुष्टिकारक जल और अन्न आदि पदार्थ अधिक मात्रा में उत्पन्न करे, (अथो) और (वर्चसा उक्षतु) तेज और धन से हमें सींचे, तेजस्वी वनावे।

यत् ते मध्यं पृथिवी यच्च नभ्यं यास्त ऊर्जस्तन्वः संबभूवुः।
तासु नो धेह्यभि नः पवस्व माता भूमिः पुत्रो अहं पृथिव्याः॥
पर्जन्यः पिता स उ नः पिपर्तु ॥१२॥

अथर्ववेद १२।१।१२

हे (पृथिवी) पृथिवी! (यत् ते मध्यम्) जो तेरा मध्य भाग है और (यत् च नभ्यम्) जो तेरा नाभि भाग है और (याः ऊर्जः) जो अन्न आदि वलकारक पदार्थ (ते तन्वः) तेरे शरीर से (संबभूवुः) उत्पन्न होते हैं, (नः) हमें (तासु धेहि) उनमें प्रतिष्ठित कर। (नः) हमें (अभिपवस्व) पवित्र कर। तू (भूमिः) सवकी उत्पादक होने के कारण मेरी (माता) माता है और (अहम्) मैं (पृथिव्याः पुत्रः) पृथिवी का पुत्र हूँ। (पर्जन्यः) समस्त रसों का प्रदान करने वाला 'पर्जन्यः' मेघ (पिता) सवका पालक 'पिता' है, (सः उ) वही (नः) हमारा (पिपर्तु) पालन करे।

महत् सधस्थं महती बभूविथ महान् वेग एजथुर्वेपथुष्टे ।
महांस्त्वेन्द्रो रक्षत्यप्रमादम् ।
सा नो भूमे प्र रोचय हिरण्यस्येव
संदृशि मा नो द्विक्षत कश्चन ।।१३।।

अथर्ववेद १२।१।१८

हे पृथिवी ! (महत् सधस्थम्) एकत्र होने के लिए तू एक बड़ा भारी भवन है। तू (महती बभूविथ) बहुत ही बड़ी है। (ते महान् वेगः) तेरा वेग भी बहुत बड़ा है। (ते एजथुः महान्) तेरा कम्पन भी बड़ा भारी होता है। तेरा संचालन भी बहुत बड़ा है, (महान् इन्द्रः) बड़ा भारी राजाधिराज, ऐश्वर्यवान् परमात्मा (त्वां) तेरी (अप्रमादम्) विना प्रमाद के (रक्षति) रक्षा करता है। हे (भूमे) सर्वोत्पादक पृथिवी ! (सा) वह तू (नः) हमारे लिये (हिरण्यस्य संदृशि) सुवर्ण के रूप में (प्र रोचय) तेजस्वीं प्रतीत हो। (नः) हमसे (कश्चन) कोई भी (मा द्विक्षत) द्वेष न करे।

उदीराणा उतासीनास्तिष्ठन्तः प्रक्रामन्तः ।
पद्भ्यां दक्षिणसव्याभ्यां मा व्यथिष्महि भूम्याम् ।।१४।।

अथर्ववेद १२।१।२८

हम लोग (उदीराणाः) उठते हुए (उत आसीनाः) और बैठे हुए, (तिष्ठन्तः प्रक्रामन्तः) खड़े हुए और चलते-फिरते, (दक्षिणसव्याभ्यां) दायें और बायें पैरों से (भूम्याम्) भूमि पर (मा व्यथिष्महि) कभी कष्ट अनुभव न करें, पैरों में कभी ठोकर आदि न खावें।

यच्छयानः पर्यावर्ते दक्षिणं सव्यमभि भूमे पार्श्वम् ।
उत्तानास्त्वा प्रतीचीं यत् पृष्टीभिरधिशेमहे ।
मा हिंसीस्तत्र नो भूमे सर्वस्य प्रतिशीवरि ।।१५।।

अथर्ववेद १२।१।३४

हे भूमे ! (यत्) जब मैं (शयानः) सोता हुआ (दक्षिणं सव्यम् अभि, सव्यं दक्षिणम् अभि) दायें से बायें और बायें से दायें (पार्श्वम्) पासे

(परि आवर्ते) करवट लूं और (यत्) जब हम (त्वा) तुझको अपने नीचे किये हुए (उत्ताना:) स्वयं उत्तान हुए (पृष्टीभि:) पीठ में मोहरों के बल पर सोते हैं तब हे (सर्वस्य प्रतिशीवरि) सबको अपने ऊपर सुलाने वाली ! माता के समान जननी ! (न:) हमें तू (मा हिंसी:) कभी मत मार।

ग्रीष्मस्ते भूमें वर्षाणि शरद्धेमन्तः शिशिरो वसन्तः ।
ऋतवस्ते विहिता हायनीरहोरात्रे पृथिवि नो दुहाताम् ॥१६॥

अथर्ववेद १२।१।३६

हे (भूमे) भूमे ! (ते) तेरे निमित्त या तेरे द्वारा ही (ग्रीष्म:) ग्रीष्म ऋतु (वर्षाणि) वर्षायें (शरत् हेमन्त: शिशिर: वसन्त:) शरत्, हेमन्त, शिशिर और वसन्त (ऋतव: विहिता:) ये ऋतुएँ परमात्मा ने बनाई हैं। इसी प्रकार (ते हायनी:) तेरे द्वारा या तेरे निमित्त वर्षा तथा (अहोरात्रे) दिन और रात बने हैं। वे सब (न: दुहाताम्) हमें अभिलषित सुख और सुखकारी पदार्थ प्रदान करें।

उपस्थास्ते अनमीवा अयक्ष्मा अस्मभ्यं सन्तु पृथिवि प्रसूताः ।
दीर्घं न आयुः प्रतिबुध्यमाना वयं तुभ्यं बलिहृतः स्याम ॥१७॥

अथर्ववेद १२।१।६२

हे (पृथिवि) पृथिवि ! (अस्मभ्यम्) हमारी (प्रसूता:) उत्पन्न सन्तानें (ते उपस्था:) तेरी गोद में रहकर सदा (अनमीवा:) रोग रहित (अयक्ष्मा:) यक्षमा आदि रोगों से रहित सुखी हृष्ट-पुष्ट होकर (सन्तु) रहें। (न: आयु:) हमारी आयु (दीर्घम्) बड़ी लम्बी ऐसे (प्रतिबुध्यमाना:) समझते हुए (वयं) हम (तुभ्यम्) तेरी रक्षा के लिए (बलिहृत: स्याम) भेट पूजा या कर देने वाले रहें।

उदेहि वाजिन् यो अप्स्व न्तरिदं राष्ट्रं प्र विश सूनृतावत् ।
यो रोहितो विश्वमिदं जजान स त्वा राष्ट्राय सुभृतं बिभर्तु ॥१८॥

अथर्ववेद १३।१।१

हे (वाजिन्) अन्नपते, वीर्यवन् राजन् ! (उद् एहि) तू उदय को प्राप्त हो। (य:) जो (अप्सु अन्न:) प्रजाओं के बीच में विद्यमान है वह

तू (सूनृतावत्) उत्तम शुभ वाणी और व्यवस्था से युक्त (इदं) इस (राष्ट्रं) राष्ट्र में (प्र विश) प्रवेश कर। (यः) जो (रोहितः) अति प्रदीप्त, लाल रंग की उज्ज्वल पोशाक में सजा हुआ, सूर्य के समान (इदं) इस (विश्वम्) समस्त राष्ट्र को (जजान) उत्पन्न करता या निर्माण करता है (सः) वह बड़ा व्यवस्थापक (राष्ट्राय) राष्ट्र के हित के लिए (सुभृतम्) उत्तमता से भरण-पालन करने में समर्थ (त्वा) तुझे (बिभर्तु) पालन-पोषण करे।

वि रोहितो अमृशद् विश्वरूपं समाकुर्वाणः प्ररुहो रुहश्च।
दिवं रूढ्वा महता महिम्ना सं ते राष्ट्रमनक्तु पयसा घृतेन ॥१६॥

अथर्ववेद १३।१।८

(रोहितः) सर्वोत्पादक परमात्मा (प्ररुहः) उत्कृष्ट प्रदेशों (रुहः च) और उनके उत्पन्न करने के सामर्थ्यों को (सम् आकुर्वाणः) एकत्र करता हुआ (विश्वरूपम्) इस विश्व के स्वरूप को (वि अमृशत्) नाना प्रकार से बनाता है और (महता) बड़ा भारी (महिम्ना) सामर्थ्य से (दिवं) द्यौलोक के भी ऊपर (रूढ्वा) अधिष्ठाता रूप से आरूढ़ होकर (ते) तेरे राष्ट्र को (पयसा) अन्न आदि पुष्टिकारक पदार्थों और (घृतेन) तेज से (सम् अनक्तु) भली प्रकार प्रकाशित करे।

परि त्वा धात् सविता देवो अग्निर्वर्चसा मित्रावरुणावभि त्वा।
सर्वा अरातीरवक्रामन्नेहीदं राष्ट्रमकरः सूनृतावत् ॥२०॥

अथर्ववेद १३।१।२०

(सविता देवः) सबका उत्पादक परमेश्वर (त्वा) तेरी (परिधात्) सब ओर से रक्षा करे। (अग्निः) अग्नि के समान तेजस्वी पुरुष (वर्चसा त्वा परिधात्) अपने तेज से तेरी रक्षा करे। (मित्रावरुणौ त्वा अभि) स्नेहीजन और शत्रु वारक सेनापति दोनों तेरी रक्षा करें और तू (सर्वाः) समस्त (अरातीः) शत्रु सेनाओं को (अवक्रामन्) अपने नीचे पद-दलित करता हुआ (राष्ट्रम्) राष्ट्र को (सूनृतावत्) उत्तम ज्ञान और सत्यव्यहार और सद्व्यवहार से युक्त (अकरः) बना।

व्रजं कृणुध्वं स हि वो नृपाणो वर्म सीव्यध्वं बहुला पृथूनि ।
पुरः कृणुध्वमायसीरधृष्टा मा वः सुस्रोच्चमसो दृंहता तम् ॥२१॥
अथर्ववेद १९।५८।४

हे मनुष्यो ! (व्रजंकृणुध्वम्) गौओं के रहने के लिए बड़ी-बड़ी गौशाला बनाओ (सः हि) वह गौशाला निश्चय से (वः) तुम्हारी (नृपाणः) पालना करने में समर्थ है और (बहुला) बहुत से (पृथूनि) बड़े-बड़े (वर्मा) कवच (सीव्यध्वम्) सीयो। (आयसीः) लोहे की (पुरः) दृढ़ नगरियाँ (अधृष्टाः) जिन पर शत्रु अपना बल न जमा सकें (कृणुध्वम्) बनाओ। (वः) तुम्हारा (चमसः) पात्र अर्थात् अन्न-जल आदि के रखने का साधन (मा सुस्रोत्) मत चुए। (तम् दृंहत) उसको खूब दृढ़ करो ।

वीरता सूक्त

सख्ये त इन्द्र वाजिनो मा भेम शवसस्पते ।
त्वामभि प्र णोनुमो जेतारमपराजितम् ॥१॥

ऋग्वेद १।११।२

हे (इन्द्र) ऐश्वर्यवन् ! परमेश्वर ! हे शत्रु नाशक राजन् ! सेनापते ! (वाजिनः) उत्तम ज्ञानवान् पुरुष उत्तम वेगवान् अश्वारोही ऐश्वर्यवान और संग्रामकारी योद्धागण हम (ते सख्ये) तेरे मित्रभाव में रहकर (मा भेम) कभी भयभीत न हों, सदा निर्भय रहें। हे (शवसस्पते) समस्त ज्ञानों और बलों के स्वामिन् ! (जेतारम्) जीतने वाले और (अपराजितम्) कभी स्वयं पराजित न होने वाले, अजेय, (त्वाम् अभि) तुझे ही लक्ष्य करके (प्र णोनुमः) सदा हम स्तुति करते हैं। तुझे नमन करते हैं।

इन्द्रः सुत्रामा स्ववाँ अवोभिः सुमृळीको भवतु विश्ववेदाः ।
बाधतां द्वेषो अभयं कृणोतु सुवीर्यस्य पतयः स्याम ॥२॥

ऋग्वेद ६।४७।१२

(इन्द्रः) ऐश्वर्य का दाता, दुष्टों का विदारक राजा, सेनापति (सु-त्रामा) प्रजा का सुख से और उत्तम रीति से पालन करने वाला, (स्व-वान्) अपने नाना बन्धु भृत्यादि से युक्त और 'स्व' अर्थात् नाना धनों का स्वामी (सु-मृळीकः) उत्तम सुखप्रद, कृपालु (अवोभिः) उत्तम

रक्षा साधनों, ज्ञानों और तृप्तिकारक अन्नों से (विश्व-वेदाः) समस्त ज्ञानों को जानने और समस्त धनों को प्राप्त करने वाला (भवतु) हो। वह (द्वेषः बाधतां) समस्त द्वेष करने वाले शत्रुओं को पीड़ित करे और (अभयं कृणोतु) हमें भय से रहित करे। जिससे हम सब (सु-वीर्यस्य पतयः) उत्तम बल वीर्य के पालक, स्वामी हों।

नकी रेवन्तं सख्याय विन्दसे पीयन्ति ते सुराश्वः।
यदा कृणोषि नदनुं समूहस्यादित्पितेव हूयसे ॥३॥

ऋग्वेद ८।२१।१४

हे प्रभो ! तू (रेवन्तं) धन से सम्पन्न पुरुष को (सख्याम) मित्र-भाव के योग्य (नकिः विन्दसे) कभी नहीं पाता। धन सम्पन्न जन (सुराश्वः) 'सुरा' मद्य पीकर घमण्ड में फूले, प्रपत्र के समान 'सुरा' अर्थात् सुख से रमण योग्य स्त्री भोग आदि विषय तथा राज्य लक्ष्मी से मदमत्त होकर (ते पीयन्ति) तेरे भक्तजनों को पीड़ित करते हैं और जब तू उनको (नदनुं) स्तुति करने वाला (कृणोषि) कर लेता है (आत् इत्) अनन्तर ही तू उन्हें (सम् ऊहसि) अच्छी प्रकार अपने साथ लेता है, अपनी गोद में उठा लेता है अथवा जब तू (नदनुं) उपदेश करता है, तू उनको अपने साथ संगठित करता और (आत् इत्) अनन्तर ही (पिता इव हूयसे) पिता के समान पुकारा जाता है।

इदं सु मे जरितरा चिकिद्धि प्रतीपं शापं नद्यो वहन्ति।
लोपाशः सिंहं प्रत्यञ्चमत्साः क्रोष्टा वराहं निरतक्त कक्षात् ॥४॥

ऋग्वेद १०।२८।४

हे (जरितः) शत्रुओं का नाशक ! तू (इदं) यह सामर्थ्य (मे) मेरा ही जान (हि) कि (नद्यः) नदियाँ (प्रतीपं शापं वहन्ति) विपरीत दिशा को जल बहाने लगती हैं, वैसे ही यह राजा का सामर्थ्य है कि (नद्यः) स्तुतियुक्त वा समृद्ध वा गर्जती सेनायें व प्रजायें (शापं प्रतीपं वहन्ति) ललकारते हुए शत्रु को भी उलटा भगा देती हैं। (लोपाशः = रोपासः) तृणचारी पशु भी (प्रत्यञ्चम् सिंहं) आगे आते सिंह के समान हिंसक को (अत्सात्) नष्ट करता है और (क्रोष्टा) शृगालवत् रोने वाला निर्बल भी (वराहं) शूकर के समान बलवान् को (कक्षात् निर्-अतक्त) मैदान से निकाल देता है।

शशः क्षुरं प्रत्यञ्चं जगाराद्रिं लोकेन व्यभेदमारात् ।
बृहन्तं चिदृहते रन्धयानि वयद्वत्सो वृषभं शूशुवानः ॥५॥

ऋग्वेद १०।२८।९

(शशः) मृग के समान तेज जाने वाला वीर (प्रत्यञ्चं क्षुरं) सन्मुख आने पर आने वाले शस्त्रादि को (जगार) निगल सकता है, उसे व्यर्थ कर सकता है और मैं (लोकेन) जन समूह के बल पर प्रकाश वा विद्युत से (अद्रिं) पर्वत के तुल्य विशाल शत्रु को भी (आरात् वि अभेदम्) दूर से ही छिन्न-भिन्न करूँ और (ऋहते) बढ़ाने वाले स्वामी के लिए मैं (बृहन्तं) भारी शत्रु को भी (रन्धयानि) वश करूँ। (वत्सः) बच्चा भी (शूशुवानः) वृद्धि को प्राप्त होकर (वृषभं वयत्) बैल से टक्कर लेता है।

नृचक्षा रक्षः परि पश्य विक्षु तस्य त्रीणि प्रति शृणीह्यग्रा ।
तस्याग्ने पृष्टीर्हरसा शृणीहि त्रेधा मूलं यातुधानस्य वृश्च ॥६॥

ऋग्वेद १०।८७।१०

हे (अग्ने) तेजस्विन् ! तू (नृ-चक्षाः) सब मनुष्यों के बीच प्रधान नेता, अध्यक्ष शासकों के व्यवहारों को भी देखने हारा है। तू (विक्षु) प्रजाओं में (रक्षः परि-पश्य) राक्षस स्वभाव के मनुष्य और अधिकारी को भी देख। (तस्य त्रीणि अग्ना) उसके तीन अगले कर्मों को (प्रति शृणीहि) प्रति समय नाश कर और (हरसा) तीक्ष्ण तेज वा दण्ड से (तस्य पृष्टीः) उसकी पीठ पर के सहायकारी जनों को भी (प्रति शृणीहि) खूब पीड़ित कर। (यातु-धानस्य) प्रजा को सताने वाले दुष्ट के (मूलम्) मूल को (त्रेधा) तीनों प्रकार से (वृश्च) काट डाल। जनबल, धनबल और मनोबल, उसके मूल पर तीनों प्रकार का आघात करना।

मा भेर्मा संविक्था ऽ ऊर्जं धत्स्व धिषणे
वीड्वी सती वीडयेथामूर्जं दधाथाम् ।
पाप्मा हतो न सोमः ॥७॥

यजुर्वेद ६।३५

हे राजन् ! और हे प्रजागण ! तू (मा भेः) भय मत कर। (मा संविक्थाः) तू भय से कम्पित न हो। तू (ऊर्जं धत्स्व) 'ऊर्जं' बल को धारण कर। हे राजा और प्रजा ! तुम दोनों ! (धिषणे) एक-दूसरे

का आश्रय होकर आकाश और पृथिवी या सूर्य और पृथिवी के समान दोनों (वीड्वी सती) वीर्यवान्, बलवान् होकर (वीडयेथाम्) एक-दूसरे का बल बढ़ाओ। प्रजा और राजा दोनों के बलिष्ठ होने पर (पाप्मा हत:) पाप करने वाला दुष्ट शत्रु पुरुष ही मारा जाय। (न सोम:) सर्वप्रेरक राजा या राष्ट्र वा उत्तम पुरुष का नाश नहीं हो।

ऊर्ध्वो भव प्रति विध्याध्यस्मदाविष्कृणुष्व दैव्यान्यग्ने।
अव स्थिरा तनुहि यातुजूनां जामिमजामिं प्रमृणीहि शत्रून्।
अग्नेष्ट्वा तेजसा सादयामि ॥८॥

यजुर्वेद १३।१३

हे तेजस्विन् राजन्! तू (ऊर्ध्व:) सबसे ऊँचा होकर (भव:) रहे। (दैव्यानि) दिव्य पदार्थों से बने विद्वान् पुरुषों के बनाये अस्त्रों को (आवि:कृणुष्व) प्रकट कर। (स्थिरा) दृढ़ धनुषों को (अव तनुहि) नमा। (यातुजूनाम्) वेग से चढ़ाई करने वाले शत्रुओं के (जामिम्) सम्बन्धी और (अजामिम्) असम्बन्धी (शत्रून् प्र मृणीहि) शत्रुओं का नाश कर। हे राजन्! हे वज्र! (त्वा) तुझको (अग्ने:) अग्नि के (तेजसा) तेज से (सादयामि) स्थापित करता हूँ।

प्रति दह यातुधानान् प्रति देव किमीदिन:।
प्रतीची: कृष्णवर्तने सं दह यातुधान्य: ॥९॥

अथर्ववेद १।२८।२

(देव) हे देव! मुख्य नेता! (किमीदिन: यातुधानान्) छिद्रान्वेषी यातना पहुँचाने वाले शत्रुओं को (प्रतिदह) प्रतिद्वन्दिता में अग्नि के अस्त्रों द्वारा दग्ध कर। हे (कृष्णवर्तने) शत्रु के कर्षण अर्थात् विनाश कर देने वाले! (यातुधान्य:) यातना पहुँचाने वाली शत्रु की सेनायें (प्रतीची:) यदि प्रति आक्रमण करें तो (सं दह) उन सबका तू आग्नेय अस्त्रों द्वारा संहार कर।

यूयमुग्रा मरुत: पृश्निमातर इन्द्रेण युजा प्र मृणीत शत्रून्।
आ वो रोहित: शृणवत् सुदानवस्त्रिषप्तासो
मरुत: स्वादु संमुद: ॥१०॥ अथर्ववेद १३।१।३

हे (उग्रा: मरुत:) बलवान् उग्र रूप मरुत् गणो! वायु के समान

तीव्र वेगवान् एवं शत्रु के मृत्युकारक, भारी मार मारने वाले सैनिकों ! (यूयम्) आप लोग (पृश्निमातरः) पृथिवी को अपनी माता स्वीकार करते हुए (इन्द्रेण युजा) राजा के सहित (शत्रून् प्र मृणीत) शत्रुओं का विनाश करो। (रोहितः) लाल पोशाक पहने तेजस्वी राजा (नः) आप लोगों के विषय में (अश्रृणवत्) सुने कि आप लोग (सु दानवः) उत्तम दानशील (त्रि-सप्तासः) इक्कीसों प्रकार के (मरुतः) मरुद्गण (स्वादु संमुदः) उत्तम भोगों में आनन्द लाभ कर रहे हैं।

इमं वीरमनु हर्षध्वमुग्रमिन्द्रं सखायो अनु सं रभध्वम्।
ग्रामजितं गोजितं बज्रबाहुं जयन्तमज्म प्रमृणन्तमोजसा ॥११॥

अथर्ववेद १९।१३।६

हे (सखायः) इन्द्र के मित्र राजागण ! (इमम्) इस (उग्रम्) उग्र स्वभाव वाले (इन्द्रम् वीरम् अनु) वीर इन्द्र के अनुकूल रहकर ही (हर्षध्वम्) तुम हर्ष उत्सव करो। (अनु) और उसकी आज्ञा में रहकर ही (सं-रभध्वम्) एकत्र होकर युद्ध आदि कार्य प्रारम्भ करो। (ग्रामजितम्) शत्रु समूहों के विजेता, (गोजितं) पृथ्वी के विजेता (बज्रबाहुम्) वज्र, तलवार एवं शक्ति को अपने हाथ में, वश में किये हुए, (अज्म जयन्तम्) युद्ध को विजय करने वाले, (ओजसा) अपने बल, पराक्रम और प्रभाव से शत्रुगण को (प्र-मृणन्तम्) खूब कुचलते हुए, (इन्द्रम् अनु सं रभध्वम्) राजा के अनुकूल वशवर्ती होकर उसके कार्य में सहयोग दो।

अस्माकमिन्द्रः समृतेषु ध्वजेष्वस्माकं या इषवस्ता जयन्तु।
अस्माकं वीरा उत्तरे भवन्त्वस्मान् देवासोऽवता हवेषु ॥१२॥

अथर्ववेद १९।१३।११

(अस्माकम् इन्द्रः) हमारा इन्द्र राजा (समृतेषु ध्वजेषु) जब युद्ध के झण्डे भी परस्पर मिल रहे हों तब भी रक्षा करे। (याः अस्माकं इषवः) जो हमारे वाण हैं (ताः जयन्तु) वे शत्रुओं पर विजय करें। (अस्माकं वीराः) हमारे वीरगण (उत्तरे भवन्तु) विजयी रहें। हे (देवासः) समस्त योद्धा और राजागण (हवेषु) युद्धों में (अस्मान्) आप लोग हमारी (अवतु) रक्षा करो।

कालः सूक्त

कालो अश्वो वहति सप्तरश्मिः सहस्त्राक्षो अजरो भूरिरेताः ।
तमा रोहन्ति कवयो विपश्चितस्तस्य चक्रा भुवनानि विश्वा ॥१॥

अथर्ववेद १९।५३।१

(अश्व) जिस प्रकार घोड़ा रथ को खेंच ले जाता है उसी प्रकार (कालः) काल सबको खींच कर ले जा रहा है। (सप्त-रश्मिः) वह काल महत्व, अहंकार, पूत मात्रा रूपी सात रासों वाला, (सहस्त्राक्षः) हजारों का क्षय करने वाला (भूरि रेताः) और बहुत बल से युक्त है। (तम्) उस पर (कवयः) क्रान्तदर्शी (विपश्चितः) तथा नाना कर्मों और ज्ञान का संचय करने हारे विद्वान् (आ रोहन्ति) चढ़ते हैं, उसको वश कर लेते हैं। (तस्य) उसके ही ये (विश्वा भुवना) समस्त लोक (चक्राः) उसके महान् रथ में लगे चक्रों के समान गति करते हैं। इससे समस्त लोकों की वृत्ताकार गति और सबको गोलाकार आकृति का भी वर्णन हो गया।

सप्त चक्रान् वहति काल एष सप्तास्य नाभीरमृतं न्वक्षः ।
स इमा विश्वा भुवनान्यञ्जत् कालः स ईयते प्रथमो नु देवः ॥२॥

अथर्ववेद १९।५३।२

(एषः कालः) वह काल (सप्त) सात ग्रहरूपी या ऋतुरूपी (चक्रान्) चक्रों को (वहति) प्रेरित करता है। (यस्य) उसकी (सप्त नाभीः)

सात नाभियाँ हैं। उसकी धुरी (अमृतम्) कभी नष्ट होने वाली नहीं है। (सः) वह सर्व संहारकारी (इमा) इन (विश्वा) समस्त (भुवनानि) भुवनों को (अञ्जत्) चलाता है। (ईयते) वह क्रीड़ा करता हुआ गति कर रहा है।

पूर्णः कुम्भोऽधि काल आहितस्तं वै पश्यामो बहुधा नु सन्तः।
स इमा विश्वा भुवनानि प्रत्यङ् कालं तमाहुः परमे व्योमन् ॥३॥

अथर्ववेद १९।५३।३

(काले अधि) काल में (पूर्णः) यह सम्पूर्ण (कुम्भः) आकाशमय ब्रह्माण्ड (आहितः) रखा है। (तम्) उसको हम (सन्तः) सज्जन पुरुष (बहुधा) रूपों में (पश्यामः) देखते हैं। (सः) वह (इमा) इन (विश्वा भुवनानि) समस्त भुवनों, लोकों में (प्रत्यङ्) व्यापक है। वह (परमे) सर्वोच्च (व्योमन्) आकाश में भी विद्यमान है। (तम्) उसको (कालम् आहुः) 'काल' नाम से विद्वान् लोग कहते हैं।

स एव सं भुवनान्याभरत् स एव सं भुवनानि पर्यैत्।
पिता सन्नभवत् पुत्र एषां तस्माद् वै नान्यत् परमस्ति तेजः ॥४॥

अथर्ववेद १९।५३।४

(सः एव) वह काल ही (भुवनानि) समस्त लोकों को (सम् आ अभरत्) भली प्रकार पालन-पोषण करता या उत्पन्न करता है और (सः एव) वही (भुवनानि) समस्त उत्पन्न लोकों में (परि ऐत्) व्यापक है। वह (एषाम्) इन लोकों का (पिता सन्) पिता होकर (पुत्रः) पुत्र भी (अभवत्) है। सूर्य चन्द्र आदि की गति से दिन, मास, ऋतु, पक्ष, सम्वत्सर आदि उत्पन्न होते हैं, इस नाते वह काल इन लोकों का 'पुत्र' भी है। (तस्मात् वै) निश्चय ही उस काल से (अन्यत्) दूसरा (परम्) उत्कृष्ट (तेजः) सामर्थ्य और तेज (न अस्ति) नहीं है क्योंकि परमात्मा भी काल के अनुसार ही सर्जन और प्रलय करता है।

कालोऽमूं दिवमजनयत् काल इमाः पृथिवीरुत।
काले ह भूतं भव्यं चेषितं ह वि तिष्ठते ॥५॥

अथर्ववेद १९।५३।५

(कालः) काल (अमूम्) उस (दिवम्) द्यौलोक और उसमें

विद्यमान समस्त लोकों को (अजनयत्) उत्पन्न करता है। (इमाः पृथिवी) इन पृथिवियों को (उत) भी (कालः) काल (अजनयत्) उत्पन्न करता है। (भूतम्) अतीत और (भव्यम् च) भविष्यत् में उत्पन्न होने वाला जगत् दोनों (काले ह) काल में ही विद्यमान रहता है। (इषिरम्) और गतिमान् पदार्थ उसी काल द्वारा प्रेरित होकर (वि तिष्ठते) विविध दशाओं में स्थित है।

कालो भूतिमसृजत काले तपति सूर्यः ।
काले ह विश्वा भूतानि काले चक्षुर्वि पश्यति ।।६।।

अथर्ववेद १९।५३।६

(कालः) काल (भूतिम्) समस्त जगत् की सत्ता को या समस्त जगत् की विभूति को (असृजत) बनाता है। (सूर्यः) सूर्य (काले) काल के अधीन होकर (तपति) तपता है। (विश्वाभूतानि) समस्त प्राणीगण (काले ह) निश्चय से 'काल' के ही अधीन हैं। (चक्षुः) देखने वाला इन्द्रिय चक्षु भी उस (काले) काल के अधीन होकर (वि पश्यति) विविध पदार्थों को देखता है।

काले मनः काले प्राणः काले नाम समाहितम् ।
कालेन सर्वा नन्दन्त्यागतेन प्रजा इमाः ।।७।।

अथर्ववेद १९।५३।७

(काले) काल में मनन क्रियायें होती हैं। (काले) काल में (प्राणः) समष्टि प्राण विद्यमान हैं। (नाम) पदार्थों के नाम भी (काले) काल में ही (सम् आहितम्) विद्यमान हैं। (आगतेन) अनुकूल रूप से आये हुए (कालेन) काल से ही (सर्वाः इमाः) ये समस्त (प्रजाः) प्रजाएँ (नन्दन्ति) समृद्ध और आनन्द प्रसन्न होती हैं।

काले तपः काले ज्येष्ठं काले ब्रह्म समाहितम् ।
कालो ह सर्वस्येश्वरो यः पितासीत् प्रजापतेः ।।८।।

अथर्ववेद १९।५३।८

(काले) काल में ही (तपः) तप विद्यमान है। (काले ज्येष्ठं) ज्येष्ठता तथा कनिष्ठता काल में आश्रित है। (ब्रह्म) वेद ज्ञान वा महान् ब्रह्माण्ड (काले) उस काल में ही (समाहितम्) विद्यमान है। (कालः) काल (ह) ही (सर्वस्य ईश्वरः) सबका स्वामी है। (यः) जो 'काल' (प्रजापतेः) प्रजा के पालक राजाओं का भी (पिता आसीत्) पिता है।

तेनेषितं तेन जातं तदु तस्मिन् प्रतिष्ठितम् ।
कालो ह ब्रह्म भूत्वा बिभर्ति परमेष्ठिनम् ॥९॥

अथर्ववेद १९।५३।९

यह जगत् (तेन) उसने (इषितम्) चला रखा है, (तेन) उसके द्वारा (जातम्) उत्पन्न हुआ है, (तस्मिन्) उस काल के आश्रय पर ही (प्रतिष्ठितम्) प्रतिष्ठित है । (कालः ह) काल ही निश्चय से (ब्रह्म) वृहत् स्वरूप होकर (परमेष्ठिनम्) परम सत्य पर आश्रित समस्त ब्रह्माण्ड को (बिभर्ति) धारण कर रहा है ।

कालः प्रजा असृजत कालो अग्रे प्रजापतिम् ।
स्वयम्भूः कश्यपः कालात् तपः कालादजायत ॥१०॥

अथर्ववेद १९।५३।१०

(कालः) काल ही (प्रजाः असृजत) प्रजाओं का सर्जन करता है । (कालः) काल (अग्रे) सृष्टि के आदि में (प्रजापतिम्) प्रजा की पालक शक्तियों को (असृजत) उत्पन्न करता है । (स्वयम्भूः) स्वयं अपनी शक्ति से विद्यमान, (कश्यपः) सबका द्रष्टा सूर्य (कालात्) काल से उत्पन्न हुआ और (तपः) सूर्यों में विद्यमान तपन शक्ति (कालात् अजायत) काल से उत्पन्न होती है ।

कालादापः समभवन् कालाद् ब्रह्म तपो दिशः ।
कालेनोदेति सूर्यः काले नि विशते पुनः ॥११॥

अथर्ववेद १९।५४।१

(कालात्) काल से (आपः) जल तथा प्रकृति के सूक्ष्म परमाणु (सम् अभवन्) उत्पन्न होते हैं । (कालात् ब्रह्म) काल से वेद अथवा यह बृहत् ब्रह्माण्ड उत्पन्न होता है । उसी से (तपः दिशः) तापकारी अग्नि, तपस्या और दिशायें उत्पन्न होती हैं । (कालेन सूर्यः उदेति) काल के बल से सूर्य उदय होता है और वह (पुनः) फिर (निविशते) अस्त होता है ।

कालेन वातः पवते कालेन पृथिवी मही ।
द्यौर्मही काल आहिता ॥१२॥

अथर्ववेद १९।५४।२

(कालेन) काल से (वातः पवते) वायु बहता है, (कालेन) काल से

(मही पृथिवी) यह बड़ी पृथ्वी (पवते) गति कर रही है और (काले) काल के आश्रय में (मही द्यौः आहिता) विशाल द्यौः अर्थात् नक्षत्र चक्र भी आश्रित हैं।

कालो ह भूतं भव्यं च पुत्रो अजनयत् पुरा।

कालादृचः समभवन् यजुः कालादजायत ॥१३॥

अथर्ववेद १९।५४।३

(पुत्रः कालः) १९।५३।४ मन्त्र में कहा पुत्र रूप काल (ह) निश्चय से (पुरः) सबसे प्रथम (भूतं भव्यं च अजनयत्) अतीत और भविष्यत् काल को उत्पन्न करता है। (कालात्) काल से (ऋचः) ऋग्वेद के मन्त्र (सम् अभवत्) प्रादुर्भूत हुए और (यजुः) यजुर्वेद के मन्त्र भी (कालाद्) काल से ही (अजायत) प्रकट हुए।

कालो यज्ञं समैरयद्देवेभ्यो भागमक्षितम्।

काले गन्धर्वाप्सरसः काले लोकाः प्रतिष्ठिताः ॥१४॥

अथर्ववेद १९।५४।४

(कालः) काल में ही (यज्ञम्) यज्ञों की विधियाँ व्यवस्थित हैं और काल से ही देव यज्ञों द्वारा देवों को यज्ञिय अक्षय भाग मिलता है। जो (गन्धर्वाप्सरसः काले प्रतिष्ठिताः) नर-मादा सभी काल के आश्रय पर विराजते हैं (लोकाः काले प्रतिष्ठिताः) लोक भी काल में प्रतिष्टित हैं।

कालेऽयमङ्गिरा देवोऽथर्वा चाधि तिष्ठतः।

इमं च लोकं परमं च लोकं पुण्यांश्च लोकान् विधृतीश्च पुण्याः।

सर्वांल्लोकानभिजित्य ब्रह्मणा कालः स ईयते परमो नु देवः ॥१५॥

अथर्ववेद १९।५४।५

(काले) काल पर (अयम्) यह (देवः) अग्नि सूर्य और (अथर्वा च) वायु (अधि तिष्ठतः) आश्रित हैं। (कालः) वह काल (ब्रह्मणा) अपने महान् सामर्थ्य से (इमं लोकं च) इस लोक को, (परमं च लोकं) उस दूर स्थित लोक को, (पुण्यान् लोकान् च) समस्त पुण्य लोकों को, (पुण्याः विधृतीः च) समस्त पुण्य मर्यादाओं को और (सर्वान् लोकान् अभिजित्य) समस्त लोकों को विजय करके, (परमः) सर्वोच्च (देवः नु) सर्व प्रकाशक (ईयते) जाना जाता है।

द्यावा पृथ्वी सूक्त

कतरा पूर्वा कतरापरायोः कथा जाते कवयः को वि वेद।
विश्वं त्मना बिभृतो यद्ध नाम वि वर्तेते अहनी चक्रियेव ॥१॥

ऋग्वेद १।१८५।१

(अयोः) माता और पिता व कार्यं कारण इन दोनों में से (कतरा पूर्वा) पहले कौन उत्पन्न हुआ और (कतरा अपरा) बाद में कौन उत्पन्न हुआ अथवा (पूर्वा कतरा और अपरा कतरा) मुख्य कौन और गौण कौन ? या पहले मातृ रूप या जनक रूप से कौन और 'अपर' अर्थात् पीछे कार्य रूप से कौन है ? और यह भी बतलाओ कि (कथा जाते) वे दोनों क्यों, किस प्रयोजन से उत्पन्न हुए हैं ? हे (कवयः) दीर्घदर्शी विद्वान् पुरुषो ! आप लोग बतलावें कि इस तत्व का रहस्य (कः वि-वेद) कौन भली प्रकार से जानता है यह तत्व किसने साक्षात् किया है, वस्तुतः ये दोनों ही स्त्री पुरुष माता और पिता (त्मना) स्वयं अपने आप अपने देह से और अपनी आत्मा से (विश्वं) सब जगत् को या समस्त 'विश्वं' अर्थात् जीव मात्र को (बिभृतः) विविध प्रकार से धारण पोषण करते हैं और जिस प्रकार सूर्य और पृथ्वी (त्मना विश्वं नाम बिभृतः) अपने सामर्थ्य से समस्त जल को धारण करती हैं उसी प्रकार, (अहनी) रात और दिन के समान और (चक्रिया-इव) रथ के दो पहियों के समान (वि वर्त्तेते) विविध प्रकार से वर्त्तते हैं।

भूरि द्वे अचरन्ती चरन्तं पद्वन्तं गर्भमपदी दधाते ।
नित्यं न सूनुं पित्रोरुपस्थे द्यावा रक्षतं पृथिवी नो अभ्वात् ।।२।।

ऋग्वेद १।१८५।२

जिस प्रकार (द्वे) दोनों (अचरन्ती) विचलित न होते हुए (अपदी) स्वयं पादों से रहित स्थावर होकर भी सूर्य पृथ्वी दोनों (चरन्तं) विचरणशील जंगम, (पद्वन्तं) ज्ञान साधनों या चरणों से युक्त जीव संसार को (गर्भम्) अपने भीतर (दधाते) धारण करते हैं उसी प्रकार (द्वे) दोनों माता-पिता भी (अचरन्ती) अधर्म पथ पर न चलते हुए और धर्म-मार्ग या गृहस्थ में स्थिर रहते हुए (अपदी) स्वयं विशेष पद या महत्वाकाँक्षा या सुखों से रहित होकर भी (चरन्तं) स्पन्दनशील (पद्वन्तं) विशेष चेतना युक्त चरणों से युक्त (गर्भम्) गर्भ को (दधाते) धारते हैं और (पित्रो:) माता-पिताओं की (उपस्थे) गोद में (सूनुं न) पुत्र के समान हो पृथ्वो और आकाश दोनों (नित्यं) स्थायी (सूनुं) सर्वप्रेरक सूर्य को धारण करते हैं। वे दोनों आकाश और पृथ्वी, उनके समान माता और पिता दोनों (न:) हमें (अभ्वात्) असत्याचरण से उत्पन्न दु:ख तथा (अभ्वात्) असामर्थ्य, उत्तम योनि में और उत्तम संस्कारों के न उत्पन्न होने आदि बुरे भाग्य से (रक्षतम्) हमें बचावें ।

अनेहो दात्रमदितेरनर्वं हुवे स्वर्वदवधं नमस्वत् ।
तद्रोदसी जनयतं जरित्रे द्यावा रक्षतं पृथिवी नो अभ्वात् ।।३।।

ऋग्वेद १।१८५।३

जिस प्रकार आकाश और पृथ्वी दोनों का (दात्रं) जीवों के प्रति प्रकाश, वायु, जल, जीवन उपयोगी अन्नादि का दान (अदिते:) उस अखण्ड आकाश, सूर्य, अन्तरिक्ष और पृथ्वी से ही उत्पन्न होता और वह (अनर्वं) अविनाशी, (अवधं) पीड़ा न देने वाला, (नमस्वत्) अन्नादि से सम्पन्न, (स्वर्वत्) सुखजनक, (अनेह:) निष्काम निष्पाप होता है उसी प्रकार (अदिते:) अखण्ड शासन, अखण्ड चरित्रवान् माता-पिता का भी (दात्रम्) दिया हुआ जीवन और धन (अनेह:) निष्पाप (अनर्वम्) अक्षयं, (अवधं) वध आदि द्वारा जीवन नाश के संकटों से रहित, बिना किसी का वध किये ही प्राप्त होने वाला, (नमस्वत्) अन्न, शस्त्रास्त्र बल से युक्त, (स्वर्वत्) अग्नि सुखकारी हो । (तत्) वैसे सभी ग्राह्य पदार्थों को (द्यावा पृथिवी) आकाश और पृथ्वी के समान माता-पिता (रोदसी)

उपदेश दाता होकर (जरित्रे) गुण स्तुति या परोपदेश करने वाले पुत्र के हितार्थ ही उसको (जनयतम्) उत्पन्न करें। (द्यावा पृथिवी) सूर्य और पृथ्वी के समान माता और पिता दोनों (नः अभ्वात्) हमें बड़े अपराध से (रक्षतं) बचावें।

अतप्यमाने अवसावन्ती अनु ष्याम रोदसी देवपुत्रे।
उभे देवानामुभयेभिरह्नां द्यावा रक्षतं पृथिवी नो अभ्वात् ।।४।।

ऋग्वेद १।१८५।४

जिस प्रकार (अवसा) अन्नादि पालन सामर्थ्य से (रोदसी) द्यौ और पृथ्वी, आकाश या सूर्य और पृथ्वी दोनों (देव पुत्रे) प्रकाशवान् सूर्य को पुत्र के समान धारण करते हुए या देव अर्थात् परमेश्वर के पुत्र के समान रह कर या देव विद्वानों और सूर्यादि लोकों को पुत्र के समान रखते हुए (अवन्ती) सब का पालन करते हुए भी (अतप्यमाने) कभी पीड़ित होकर अपने कार्य में शिथिल नहीं होते। उसी प्रकार आकाश और पृथ्वी के समान ही माता और पिता भी (अवसा) अन्न आदि पालन और रक्षा के सामर्थ से पुत्रों और प्रजाओं की (अवन्ती) पालना और रक्षा करते हुए (अतप्यमाने) कभी सन्ताप और दुःख अनुभव करने वाले न हुआ करें। वे दोनों (रोदसी) सन्तानों को उपदेश करने और कुपथों से रोकथाम करने वाले हुआ करें। वे दोनों (देवपुत्रे) विद्वान पुत्रों के माता-पिता बनें, अर्थात् उत्तम सन्तानों को जनें। जिस प्रकार (उभे द्यावा पृथिवी) पूर्व कहे दोनों आकाश और पृथ्वी (देवानां अह्लाम्) सूर्य से प्रकाशमान दिन और चन्द्र के प्रकाश वाली रात्रि दोनों के (उभयेभिः) दोनों रूपों से (अभ्वात् रक्षतः) जीवों की कष्ट से रक्षा और पालन करते हैं उसी प्रकार (उभे) दोनों माता-पिता भी (देवानाम अह्लाम्) प्रकाशवान् दिनों के दिन रात्रि दोनों रूपों से (नः) हमें (अभ्वात्) उत्तम योनि में न होने रूप महान् कष्ट से (रक्षतं) बचावें, वे सन्तानों को उत्तम रीति से पैदा और पालन करें।

संगच्छमाने युवती समन्ते स्वसारा जामी पित्रोरुपस्थे।
अभिजिघ्रन्ती भुवनस्य नाभिं द्यावा
रक्षतं पृथिवी नो अभ्वात् ।।५।।

ऋग्वेद १।१८५।५

जिस प्रकार (द्यावा पृथ्वी) आकाश और भूमि दोनों परस्पर

(संगच्छमाने) एक-दूसरे से सदा मिली हुई (युवती) अति वलशालिनी, (समन्ते) सीमा भागों में मिले हुए, (स्वसारा) वहनों या भाई-बहन के समान या (जामी) एक पेट से उत्पन्न सन्तानों के समान बन्धु होकर (भुवनस्य नाभिम्) संसार के केन्द्र को सब प्रकार से धारण करती हैं। इसी प्रकार पिता और माता दोनों भी (संगच्छमाने) परस्पर एक घर में संगत होकर (युवती) युवावस्था में विद्यमान (स्वसारा) स्वयं एक-दूसरे को प्राप्त होने वाले (पित्रोः) अपने माता-पिताओं के (उपस्थे) समीप (जामी) अति बन्धुवत् बालक बालिका के समान (समन्ते) उत्तम परिणाम या उद्देश्य को धारण करने वाले होकर भी (भुवनस्य नाभिम्) उत्पन्न बालक की नाभि को (अभि जिघ्रन्तौं) प्रेमवश बार-बार सूँघते या चुम्बन करते हुए (नः) हमें (अभ्वात्) असामर्थ्य से उत्पन्न दुःखों से (रक्षतं) मुक्त करें।

उर्वी सद्मनी बृहती ऋतेन हुवे देवानामवसा जनित्री।
दधाते ये अमृतं सुप्रतीके द्यावा रक्षतं पृथिवी नो अभ्वात् ॥६॥

ऋग्वेद १।१८५।६

जिस प्रकार आकाश और पृथ्वी, (उर्वी) बहुत दूर तक फैली हुई (सद्मनी) समस्त लोकों और जनों का आश्रय देने वाली (बृहती) बहुत बड़ी, (ऋतेन) जल और अन्न के द्वारा और (अवसा) तेज और रक्षण, तृप्ति आदि नाना साधनों से (देवानां) उत्तम पुरुषों उत्तम दिव्य पदार्थों को (जनित्री) उत्पन्न करने वाली और (सुप्रतीके) उत्तम ज्ञान, चेतना देने वाली होकर (अमृतं दधाते) जल और तेज को धारण करती हैं उसी प्रकार स्त्री-पुरुष, पति-पत्नी या माता-पिता भी (उर्वी) बड़े विशाल हृदय वाले, (सद्मनी) घर के समान सबको अपनी शरण में लेने वाले, (बृहती) प्रजाओं को बढ़ाने वाले, (ऋतेन) धन अन्न और सत्य ज्ञान से (देवानाम्) विद्वानों और उत्तम गुणों, पदार्थों और प्रिय बन्धुजनों की (अवसी) तृप्ति, इच्छा पूर्ति, प्रेमालिंगन, अवगम, प्रवेश, स्वाभ्य, रक्षण आदि द्वारा (जनित्री) माता के समान उनको उत्पन्न करने हारे हों। उनको मैं (हुवे) आदर पूर्वक स्वीकार करता हूँ। (ये) जो बे दोनों (अमृतं) पुत्र, प्रजा आदि को और अन्न जल आदि को (दधाते) धारण करते हैं वे (सु प्रतीके) उत्तम सुख और ज्ञान प्रतीति वाले (द्यावा पृथिवी) सूर्य पृथ्वी के समान होकर (नः) हमें (अभ्वात्) कष्ट से (रक्षतं) रक्षा करें।

उर्वी पृथ्वी बहुले दूरे अन्ते उप ब्रुवे नमसा यज्ञे अस्मिन् ।
दधाते ये सुभगे सुप्रतूर्ती द्यावा रक्षतं पृथिवी नो अभ्वात् ।।७।।

ऋग्वेद १।१८५।७

आकाश और पृथ्वी के समान माता-पिता, राजा और राज सभा (उर्वी) बड़े (पृथ्वी) अति विस्तृत, यशस्वी, (बहु-ले) बहुत से पदार्थों को ला देने वाले, (दूरे-अन्ते) दूर और समीप सर्वत्र विद्यमान हैं और जो (सुभगे) उत्तम ऐश्वर्यवान् (सुप्रतूर्ती) अति वेगवान, कार्य कुशल होकर बिना विलम्ब के (दधाते) हमारा पालन-पोषण करते हैं, मैं उनको (अस्मिन् यज्ञे) इस सत्संग और आदर सत्कार के अवसर पर (नमसा) बड़े आदर भाव से (उपब्रुवे) बुलाऊँ। वे ही (द्यावापृथ्वी) आकाश और पृथ्वी के समान माता-पिता (नः अभ्यात् रक्षतम्) हमें दुःख से बचावें।

देवान्वा यच्चकृमा कच्चिदागः सखायं वा सदमिज्जास्पतिं वा ।
इयं धीर्भूया अवयानमेषां द्यावा रक्षतं पृथिवी नो अभ्वात् ।।८।।

ऋग्वेद १।१८५।८

हम लोग (देवान्) विद्वानों के प्रति (यत् वा) जो भी (कत् चित् आगः) किसी प्रकार का कभी भी अपराध करें, और कोई भी अपराध (सखायं वा) मित्र के प्रति या (जास्पतिम् वा) पति-पत्नी, जामाता या किन्हीं भी वर-वधू के प्रति कोई अपराध करे (एषाम्) उन सब अपराधों को (अवयानम्) दूर करने का उपाय (सदम् इत्) सदा ही (इयं) यह (धी) धारणा, कर्म, यह दृढ़ व्रत हो। (द्यावा पृथिवी) सूर्य और पृथ्वी के समान माता-पिता गुरु आचार्य राजा प्रजा आदि सभी (नः) हमें (अभ्वात् रक्षतम्) पाप से बचावें।

उभा शंसा नर्या मामविष्टामुभे मामूती अवसा सचेताम् ।
भूरि चिदर्यः सुदास्तरायेषा मदन्त इषयेम देवाः ।।९।।

ऋग्वेद १।१८५।९

पूर्वोक्त आकाश और पृथ्वी के समान (उभा) दोनों माता-पिता, राजा-प्रजा, गुरु या गुरुपत्नी या सावित्री, दोनों (शंसा) स्तुति योग्य और (नर्या) मनुष्यों को हितकारक होकर (माम् अविष्टाम्) मेरी रक्षा करें। मुझे प्राप्त हों, मुझे प्रसन्न, तृप्त करें और मुझसे प्रेम करें। और (उभे) वे दोनों। (ऊती) उत्तम रक्षक शत्रुनाक प्रजा तर्पक, बुद्धिकारक होकर

(अवसा) रक्षण, ज्ञान, कान्ति आदि गुणों से (सचेताम्) हमें प्राप्त हों (अर्यः) वणिग्जन जिस प्रकार उत्तम धन देने वाले को (भूरि) अधिक पदार्थ प्रसन्न होकर देता है उसी प्रकार हम (अर्यः) स्वामी, ऐश्वर्यवान् होकर (इषा) अन्नादि से यथेच्छ (मदन्तः) तृप्त प्रसन्न होकर (भूरि चित् इषयेम) बहुत अधिक धन और ज्ञान को प्राप्त करने की इच्छा और यत्न करें।

ऋतं दिवे तदवोचं पृथिव्या अभिश्रावाय प्रथमं सुमेधाः।
पातामवद्याद्दुरितादभीके पिता माता च रक्षतामवोभिः ।।१०।।

ऋग्वेद १।१८५।१०

मैं (सुमेधाः) उत्तम ज्ञानवान् होकर (दिवे) सूर्य के समान तेजस्वी राजवर्ग (पृथिव्यै) पृथ्वी के समान उसके आश्रय प्रजागण के हित के लिए ही (प्रथमं) सबसे प्रथम और सबसे उत्तम (तत्) उस (ऋतम्) सत्य ज्ञान सत्य व्यवस्था वा वेद वचन का (अवोचम्) उपदेश करता हूँ जो (अभि श्रावाय) सबको श्रवण करने योग्य है। दोनों ही (अभीके) परस्पर प्रेमयुक्त होकर हमें (अवद्यात् दुरितात्) निन्दा योग्य पाप से (पाताम्) रक्षा करें और (अवोभिः) नाना रक्षण तर्पण, गृह प्रवेश, प्रसाधन, शत्रुवध आदि उपायों से (पाताम्) पालन करें और वही दोनों (रक्षताम्) हम सबकी रक्षा करें।

इदं द्यावापृथिवी सत्यमस्तु पितर्मातर्यदिहोपब्रुवे वाम्।
भूतं देवानामवमे अवोभिर्विद्यामेषं वृजनं जीरदानुम् ।।११।।

ऋग्वेद १।१८५।११

हे (द्यावा पृथ्वी) सूर्य और पृथ्वी और उनके समान (पितः मातः) पिता और माता! (यत् इह) जो भी मैं यहाँ इस लोक में (वाम् उप ब्रुवे) आप दोनों के सम्बन्ध में अन्यों को उपदेश करूँ या आप दोनों को जो कुछ कहूँ (इदं) वह (सत्यम् अस्तु) सत्य ही हो। आपके प्रति आपके विषय में असत्य न कहूँ। आप दोनों सदा और (देवानाम्) विद्वानों और उत्तम गुणों के (अवोभिः) रक्षण आदि साधनों और गुणों से (अवसे) सदा समीप और आश्रय रूप होकर (भूतम्) रहो। जिससे हम सब लोग (इषं वृजन जीरदानुम् विद्याम) अन्न, उत्साह, बल और जीवन प्राप्त करें।

शयन वन्दना सूक्त

अग्ने त्व ँ सु जागृहि वय ँ सु मन्दिषीमहि ।
रक्षा णोऽअप्रयुच्छन् प्रबुधे नः पुनस्कृधि ॥१॥

यजुर्वेद ४।१४

हे (अग्ने) राजन् ! (त्वं) तू (सु) भली प्रकार (जागृहि) जाग, प्रमाद रहित रहकर पहरा दे। (वयं) हम (सु) अच्छी प्रकार, निश्चिन्त होकर (मन्दिषीमहि) सोवें। (नः) हमारी (अप्रयुच्छन्) प्रमाद रहित होकर (रक्ष) रक्षा कर (पुनः) और फिर हमें (प्रबुधे) जागृत दशा में (कृधि) कर दे, जगा दे ।

यज्जाग्रतो दूरमुदैति दैवं तदु सुप्तस्य तथैवैति ।
दूरङ्गमं ज्योतिषां ज्योतिरेकं तन्मे मनः शिवसंल्पमस्तु ॥२॥

यजुर्वेद ३४।१

(यत्) जो (मनः) मन, संकल्प विकल्पकारी अन्तःकरण (जाग्रतः) जगते हुए पुरुष का (दूरम् उद् आ एति) दूर-दूर के पदार्थों तक जाता है। और (सुप्तस्य) वह ही सोते हुए पुरुष का (तथा एव) उसी प्रकार (एति) उसके भीतर आ जाता है। (तत्) वह (उ) निश्चय से

(ज्योतिषाम्) प्रकाश वाले ग्रह नक्षत्रादि के बीच सूर्य के समान, नाना विषयों को प्रकाशित करने वाले इन्द्रियगण के बीच में (दूरंगमम्) दूर तक पहुँचने वाला (ज्योतिः) प्रकाशक साधन है। वह ही (दैवम्) देव अर्थात् विषयों में रमण करने वाले आत्मा का ही (एकम्) एकमात्र भीतरी साधन है (तत्) वह मेरा (मनः) मन, ज्ञान का साधन सदा (शिवसंकल्पम्) शुभ संकल्प वाला (अस्तु) हो।

येन कर्माण्यपसो मनीषिणो यज्ञे कृण्वन्ति विदथेषु धीराः।
यदपूर्वं यक्षमन्तः प्रजानां तन्मे मनः शिवसंकल्पमस्तु ॥३॥

यजुर्वेद ३४।२

(येन) जिस मन से (अपसः) कर्म करने वाले पुरुष और (मनीषिणः) मनस्वी, ज्ञानी और (धीराः) ध्याननिष्ठ योगीजन, (विदथेषु) यज्ञों, ज्ञानयुक्त व्यवहारों सभा स्थानों और युद्धादि के अवसरों में और (यज्ञे) यज्ञ या परम उपासनीय पूज्य परमेश्वर के निमित्त (कर्माणि) नाना उत्तम कर्म (कुर्वन्ति) करते हैं और (यत्) जो (प्रजानाम्) समस्त प्रजाओं के भीतर (अपूर्वम्) अद्भुत, भीतरी इन्द्रिय है और (यज्ञम्) अन्य इन्द्रियों की सुव्यवस्था करने वाला है (तत्) वह (मे मनः शिवसंकल्पम् अस्तु) मेरा मन शुभ संकल्प वाला हो।

यत्प्रज्ञानमुत चेतो धृतिश्च यज्ज्योतिरन्तरमृतं प्रजासु।
यस्मान्नऽऋते किञ्चन कर्म क्रियते तन्मे
मनः शिवसंकल्पमस्तु ॥४॥

यजुर्वेद ३४।३

(यत्) जो मन (प्रज्ञानम्) ज्ञान का साधन है जो (चेतः) यथार्थ ज्ञान और स्मरण करने का साधन है और जो (धृतिः च) धारण अर्थात् चिरकाल तक स्मरण रखने का साधन है और (यत्) जो (प्रजासु) प्राणियों के भीतर (अमृतम्) कभी नष्ट न होने वाला (अन्तः) भीतर हो (ज्योतिः) सब पदार्थों का प्रकाशक ज्योति भी है। (यस्मात् ऋते) जिसके बिना (किञ्चन कर्म) कुछ भी कर्म (न क्रियते) नहीं किया जाता (तत् मे मनः) वह मेरा मन (शिव संकल्पम्) उत्तम विचारवान् (अस्तु) हो।

येनेदं भूतं भुवनं भविष्यत्परिगृहीतममृतेन सर्वम् ।
येन यज्ञस्तायते सप्तहोता तन्मे मनः शिवसंकल्पमस्तु ॥५॥

यजुर्वेद ३४।४

(येन) जिसके द्वारा (इदम्) यह (भूतम्) अतीत, भूतकाल, (भुवनम्) वर्तमानकाल और (भविष्यत्) भविष्यत् काल के (सर्वम्) समस्त पदार्थ (अमृतेन) अमृत, नित्य आत्मा के साथ मिलकर (परिगृहीतम्) जाने जाते हैं और (सप्तहोता) जैसे ब्रह्मा आदि सात ऋत्विजों से यज्ञ किया जाता है उसी प्रकार (येन) जिस अन्तःकरण द्वारा (सप्तहोता) शिर में स्थित विषयों के ग्रहण करने वाले चक्षु आदि सात इन्द्रियों अथवा शरीर को धारण और जीवन देने वाले सात धातुओं से युक्त (यज्ञः) आत्मा, देहरूप यज्ञ (तायते) सम्पादन किया जाता है। (तत्) वह (मे मनः) मेरा मन (शिवसंकल्पम्) शुभ संकल्प वाला (अस्तु) हो।

यस्मिन्नृचः साम यजु ँ षि यस्मिन् प्रतिष्ठिता
रथनाभाविवाराः ।
यस्मिँश्चित्त ँ सर्वमोतं प्रजानां तन्मे मनः शिवसंकल्पमस्तु ॥६॥

यजुर्वेद ३४।५

(रथनाभौ अराः इव) रथ के चक्र की नाभि में जैसे अरे लगे होते हैं वैसे ही (यस्मिन्) जिस मन में (ऋचः) ऋग्वेद के मन्त्र, (साम) सामवेद और (यंजूषि) यजुर्वेद के मन्त्र (प्रतिष्ठिताः) स्थित हैं और (यस्मिन्) जिसमें (प्रजानाम्) प्रजाओं, प्राणियों के (सर्वम् चित्तम्) समस्त चित्त, समस्त पदार्थों का ज्ञान भी (ओतम्) सूत्र में मणियों के समान और पट में सूत्रों के समान ओत-प्रोत अर्थात् पिरोये हुए हैं (तत्) वह मेरा (मनः) अन्तःकरण और उससे युक्त आत्मा (शिवसंकल्पम् अस्तु) वेद तथा परमेश्वर आदि के ज्ञान, पठन, मनन, आदि उत्तम विचार परम्परा से युक्त हो।

सुषारथिरश्वानिव यन्मनुष्यान्नेनीयतेऽभीशुभिर्वाजिनऽइव ।
हृत्प्रतिष्ठं यदजिरं जविष्ठं तन्मे मनः शिवसंकल्पमस्तु ॥७॥

यजुर्वेद ३४।६

(सुषारथिः=सु-सारथिः) उत्तम सारथि, (अभीशुभिः) बागों से

(वाजिनः) वेगवान् (अश्वान् इव) अश्वों को जैसे (नेनीयते) ले जाता है वैसे ही (यत्) जो मन, (अभीषुभिः) शीघ्र गतियों और प्रेरक वृत्तियों से (वजिनः) ज्ञान और बल से युक्त (मनुष्यान्) मननशील प्राणियों को (नेनीयते) ले जाता है और (यत्) जो (हृत्प्रतिष्ठम्) हृदय स्थान में स्थित और (अजिरम्) जरा आदि दशाओं से रहित, सदा बलवान् अथवा विषयों के प्रति इन्द्रियों को ले जाने और स्वयं संकल्प द्वारा जाने में समर्थ हैं और जो (जविष्ठम्) सबसे अधिक वेगवान् हैं (तत् मे मनः) वह मेरा मन (शिवसंकल्पम् अस्तु) शुभ संकल्प वाला हो ।

इस सूक्त का नित्य शयन समय अर्थ सहित पाठ करना चाहिये ।

विविध सूक्त

सहस्त्रं साकमर्चत परि ष्टोभत विंशतिः।
शतैनमन्वनोनवुरिन्द्राय ब्रह्मोद्यतमर्चन्ननु स्वराज्यम् ॥१॥

ऋग्वेद १।८०।९

जो राजा (स्वराज्यम्) अपने राज्यपद की (अनु) प्रतिदिन (अर्चत) अर्चना, मान आदर और वृद्धि करता रहे उस (सहस्त्रं) बलवान्, सहस्त्रों प्रजाओं, ऐश्वर्यों और राष्ट्र कार्यों के आश्रय स्वरूप पुरुष का आप सब लोग (साकम्) एक साथ मिलकर (अर्चत) सत्कार करो। (विंशतिः) बीसों आमात्य, सहायक मिलकर (परिस्तोभत) सब प्रकार से राज्य कार्य को सँभालें। (एनम्) इस राज्यपद को (शता) सैकड़ों सेना के पुरुष (अनु अनोनवुः) आदर से नमन और सत्कार करें। (ब्रह्म) यह महान् राष्ट्र, धनैश्वर्य और महान् पद और ज्ञानमय वेद (इन्द्राय) परम ऐश्वर्यवान् राजा की वृद्धि के लिये (उद्यतम्) उत्तम रीति से व्यवस्था-पूर्वक स्थिर हो, वहीं उसका रक्षक स्वामी हो।

द्वा सुपर्णा सयुजा सखाया समानं वृक्षं परिषस्वजाते।
तयोरन्यः पिप्पलं स्वाद्वत्त्यनश्नन्नन्यो अभि चाकशीति ॥२॥

ऋग्वेद १।१६४।२०

जिस प्रकार (द्वा सुपर्णा) दो उत्तम पंखों वाले पक्षी (सयुजा) एक साथ प्रेम से संयुक्त हुए, (सखाया) एक-दूसरे के मित्र बने हुए, एक नाम वाले, (समानं) एक ही (वृक्षं परि) वृक्ष के ऊपर (सस्वजाते) स्थित होकर एक-दूसरे से आलिंगन करते या वृक्ष का आश्रय लेते हैं, उस पर सुख लाभ करते हैं। (तयोः अन्यः) उनमें से एक (स्वादु पिप्पलं अत्ति) स्वादयुक्त फल खाता हो। (अन्यः) दूसरा (अनश्नन्) न खाता हुआ (अभिचाकशीति) देखकर, उसी प्रकार आत्मा और परमात्मा, दोनों (सुपर्णा) शोभन, सुन्दर, उत्तम ज्ञान और पालन शक्ति से युक्त होने से 'सुपर्ण' हैं। परमात्मा सर्वोत्तम ज्ञानी सबसे बड़ा पालक है, जीव उत्तम कर्म करने हारा, उसके दिये ज्ञान से ज्ञानवान्, यम नियमादि का पालक और अधीनस्थ प्राणों और देहादि संघात का पालक होने से 'सुपर्ण' हैं। वे दोनों (सयुजा) सदा साथ रहने वाले साथी हैं। वे व्याप्य-व्यापक भाव से सदा सम्बद्ध हैं, पिता पुत्र भाव से, आश्रयाश्रयी भाव से व उपास्य-उपासक भाव से सदा युक्त हैं। (सखाया) दोनों सखा अर्थात् मित्र के समान रहते हैं। 'आत्मा' यह दोनों समान नाम हैं। एक समान दोनों स्वप्रकाश हैं। वे दोनों (समानं वृक्षं परि सस्वजाते) एक समान वृक्ष का आश्रय लेते हैं। व्रश्चनीय अर्थात् काटे जाने वाले देह में जीवात्मा आश्रित है। विराट् ब्रह्म रूप में परमेश्वर है वह प्रलय में काट दिया जाता है। (तयोः अन्यः) उन दोनों में से एक जीवात्मा (स्वादुः) स्वादु, मनोहर वाञ्छित (पिप्पलं) पके फल के समान अपने किये पाप पुण्यमय कर्म के सुख दुःख रूप फल का भोग करता है और (अन्यः) दूसरा, परमेश्वर (अनश्नन्) भोग नहीं करता हुआ (अभि चाकशीति) केवल साक्षी मात्र होकर सर्व द्रष्टा होकर रहता है।

यत्रा सुपर्णा अमृतस्य भागमनिमेषं विदथाभिस्वरन्ति।
इनो विश्वस्य भुवनस्य गोपाः सया धीरः पाकमत्रा विवेश ॥३॥

ऋग्वेद १।१६४।२१

जिस प्रकार (सुपर्णाः) रश्मियें (अमृतस्य भागम्) जल के अंश को लेती और (अनिमेषं) निरन्तर (विदथा) सब पदार्थों के लाभ या ज्ञान

कराने के निमित्त (अभिस्वरन्ति) सर्वत्र प्रकाश करती हैं, जल ग्रहण के लिये सर्वत्र तपती हैं, (इनः) सूर्य (विश्वस्य भुवनस्य) समस्त जगत् का (गोपाः) रक्षक है (सः) वह (पाकम् आविवेश) पकने योग्य औषधि आदि में किरणों द्वारा प्रविष्ट हो जाता (या) उनको परिपक्व रस प्रदान करता है। उसी प्रकार (यत्र) जिस परमेश्वर में (सुपर्णाः) उत्तम कार्य और उत्तम ज्ञान से सम्पन्न, उत्तम गति से जाने वाले देवयान मार्ग के आत्म ज्ञानी पुरुष (अमृतस्य) उस अमृत, नित्य, अविनाशी, परमेश्वर के स्वरूप के (भागम्) भजन सेवन को ही (अनिमेषं) निरन्तर समाहित चित्त होकर (विदथा) ज्ञान और परम पद के लाभ के लिये (अभिस्वरन्ति) उसी की स्तुति करते और अन्यों को उसका उपदेश करते हैं और वही (इनः) सबका स्वामी परमेश्वर (विश्वस्य भुवनस्य) समस्त जगत् का (गोपाः) रक्षक है। (सः) वह (धीरः) ध्यानवान्, धीर, बुद्धिमान पुरुष (पाकम्) परिपक्व ज्ञान वाले (मा) मुझ साधक को (अत्र) इस परमेश्वर प्राप्ति के मार्ग में (आविवेश) सब प्रकार से ज्ञान प्रदान करे।

त्वं हि नः पिता वसो त्वं माता शतक्रतो बभूविथ।
अधा ते सुम्नमीमहे ॥४॥

ऋग्वेद ८।९८।११

हे (वसो) सबके पिता, सबको बसाने हारे, सर्व व्यापक ! हे (शत-क्रतो) अपरिमित ज्ञान, कर्मों वाले ! (त्वं हि नः पिता) तू निश्चय से हमारा पिता और (त्वं माता बभूविथ) तू ही हमारी माता है। (अध) इसी कारण हम (ते सुम्नम् ईमहे) तेरे से सुख की याचना करते हैं।

मोघमन्नं विन्दते अप्रचेताः सत्यं ब्रवीमि वध इत्स तस्य।
नार्यमणं पुष्यति नो सखायं केवलाघो भवति केवलादी ॥५॥

ऋग्वेद १०।११७।६

वह (अप्र चेताः) अनुदार चित्त पुरुष (मोघम् अन्नं विन्दते) व्यर्थ ही धन-अन्न आदि प्राप्त करता है। (सत्यं ब्रवीमि) मैं सत्य कहता हूँ कि (सः तस्य वधः इत्) वह उसका मरण ही है। क्योंकि वह (नअर्यमणं पुष्यति) न तो अपने शत्रुओं को वश करने वाले राजा को ही पुष्ट करता और (न सखायं) न वह अपने समान ख्याति वाले मित्र को पुष्ट करता है। (केवलादी) केवल स्वयं खाने या भोगने वाला पुरुष (केवलाघः भवति) पाप ही अर्जन करता है।

सं वां मना ँसि सं व्रता समु चित्तान्याकरम् ।
अग्ने पुरीष्याधिपा भव त्वं न ऽ इषमूर्जं यजमानाय धेहि ॥६॥

यजुर्वेद १२।५८

मैं आचार्य या पुरोहित (वाम्) तुम दोनों के (मनांसि) मन के संकल्प विकल्पों को (सं अकरम्) समान करता हूँ। (व्रतासम्) प्रतिज्ञाओं को समान रूप करता हूँ। (चित्तानि) चित्तों को भी (सम् आ अकरम्) समान करता हूँ। हे (अग्ने) ज्ञानवान् ! विद्वान् ! हे (पुरीष्य) पुर में सबसे अधिक इष्ट, समृद्ध राजन् ! (त्वम् अधिपाःभव) तू सबका स्वामी हो। (इषम् ऊर्जम्) अन्न और बल को तू (नः यजमानाय) हमारे में से दानशील, सत्संगी, धर्मात्मा पुरुष को (धेहि) प्रदान कर।

रुचं नो धेहि ब्राह्मणेषु रुच ँराजसु नस्कृधि ।
रुचं विश्येषु शूद्रेषु मयि धेहि रुचा रुचम् ॥७॥

यजुर्वेद १८।४८

(नः ब्राह्मणेषु) हमारे ब्राह्मणों में (रुचा) अपने व्यापक प्रेम द्वारा (रुचं धेहि) तेज प्रदान कर। (नः राजसु) हमारे राजगणों में (रूचं देहि) तेज प्रदान कर। (विश्येषु) वैश्यजनों में और (शूद्रेषु) शूद्रों में भी (रुचं धेहि) प्रेम प्रदान कर। और (मयि) मेरे में भी तू अपने विशाल प्रेम द्वारा (रुचं धेहि) प्रेम प्रदान कर। अर्थात् राजा, ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य, शूद्र सब में प्रेम पैदा कर। आपस में घृणा और द्वेष के बीज न बोवे और (मयि) मेरे निमित्त और प्रजाजनों में (रुचा रुचं) प्रेम द्वारा सबमें प्रेम (धेहि) पैदा कर।

समानी प्रपा सह वोऽन्नभागः समाने योक्त्रे सह वो युनज्मि ।
सम्यञ्चो ऽ ग्निं सपर्यतारा नाभिमिवाभितः ॥८॥

अथर्ववेद ३।३०।६

हे मनुष्यो ! (समानी प्रपा) आप लोगों की एक ही पानीयशाला हो जहाँ से सब समान रूप से जल पी सकें। (वः सह अन्न भागः) तुम लोगों का परस्पर प्रेम से एक साथ ही अन्न का भोजन हो इसी कारण (वः) तुम लोगों को मैं (समाने योक्त्रे) एक ही बन्धन में (युनज्मि) बाँधता हूँ; जोड़ता हूँ और (सम्यञ्चः) उत्तम रीति से एक फल को प्राप्त

करने की अभिलाषा से एकत्र होकर ही (नाभिम् इव अभित: अरा:) केन्द्र के चारों ओर अरों के समान (अग्नि) ज्ञान स्वरूप परमेश्वर और विद्वान्, गुरु और यज्ञाग्नि की (सपर्यंत) उपासना करो।

उत नग्ना बोभुवती स्वप्नया सचसे जनम् ।
अराते चित्तं वीर्त्सन्त्याकूतिं पुरुषस्य च ॥९॥

अथर्ववेद ५।७।८

हे अराते ! अदानशीलते ! तू (पुरुषस्य) पुरुष, उद्यमी जन के (चित्तं) चित्त को (आकूतिं च) और बुद्धि को भी (वि-ईर्त्सन्ती) मन्द कर देती है, (उत) और (नग्ना बोभुवती) अपने नग्न-रूप में तू (जनम्) मनुष्य के पास (स्वप्नया) आलस्य, बेखबरी से (सचसे) आ जाती है। अर्थात् कंजूसी प्रथम चित्त और बुद्धि में खोट पैदा करती है और अज्ञान दशा में अपने नग्न-रूप में मनुष्य पर सवार हो जाती है। उसके साथ मनुष्य भी लोभ में पड़कर निर्लज्ज हो जाता है।

अग्निः प्रातःसवने पात्वस्मान् वैश्वानरो विश्वकृद् विश्वशंभूः ।
सनः पावको द्रविणे दधात्वायुष्मन्तः सहभक्षाः स्याम ॥१०॥

अथर्ववेद ६।४७।१

(प्रातः सवने) प्रातःकाल के सवन=वसु ब्रह्मचर्य के समय (वैश्वानर:) समस्त पुरुषों का हितकारी विराट् (विश्व-शम्भू:) सबके लिए सुख-शान्ति का स्थान, (विश्व कृद्) संसार का रचयिता (अग्नि:) अग्नि=ज्ञानमय परमात्मा (पातु) हमारी रक्षा करे। (स: पावक) सबको पवित्र करने वाला वह (न:) हमें (द्रविणे दधातु) बल और धनसमृद्धि में स्थापित करे और हम सब (आयुष्मन्त:) दीर्घ आयु वाले होकर (सहभक्षा:) मिलकर भोग भोगने वाले (स्याम) हों।

अक्ष्यौ नौ मधुसंकाशे अनीकं नौ समञ्जनम् ।
अन्तः कृणुष्व मां हृदि मन इन्नौ सहासति ॥११॥

अथर्ववेद ७।३६।१

(नौ) हम, पति और पत्नि की (अक्ष्यौ) आँखें (मधु-संकाशे) मधु के समान मधुर हों। (नौ) हमारा (सम् अञ्जनम्) एक-दूसरे के प्रति दर्शन (अनाकम्) सुखकारी हो। हे प्रियतम और प्रियतमे ! (माम्) मुझको तू (अन्तः हृदि) हृदय के भीतर (कृणुष्व) रख ले। (नौ) हम दोनों का (मन: इत्) मन भी (सह असति) सदा साथ रहे।

श्यामश्च त्वा मा शबलश्च प्रेषितौ यमस्य यौ पथिरक्षी श्वानौ ।
अर्वाङेहि मा वि दीध्यो मात्र तिष्ठः पराङ्मनाः ॥१२॥

अथर्ववेद ८।१।९

(श्याम: च) श्याम और (शबल:) श्वेत रात और दिन यह दोनों (यमस्य) सर्वनियन्ता परमेश्वर के (प्रेषितौ) भेजे हुए (पथि रक्षी) जीवन मार्ग के काल की रक्षा करने वाले (श्वानौ) सदा गतिशील हैं। तू (अर्वाङ्) सामने, आगे की ओर (एहि) बढ़ (मा विदीध्य:) विलाप मत कर । (अत्र) इस लोक में (पराङ्मना:) पराङ् मुख होकर (मा तिष्ठ:) मत बैठ ।

अन्ति सन्तं न जहात्यन्ति सन्तं न पश्यति ।
देवस्य पश्य काव्यं न ममार न जीर्यति ॥१३॥

अथर्ववेद १०।८।३२

पुरुष (अन्ति सन्तम्) समीप विद्यमान उस परमदेव को (न जहाति) कभी दूर नहीं कर सकता, कभी नहीं त्याग सकता, कभी उससे पृथक नहीं हो सकता और वह पुरुष (अन्ति सन्तम्) समीप में विद्यमान् उस परम देव को (न पश्यति) देखता भी नहीं है। (देवस्य काव्यं पश्य) इसके लिए उस परम देव के वेद रूपी काव्य को देख जो काव्य (न ममार) न कभी मरता है और (न जीर्यति) न जीर्ण होता है, न पुराना होता है ।

श्रद्धां प्रातर्हवामहे श्रद्धां मध्यन्दिनं परि ।
श्रद्धां सूर्यस्य निम्रुचि श्रद्धे श्रद्धापयेह नः ॥१४॥

ऋग्वेद १०।१५१।५

हम (प्रात: श्रद्धां) प्रात:काल श्रद्धा का आह्वान करते हैं, (मध्यं-दिनं परि श्रद्धां हवामहे) दिन के मध्यकाल में (सूर्यस्य नि-म्रुचि) तथा सूर्य के अस्तकाल में भी श्रद्धा का आह्वान करते हैं। हे (श्रद्धे) श्रद्धे ! तू (न: इह श्रद्धापय) हमें इस जगत में श्रद्धा धारण करा।

मेधां सायं मेधां प्रातर्मेधां मध्यन्दिनं परि ।
मेधां सूर्यस्य रश्मिभिर्वचसा वेशयमहे ॥१५॥

अथर्ववेद ६।१०८।५

(सायम्) संध्या के समय (मेधाम्) बुद्धि-शक्ति को (वचसा)

वैदिक वचनों के अनुसार हम (आवेशयामहे) अपने में स्थापित करते हैं, (प्रातः) प्रातः समय (मेधाम्) बुद्धिशक्ति को (मध्यन्दिनं परि) मध्याह्न काल में (मेधाम्) बुद्धिशक्ति को और (सूर्यस्य) सूर्य की (रश्मिभिः) किरणों के समय (मेधाम्) बुद्धिशक्ति को अपने में हम स्थापित करते हैं। अर्थात् हम हर समय बुद्धिपूर्वक कार्य करें।

अग्ने समिधमाहार्षं बृहते जातवेदसे।

स मे श्रद्धां च मेधां च जातवेदाः प्र यच्छतु ॥१६॥

अथर्ववेद १९।६४।१

हे (अग्ने:) ज्ञानवान् आचार्य ! (जातवेदसे) अति विद्वान् होने के लिये, अग्नि के प्रति काष्ठ के समान, (सम्-इधम) भली प्रकार तेरी संगति से ज्ञान द्वारा प्रज्वलित होने वाले अपनी आत्मा को तेरे पास (अहार्षम्) मैं लाया हूँ। (जातवेदाः) वेदों को जाननेहारा विद्वान् ! तू (मे) मुझे (श्रत्-धाम्) श्रद्धा अर्थात् सत्य ज्ञान धारण करने का सामर्थ्य और (मेधाम्) पवित्र ज्ञान समझने और प्रकट करने वाली प्रतिभा शक्ति (प्र यच्छतु) प्रदान कर।

पृच्छामि त्वा परमन्तं पृथिव्याः पृच्छामि वृष्णो अश्वस्य रेतः।

पृच्छामि विश्वस्य भुवनस्य नाभिं पृच्छामि वाचः परमं व्योम ॥१७॥

अथर्ववेद ९।१०।१३

हे विद्वान् गुरुजनों ! (त्वा) तुमसे मैं जिज्ञासु (पृथिव्याः) इस विस्तृत जगत् का (परम् अन्तंम्) परम अन्त (पृच्छामि) पूछता हूँ और (वृष्णः) सब पदार्थों के मेघ के समान वर्षण करने वाले, बलशाली (अश्वस्य) सर्वव्यापक प्रभु की (रेतः) सर्वोत्पादक शक्ति के विषय में (पृच्छामि) प्रश्न करता हूँ और (विश्वस्य) समस्त (भुवनस्य) संसार के (नाभिम्) मूलकारण के विषय में (पृच्छामि) प्रश्न करता हूँ और (वाचः) वेदवाणी के (परमं व्योम) परम आश्रय स्थान के विषय में (पृच्छामि) प्रश्न करता हूँ।

इयं वेदिः परो अन्तः पृथिव्या अयं सोमो वृष्णो अश्वस्य रेतः।

अयं यज्ञो विश्वस्य भुवनस्य नाभिर्ब्रह्मायं वाचः परमं व्योमं ॥१८॥

अथर्ववेद ९।१०।१४

(इयम्) यह (वेदिः) ज्ञानमय और सत्ता स्वरूप प्रभु शक्ति

(पृथिव्याः परः अन्तः) इस जगत् का परम आश्रय है। (अयम्) यह (सोमः) सबका प्रेरक सूर्य (वृष्णः अश्वस्य रेतः) जैसे वर्षणशील अश्व = मेघ का उत्पादक है वैसे ही वह सूर्य इस बलवान् सर्व वर्षक (अश्वस्य) सर्वव्यापक परमेश्वर का (रेतः) उत्पादक सामर्थ्य है। (अयं यज्ञः) यह यज्ञमय परमात्मा (विश्वस्य भुवनस्य नाभिः) समस्त संसार की नाभिः केन्द्र है। (अयं ब्रह्मा) वह महान् परमात्मा ही (वाचः) वेदवाणियों का (परमम्) परम (व्योम) आश्रय है।

अपश्यं गोपामनिपद्यमानमा च परा च पथिभिश्चरन्तम् ।
स सध्रीचीः स विषूचीर्वसान आ वरीवर्ति भुवनेष्वन्तः ॥१९॥

अथर्ववेद ९।१०।११

मैं योगी (गोपाम्) समस्त ज्ञानवाणी या गतिशील जगत् के पालक परमेश्वर को (आ पथिभिः च) समीपस्थ लोकों और (परा पथिभिः च) दूरस्थ लोकों में (चरन्तम्) व्यापक (अनिपद्यमानम्) कभी भी नाश न होने वाले नित्य रूप में (अपश्यम्) देखता हूँ। (सः) वह प्रभु (सध्रीचीः) एक साथ विराजमान और (विषूचीः) विविध विरोधी शक्तियों को भी (वसानाः) धारण करता हुआ (भुवनेषु) समस्त लोकों के (अन्तः) भीतर (आ वरीवर्त्ति) क्रिया उत्पन्न कर रहा है।

द्यौर्नः पिता जनिता नाभिरत्र बन्धुर्नो माता पृथिवी महीयम् ।
उत्तानयोश्चम्वो३र्योनिरन्तरत्रा पिता दुहितुर्गर्भमाधात् ॥२०॥

अथर्ववेद ९।११।१२

(द्यौः) सूर्य के समान प्रकाशमान परमेश्वर (नः पिता) हमारा पिता और (जनिता) उत्पादक है। वही (नाभिः) सबका मूल कारण है। वही (मही इयम् पृथिवी) विस्तृत पृथिवी के समान विशाल होकर (नः) हमारी (माता) माता है। वही (नः बन्धुः) हमारा बन्धु है। वही परमेश्वर (उत्तानयोः) ऊपर को विस्तृत (चम्वोः) व्यापनशील, द्यौ, पृथिवी दोनों का (योनिः) आश्रय स्थान है। (पिता) सबका पालक परमेश्वर (अत्र) इस संसार में (दुहितुः) समस्त पदार्थों को पूर्ण करने और उत्पन्न करने वाली पृथिवी और द्यौ के भीतर (गर्भम्) नाना पदार्थों के उत्पादन सामर्थ्य को (आधात्) प्रदान करता है।

बलिवैश्वदेव यज्ञ

मोघमन्नं विन्दते अप्रचेता: सत्यं ब्रवीमि वध इत्स तस्य।
नार्यमणं पुष्यति नो सखायं केवलाघो भवति केवलादी ॥

ऋग्वेद १०।११७।६

(अप्र-चेता:) अनुदार चित्त पुरुष (मोघम् अन्नं विन्दते) व्यर्थ ही धन-अन्न आदि प्राप्त करता है। (सत्यं ब्रवीमि) मैं सत्य कहता हूँ कि (स: तस्य वध: इत्) वह उसका मरण ही है। क्योंकि वह (न अर्यमणं पुष्यति) न तो अपने शत्रुओं को वश करने वाले राजा को ही पुष्ट करता और (नो सखायं) न वह अपने समान-ख्याति वाले मित्र को पुष्ट करता है। (केवलादी) केवल स्वयं खाने या भोगने वाला पुरुष (केवल-अघ: भवति) पाप ही अर्जन करता है।

अघं स केवलं भुङ्क्तेय: पचत्यात्माकारणात्।
यज्ञ शिष्टाशनंह्येतत्सतामन्नं विधीयते ॥

मनु० ३।११८

जो केवल अपने लिये अन्न पकाता है वह निरा पाप खाता है, और जो यज्ञादि से शेष अर्थात् बलिवैश्व यज्ञ के पश्चात् का भोजन है वह सज्जनों का भोजन है।

यज्ञशिष्टाशिनः सन्तो मुच्यन्ते सर्वकिल्विषैः ।
भुञ्जते ते त्वघं पापा ये पचन्त्यात्मकारणात् ॥

गीता ३।१७

कारण ! कि यज्ञ से शेष बचे हुए अन्न को खाने वाले श्रेष्ठ पुरुष पापों से छूटते हैं और जो पापी लोग अपने शरीर पोषण के लिए ही अन्न पकाते हैं, वे तो पाप को ही खाते हैं।

निम्न दस मन्त्रों से घृतमिश्रित भात की, यदि भात न बना हो तो क्षार और लवणान्न को छोड़ के जो कुछ पाक में बना हो उसकी पहले अग्नि में १० आहुति देनी अथवा केवल घी की।

ओम् अग्नये स्वाहा ॥१॥
ओं सोमाय स्वाहा ॥२॥
ओं अग्नीषोमाभ्यां स्वाहा ॥३॥
ओं विश्वेभ्यो देवेभ्यः स्वाहा ॥४॥
ओं धन्वन्तरये स्वाहा ॥५॥
ओं कुह्वै स्वाहा ॥६॥
ओं अनुमत्यै स्वाहा ॥७॥
ओं प्रजापतये स्वाहा ॥८॥
ओं द्यावापृथिवीभ्या ँ स्वाहा ॥९॥
ओं स्विष्टकृते स्वाहा ॥१०॥

ब्रह्मस्तोत्र

त्वमेव माता च पिता त्वमेव,
त्वमेव बन्धुश्च सखा त्वमेव।
त्वमेव विद्या द्रविणं त्वमेव,
त्वमेव सर्वं मम देव देव ॥१॥

परमदयालु, परमात्मन् ! (त्वमेव माता च पिता त्वमेव) आप ही हमारे माता और पिता हैं, (त्वमेव बन्धुः च सखा त्वमेव) आप ही हमारे सच्चे हितैषी बन्धु और सखा हैं। (त्वमेव विद्या द्रविणम् त्वमेव) आप ही हमारे ज्ञान भण्डार और धन हैं। हे प्रभो ! (त्वमेव सर्वं मम देवः) आप ही हमारे सर्वस्व सच्चे देवता हैं। पूजनीय हैं, उपास्य हैं।

त्वमेकं शरण्यं त्वमेकं वरेण्यं,
त्वमेकं जगत्पालकं स्व प्रकाशम् ।
त्वमेकं जगत् कर्तृ पातृ प्रहर्तृ,
त्वमेकं परं निश्चलं निर्विकल्पम् ॥२॥

(त्वमेकम् शरण्यम्) प्रभो ! आप ही हमारी अन्तिम शरण हो, (त्वमेकम् वरेण्यम्) हमारे लिए सर्वश्रेष्ठ एवं वरण करने योग्य हैं। (त्वमेकम् जगत् पालकम्) आप ही जगत् के पालक हैं, (स्वप्रकाशम्)

संसार के प्रकाशक हैं। (त्वमेकम् जगत्कर्तृ) परमात्मन् ! आप ही अकेले संसार के कर्त्ता, बनाने वाले (पातृ) पालन करने वाले, (प्रहर्तृ) और जगत् के संहार करने वाले हैं, (त्वमेकम् परम् निश्चलम् निर्विकल्पम्) आप ही अत्यन्त धैर्यवान् और विकार रहित हैं।

भयानां भयं भीषणं भीषणानां,
गतिः प्राणिनां पावनं पावनानाम्।
महोच्चैः पदानां नियन्तृत्वमेकं,
परेषां परं रक्षणं रक्षणानाम् ॥३॥

सर्वशक्ति सम्पन्न परमात्मन् ! (भयानाम् भयम्) भयभीत करने वालों को भी आप भयभीत कंपाने वाले हैं, (भीषणानाम् भीषणम्) भयंकर से भयंकरों के भी भयानक स्वरूप वाले हैं, (प्राणिनां गतिः) और हमें पापादि से बचाकर पवित्र करने वाले हैं। (पदानाम् महोच्चैः नियन्तृत्वमेकम्) प्रभो ! आप ही बड़े-बड़े राजाओं के भी राजा हैं, महान् हैं, शासक हैं। (परेषाम् परम्) आप परे से परे हैं, (रक्षणानाम् रक्षणम्) और रक्षकों के भी रक्षक हैं।

वयं त्वां स्मरामो वयं त्वां भजामो,
वयं त्वां जगत्साक्षि रूपं नमामः।
सदेकं निधानं निरालम्बमीशम्,
भवाम्भोधिपोतं शरण्यं व्रजामः ॥४॥

प्रभो ! (वयम् त्वाम् स्मरामः) हम आपको स्मरण करते हैं, (वयम् त्वाम् भजामः) हम आपको ही भजते हैं अर्थात् आपकी ही स्तुति, प्रार्थना, उपासना करते हैं, (वयम् त्वाम् जगत् साक्षिरूपं नमामः) हम आपको ही जगत् का एक साक्षी मानकर नमन करते हैं। (सदेकम् निधानम् निरालम्बमीशम्) आप एक ही सत्य स्वरूप हैं सबके आधार हैं और स्वयं संसार रूपी सागर में रक्षा करने वाले पोत के समान आप ही हैं। प्रभो ! आपको ही हम लोग प्राप्त हों।

वेद-वेदांग

अग्नेर्ऋग्वेदो वायोर्यजुर्वेदः सूर्यात् सामवेदः ।

शतपथ

अग्नेर्ऋचो वायोर्यजूंषि सामान्यादित्यात् ।

छान्दोग्योपनिषद्

अथर्वाङ्गिरसः ।

अथर्ववेद

वेद चार

(१) ऋग्वेद	अग्नि ऋषि
(२) यजुर्वेद	वायु ऋषि
(३) सामवेद	आदित्य ऋषि
(४) अथर्ववेद	अंगिरा ऋषि

चारों वेदों की कुल ११२७ शाखायें हैं।

उपलब्ध शाखायें

ऋग्वेद की

(१) शाकल शाखा (२) वष्काल शाखा

यजुर्वेद की

(१) माध्यन्दिन शाखा (२) काण्व शाखा
(३) तैत्तिरीय शाखा (४) काठव शाखा
(५) कापिष्ठल शाखा (६) मैत्रायणी शाखा

सामवेद की

(१) राणायनीया शाखा (२) जेमिनीय शाखा
(३) कौथुमी शाखा

अथर्ववेद की

(१) शौनक शाखा (२) पैप्पलाद शाखा

पदपाठ

वेदों के पदपाठ भी एक प्रकार के वेदों के भाष्य हो हैं।

(१) ऋग्वेद का पदपाठ	शाकल्य ऋषि रचित
(२) ऋग्वेद का पदपाठ	रावण रचित
(३) तैत्तिरीय शाखा का पदपाठ	आत्रेय रचित
(४) सामवेद का पदपाठ	गार्ग्य रचित
(५) यजुर्वेद का पदपाठ	
(६) काण्वशाखा का पदपाठ	
(७) अथर्ववेद का पदपाठ	

ब्राह्मण

ब्राह्मण ग्रन्थ भी वेदों के भाष्य हैं।

ऋग्वेद के ब्राह्मण

(१) ऐतरेय ब्राह्मण (२) कौशीतकि व शांखायन ब्राह्मण।

यजुर्वेद के ब्राह्मण

(१) माध्यन्दिन शतपथ ब्राह्मण (२) कण्व शतपथ ब्राह्मण
(३) तैत्तिरीय ब्राह्मण (यजुर्वेद की तैत्तिरीय शाखा का)

यजुर्वेद की तैत्तिरीय शाखा को ही कृष्ण यजुर्वेद भी कहते हैं। इसके इतिहास को यहाँ अंकित करते हैं।

वैशम्पायनशिष्या वै चरकाध्वर्यवोऽभवन् ।
यच्चेरुर्ब्रह्महत्यांहःक्षपणं स्वगुरोर्व्रतम् ॥
याज्ञवल्क्यश्च तच्छिष्य आहाहो भगवन् कियत् ।
चरितेनाल्पसाराणां चरिष्येऽहं सुदुश्चरम् ॥
इत्युक्तो गुरुरप्याह कुपितो याह्यलं त्वया ।
विप्रावमन्त्रा शिष्येण मदधीतं त्यजाश्विति ॥
देवराजसुतः सोऽपि छर्दित्वा यजुषां गणम् ।
ततो गतो ऽथ मुनयो ददृशुस्तान्यजुर्गणान् ॥
यजूंषि तित्तिरा भूत्वा तल्लोलुपतयाददुः ।
तैत्तिरीया इति यजुःशाखा आसन् सुपेशलाः ॥

श्रीमद्भागवत १२।६

याज्ञवल्क्य श्री वैशम्पायन ऋषि के शिष्य थे। एक बार गुरु जी ने गुरु की ब्रह्महत्या को दूर करने वाले व्रत को चरकादि शिष्यों से करने को कहा तब याज्ञवल्क्य ने कहा कि ये निर्बल इस व्रत को क्या रक्खेंगे। मैं अकेला ही कर लूँगा। इस पर गुरु रुष्ट हो गये और उन्होंने याज्ञवल्क्य से कहा कि तुम हमारे पढ़ाये वेद को त्याग दो। बस याज्ञवल्क्य ने सब मन्त्र उगल दिये। गुरु जी ने अन्य शिष्यों से कहा कि तीतर बनकर चुग लो। उन्होंने ऐसा ही किया इसलिये यह कृष्ण यजुर्वेद तैत्तिरीय शाखा कहलाया।

सामवेद के ब्राह्मण

(१) ताण्डय महाब्राह्मण या पञ्चविंश ब्राह्मण
(२) षड्विंश ब्राह्मण (३) मन्त्र ब्राह्मण
(४) दैवत ब्राह्मण (देवताध्याय ब्राह्मण)
(५) आर्षेय ब्राह्मण (६) सामविधान ब्राह्मण
(७) जेमिनीय ब्राह्मण (८) संहितोपनिषद् ब्राह्मण
(९) वंश ब्राह्मण (१०) जेमिनीयार्षेय ब्राह्मण।

अथर्ववेद का ब्राह्मण

(१) गोपथ ब्राह्मण

आरण्यक

आरण्यक ग्रन्थों में भी वेद व्याख्यान हैं।

ऋग्वेद के आरण्यक

(१) ऐतरेयारण्यक (२) शांखायनारण्यक

यजुर्वेद के आरण्यक

(१) बृहदारण्यक (२) बृहदारण्यक (काण्व)
(३) तैत्तिरीयारण्यक (४) मैत्रायणीय आरण्यक

सामवेद का आरण्यक

(१) तलवकार आरण्यक

उपवेद

उपवेदों में भी वेद व्याख्यान ही हैं।

(१) आयुर्वेद (वैद्यक शास्त्र) (२) धनुर्वेद (शस्त्रास्त्र विद्या राजधर्म)
(३) गान्धर्ववेद (गान शास्त्र) (४) अर्थवेद (शिल्पशास्त्र)

निरुक्त

निरुक्त भी वेदों के भाष्य ही हैं।

(१) यास्ककृत निरुक्त (२) वररुचि कृत निरुक्त समुच्चम
(३) निरुक्त वार्तिक।

निघण्टु

निघण्टु भी वेदों के भाष्य ही हैं।

(१) यास्ककृत निघण्टु (२) कौत्सव्य निघण्टु

श्रौतसूत्र

श्रौतसूत्रों में यज्ञों का वर्णन है।

(१) आपस्तम्ब श्रौतसूत्र (२) आश्वलायन श्रौतसूत्र
(३) काठक श्रौतसूत्र (४) कात्यायन श्रौतसूत्र
(५) काठक श्रौतसूत्र संकलन (६) जैमिनीय श्रौतसूत्र

(७) जैमिनीय श्रौतसूत्रकारिका
(८) जैमिनीय श्रौतसूत्रपरिशिष्ट
(९) द्राह्यायण श्रौतसूत्र
(१०) बोधायन श्रौतसूत्र
(११) भारद्वाज श्रौतसूत्र
(१२) मानव श्रौतसूत्र
(१३) लाट्यायन श्रौतसूत्र
(१४) वाधूल श्रौतसूत्र
(१५) वैतान श्रौतसूत्र
(१६) वैखानस श्रौतसूत्र
(१७) शांखायन श्रौतसूत्र
(१८) हिरण्यकेशि श्रौतसूत्र

गृह्यसूत्र

गृह्यसूत्र यज्ञों के विधायक हैं ।

(१) आश्वलयन गृह्यसूत्र
(२) अग्निवेश्य गृह्यसूत्र
(३) आपस्तम्ब गृह्यसूत्र
(४) काठक गृह्यसूत्र
(५) काठक गृह्योद्धरण
(६) कौशीतकि गृह्यसूत्र
(७) गोभिल गृह्यसूत्र
(८) जैमिनीय गृह्यसूत्र
(९) द्राह्यायण गृह्यसूत्र
(१०) पारस्कर गृह्यसूत्र
(११) वैजवाय गृह्यसूत्र
(१२) बोधायन गृह्यसूत्र
(१३) भारद्वाज गृह्यसूत्र
(१४) मानव गृह्यसूत्र
(१५) वाराह गृह्यसूत्र
(१६) वैखानस गृह्यसूत्र
(१७) शांखायन गृह्यसूत्र
(१८) हिरण्यकेशी गृह्यसूत्र

शुल्वसूत्र

यज्ञवेदि आदि के परिमाण के लिए ऋषियों ने शुल्वसूत्रों का निर्माण किया ।

(१) आपस्तम्बशुल्व सूत्र
(२) कात्यायन शुल्वसूत्र
(३) बोधायन शुल्वसूत्र
(४) हिरण्यकेशि शुल्वसूत्र

धर्मसूत्र

(१) काश्यप धर्मसूत्र
(२) आपस्तम्ब धर्मसूत्र
(३) गौतम धर्मसूत्र
(४) बोधायन धर्मसूत्र
(५) वाशिष्ट धर्मसूत्र
(६) विष्णु धर्मसूत्र
(७) वैखानस धर्मसूत्र (शंख लिखित धर्मसूत्र)
(८) सुमन्तु धर्मसूत्र
(९) सुमन्तु धर्मसूत्र परिशिष्ट
(१०) हिरण्यकेशि धर्मसूत्र

स्मृतियाँ

व्यवस्था ग्रन्थ

१–मनुस्मृति (भृगुप्रोक्त) २–मनुस्मृति (नारद प्रोक्त) ३–याज्ञवल्क्य स्मृति
४–अंगिरा स्मृति ५–अत्रि स्मृति ६–आपस्तम्ब स्मृति
७–अत्रि संहिता ८–औशनस स्मृति ९–गोभिल स्मृति
१०–दक्ष स्मृति ११–देवल स्मृति १२–प्रजापति स्मृति
१३–बृहद्‌यम स्मृति १४–बृहस्पति स्मृति १५–यम स्मृति
१६–लघुविष्णु स्मृति १७–लघुशंख स्मृति १८–लघु शतपथ स्मृति
१९–लघुहारीत स्मृति २०–लघ्वाश्वलायन स्मृति २१–लिखित स्मृति
२२–वशिष्ठ स्मृति २३–वृद्धशातातप स्मृति २४–बृहद्‌हारीत स्मृति
२५–वेदव्यास स्मृति २६–शंखलिखित स्मृति २७–शंख स्मृति
२८–शातातम स्मृति २९–संवर्त स्मृति ३०–बोधायन स्मृति

शिक्षा ग्रन्थ

१–शिक्षा सूत्र पाणिनिकृत २–शिक्षा सूत्र आपिशलिकृत ३–कौहलि शिक्षा
४–नारदीय शिक्षा ५–पाणिनीय शिक्षा ६–भारद्वाज शिक्षा
७–माण्डूकि शिक्षा ८–याज्ञवल्क्य शिक्षा ९–शैशिरी शिक्षा
१०–वाशिष्ठी शिक्षा ११–कात्यायनी शिक्षा १२–पाराशरी शिक्षा
१३–माण्डव्य शिक्षा १४–अमोघ नन्दिनी शिक्षा १५–मध्यन्दिन शिक्षा
१६–वर्णरत्न प्रदीप शिक्षा अमरेशकृत १७–केशवी शिक्षा
१८–केशरी पद्यात्म शिक्षा १९–मल्लशर्म शिक्षा २०–स्वरांकश शिक्षा
२१–रामकृष्ण शिक्षा २२–अवसाननिर्णय शिक्षा २३–स्वर भक्ति रक्षण परिशिष्ट शिक्षा, कात्यायन कृत २४–क्रमसन्धान शिक्षा
२५–गलदृक् शिक्षा २६–मनः स्वार शिक्षा २७–प्रतिशाख्य प्रदीप शिक्षा और वेद परिभाषा शिक्षा २८–यजुर्विधान शिक्षा २९–स्वराष्टक शिक्षा ३०–क्रमकारिका शिक्षा ३१–शिक्षा प्रकाश ३२–गौतमी शिक्षा ३३–लोमशी शिक्षा ३४–मण्डूकी शिक्षा।

प्रातिशाख्य

अपने-अपने वेद का व्याकरण।

(१) ऋक्प्रातिशाख्य (२) यजुः प्रातिशाख्य (३) तैत्तिरीय प्रातिशाख्य
(४) सामवेद के पुष्प सूत्र (५) पञ्च विध सूत्र (६) ऋक्तन्त्र
(७) अथर्व प्रातिशाख्य जिसको चतुरध्यायिका भी कहते हैं।

व्याकरण

१-पाणिनि कृत अष्टाध्यायी (शब्दानुशासन) २-नामलिंगानुशासन ३-धातु पाठ ४-गण पाठ ५-कात्यायन कृत वार्तिक ६-पतञ्जलि कृत महा भाष्य, इसके अतिरिक्त ७-फिट् सूत्र ८-उणादि सूत्र भी व्याकरण के ग्रन्थ हैं।

उपांग शास्त्र

१—न्याय दर्शन=के प्रवर्त्तक महर्षि गौतम, इनसे पूर्व का कोई ग्रन्थ ऐसा नहीं जिसमें तर्क, प्रमाण, वाद आदि का नियमवद्ध विवेचन हो।

२—वैशेषिक दर्शन=के प्रणेता महर्षि कणाद। खेतों से अन्न के कण बीनकर अपनी भोजन व्यवस्था करने हारे इस तपस्वी का नाम कणाद पड़ा।

३—सांख्य दर्शन=के रचयिता महर्षि कपिल। प्रकृति और पुरुष की विवेचना करके दोनों के पृथक-पृथक स्वरूपों का दिग्दर्शन कराना।

४—योग दर्शन=के रचनाकार महर्षि पतञ्जलि। योग द्वारा प्रभु मिलन के मार्ग का दिग्दर्शक।

५—मीमांसा दर्शन=के प्रवर्तक महर्षि जेमिनी। धर्म के विषय में केवल वेद ही प्रमाण है, इस विषयक धर्म का ज्ञान और वेदाध्ययन के प्रति जिज्ञासा उत्पन्न करने वाला ग्रन्थ।

६—वेदान्त दर्शन=के प्रवर्तक महर्षि व्यास। इस ग्रन्थ का उद्देश्य ब्रह्म के साक्षात्कार से ही स्थिर-शान्ति और परम-आनन्द-मोक्ष की प्राप्ति होती है।

छन्द ग्रन्थ

(१) पिंगल छन्द सूत्र (२) जयदेव कृत छन्द सूत्र
(३) ऋक्प्राति शाख्यक—कर्त्ता शौनक।
(४) ऋक्सर्वात् क्रमणी—कर्त्ता कात्यायन।
(५) निदान सूत्र—कर्त्ता पतञ्जलि
(६) उपनिदान सूत्र—कर्त्ता गार्ग्य।
(७) शांखायन श्रौत—कर्त्ता शांखायन।
(८) छन्दोऽनुक्रमणी।

छन्दों के भेद

प्रथम सप्तक

(१) गायत्री २४ अक्षर (२) उष्णिक् २८ अक्षर
(३) अनुष्टुप ३२ अक्षर (४) बृहती ३६ अक्षर
(५) पंक्ति ४० अक्षर (६) त्रिष्टुप् ४४ अक्षर
(७) जगती ४८ अक्षर

द्वितीय सप्तक

(१) अतिजगती ५२ अक्षर (२) शक्वरी ५६ अक्षर
(३) अति शक्वरी ६० अक्षर (४) आष्टि ६४ अक्षर
(५) अत्याष्टि ६८ अक्षर (६) धृति ७२ अक्षर
(७) अति धृति ७६ अक्षर।

तृतीय सप्तक

(१) कृति ८० अक्षर (२) प्रकृति ८४ अक्षर
(३) आकृति ८८ अक्षर (४) विकृति ९२ अक्षर
(५) संस्कृति ९६ अक्षर (६) आमकृति १०० अक्षर
(७) उत्कृति १०४ अक्षर इत्यादि अनेक भेद छन्दों के हैं।

स्वर

(१) षड्ज (२) ऋषभ (३) गान्धार (४) मध्यम
(५) पञ्चम (६) धैवत (७) निषाद

लक्षण ग्रन्थ

वेदार्थ में सहायक ग्रन्थ

(१) ऋग्वेदसर्वानुक्रमणिका (२) यजुर्वेदसर्वानुक्रमणिका (३) चारायणीया मन्त्रार्षानुक्रमणिका (४) अथर्ववेदीय बृहत् सर्वानुक्रमणिका (५) अथर्व परिशिष्टम् (६) अथर्ववेदीय पंच पटलिका (७) आपस्तम्व मन्त्रपाठ (८) निदान सूत्र (९) उप निदान सूत्र (१०) उपलेख सूत्र (११) अथर्व शान्ति कल्प (१२) अथर्व प्रायश्चित (१३) कर्म प्रदीप (१४) कौशिक् सूत्र (१५) क्षुद्र सूत्र (१६) गोनामिक (१७) गौतमपितृमेध सूत्र (१८) चरणव्यूह (१९) दन्त्योष्ठ विधि (२०) बृहद देवता (२१) बोधायन पितृमेध सूत्र (२२) भाविक सूत्र (२३) वोधायनश्रौतप्रवर (२४) मैत्रायणीयछन्दोऽनुक्रमणिका (२५) समरांगण सूत्रधार (२६) सामवेदानुक्रमणिका (२७) सुपर्णाध्याय (२८) हिरण्यकेशि पितृमेध सूत्र।

उपनिषद्

उपनिषदों की गणना करने से १९२ उपनिषद् अब तक गणनापट्ट पर आते हैं इनमें से सभी के नाम यहाँ अंकित करना उपयुक्त नहीं लग रहा, क्योंकि इनमें से बहुत से प्रक्षिप्त भी माने जाते हैं। गुरुदेव दयानन्द सरस्वती जी महाराज ने तो केवल ११ उपनिषद् प्रामाणिक माने हैं।

(१) ईशोपनिषद्
(२) केनोपनिषद्
(३) कठोपनिषद्
(४) प्रश्नोपनिषद्
(५) मुण्डकोपनिषद्
(६) माण्डूक्योपनिषद्
(७) ऐतरेयोपनिषद्
(८) तैत्तिरीयोपनिषद्
(९) छान्दोग्योपनिषद्
(१०) बृहदारण्यकोपनिषद्
(११) श्वेताश्वेतरोपनिषद्

चारों वेदों को छोड़ कर, उपलब्ध अधिकांश ग्रन्थों में मध्यकालीन युग में बहुत-सी मिलावट की गई है, जिसे प्रक्षिप्त भाग के नाम से सम्बोधित किया जाता है। इस प्रक्षिप्त अंश को हम कैसे जानें, इसके लिए परम तपस्वी, योगनिष्ठ, योगेश्वर दयानन्द सरस्वती जी महाराज ने हमें स्वमन्तव्यामन्तव्य के २ में स्वयं स्पष्ट निर्देश किया है :—

"चारों 'वेदों' (विद्या धर्मयुक्त ईश्वर प्रणीत संहिता मन्त्र भाग) को निर्भ्रान्त 'स्वतः' प्रमाण मानता हूँ, वे स्वयं प्रमाणरूप हैं कि जिनके प्रमाण होने में किसी अन्य ग्रन्थ की अपेक्षा नहीं, जैसे सूर्य वा प्रदीप अपने स्वरूप के स्वतः प्रकाश और पृथिव्यादि के भी प्रकाशक होते हैं वैसे चारों वेद हैं और चारों वेदों के ब्राह्मण छः अंग, चार उपवेद और ११२७ वेदों की शाखा जो कि वेदों के व्याख्यान रूप ब्रह्मादि महर्षियों के बनाये ग्रन्थ हैं उनको 'परतः' प्रमाण अर्थात् वेदों के अनुकूल होने से प्रमाण और जो इनमें वेद विरुद्ध वचन हैं उनका अप्रमाण करता हूँ।"

उदाहरणार्थ प्रस्तुत है—

द्वौ मासौ मत्स्यमांसेन त्रीन् मासा न्हारिणेन तु।
औरभ्रेणाथचतुरः शाकुनेनाथ पञ्चवै ॥

मनु ३।२६८

छली के मांस से दो महीने, हरिण के मांस से तीन महीने, मेढ़े के मांस से चार महीने और पक्षियों के मांस से पाँच महीने। इस प्रकार श्राद्ध में मांस खिलाने से पितर तृप्त रहते हैं।

मनुस्मृति के इस श्लोक से मांस खाने का प्रतिपादन होता है जो वेदानुकूल नहीं है। इस प्रकार यह श्लोक प्रक्षिप्त है यह प्रमाण की कोटि में नहीं आता।

न भक्षयति यो मांसं विधिं हित्वा पिशाचवत्।
स लोके प्रियतां याति व्याधिभिश्च न पीड्यते ॥

मनु ५।५०

जो विधि, श्रेष्ठ विचार और उत्तम कर्मों का त्याग करके पिशाचों की तरह मांस भक्षण नहीं करता, वह सबका प्रिय और हितकारी होता है, और वह रोगों से पीड़ित नहीं होता।

मनुस्मृति के इस श्लोक में मांस न खाने का संकेत दिया हैं जो वेदानुकूल है। इस प्रकार यह श्लोक वेदानुकूल होने से 'परतः' प्रमाण की कोटि में आता है।

अनन्तपारं किल शब्द शास्त्रं, स्वल्पं तथायुर्बहवश्च विघ्नाः।
सारं ततो ग्राह्यमपास्य फल्गु, हंसैर्यथा क्षीर मिवाम्बु मध्यात् ॥

शब्द शास्त्र अनन्त हैं, हमारी स्वल्प आयु, तिस पर भी सांसारिक अनेकों विघ्न बाधायें। इस प्रकार सामर्थानुसार सार-सार ग्रन्थों को ग्रहण कर शेष को असमर्थता के कारण छोड़ दें, जैसे दूध में से हंस पानी को छोड़ कर त्याग देता है।

वेद-वेदांगों के विशाल भण्डार का ज्ञान प्रत्येक प्राणी को होना अति आवश्यक है। इसी कारण अति श्रम से संग्रहीत कर अंकित किया गया है।

भाष्यकार

ऋग्वेद के भाष्यकार

(१) स्कन्दस्वामी (२) नारायण (३) उद्गीथ वेंकटमाधव
(४) आनन्दतीर्थ (५) आत्मानन्द (६) सायण
(७) मुद्गल (८) हरदत्त (९) महर्षि दयानन्द सरस्वती
(१०) पं० जयदेव (११) धर्मदेव विद्या मार्तण्ड (१२) पं० हरी शरण सिद्धान्तालंकार (१३) ८वाँ,९वाँ मण्डल पं० आर्य मुनि
(१४) १०वाँ मंडल पं० विहारी लाल शास्त्री काव्य व्याकरण तीर्थ।

यजुर्वेद के भाष्यकार

(१) शौनक (२) उव्वट (३) महीधर (४) गौरधर
(५) महर्षि दयानन्द सरस्वती (६) पं० जयदेव (७) धर्मदेव विद्या मार्तण्ड (८) पं० हरी शरण सिद्धान्तालंकार।

काण्व शाखा के भाष्यकार

(१) सायण (२) अनन्ताचार्य (३) कालनाथ
(४) हलायुध (५) सोमानन्द (६) सोमानन्द पुत्र

तैत्तिरीय शाखा के भाष्यकार

(१) भट्टभास्कर (२) सायण (३) वेंकटेश
(४) हरदत्त मिश्र (५) शत्रुघ्न

रुद्राध्याय के भाष्यकार

(१) वेंकटनाथ (२) अहोवल (३) हरदत्त मिश्र
(४) सामराज-त्रेणोराय (५) मयूरेश (६) राजहंस सरस्वती
(७) हररात (८) भवदेव

सामवेद के भाष्यकार

(१) माधव (२) भरत स्वामी (३) सायण (४) महा स्वामी
(५) शोभाकर भट्ट (६) गुण विष्णु (७) महर्षि दयानन्द सरस्वती
(८) स्वामी तुलसीराम (९) आचार्य वैद्यनाथ शास्त्री (१०) पं० जयदेव
(११) पं० हरी शरण सिद्धान्तालंकार।

अथर्ववेद के भाष्यकार

(१) सायण (२) महर्षि दयानन्द सरस्वती (३) क्षेमकरणदास त्रिवेदी
(४) सातवलेकर (५) पं० जयदेव (६) हरी शरण सिद्धन्तालंकार

निरुक्त के भाष्यकार

(१) दुर्गाचार्य (२) स्कन्द महेश्वर (३) वररुचि (४) निरुक्त वार्तिककार।

निघण्टु के भाष्यकार

१—देवराज यज्वा।

ब्राह्मण ग्रन्थों के भाष्यकार

१–'ऐतरेय ब्राह्मण' = षड्गुरु शिष्य
२–'माध्यन्दिन शतपथ' = हरि स्वामी
३–'तैत्तिरीय शाखा' = भट्ट भास्कर
४–'ताण्ड्य महा ब्राह्मण' = जय स्वामी

५–'ताण्ड्य महा ब्राह्मण' = नारायणाचार्य

६–'मन्त्र ब्राह्मण' = गंगाविष्णु

७–'आर्षेय ब्राह्मण' = काश्यप भट्ट भास्कर मिश्र

८–'साम विधान ब्राह्मण' = भरत स्वामी

९–'संहितोपनिषद् ब्राह्मण' और वंश ब्राह्मण' = विष्णु पुत्र

१०–'जेमिनीय ब्राह्मण' = भवत्रात

११–'कौशीतकि ब्राह्मण' = मिताक्षरा

१२–'शतपथान्तर्गत मण्डज्ञ ब्राह्मण = नारायणेन्द्र सरस्वती

१३–'माध्यन्दिन शतपथ ब्राह्मण ताण्ड्य महा ब्राह्मण, षड्विंश ब्राह्मण, मन्त्र ब्राह्मण, दैवत ब्राह्मण, आर्षेम ब्राह्मण, सहितोपनिषद् ब्राह्मण' = सायण

१४–'ब्राह्मण ग्रन्थों के अर्थों के सग्रह पर एक ग्रन्थ की रचना' = महर्षि दयानन्द सरस्वती

१५–'शतपथ ब्राह्मण' = स्वामी समर्पणानन्द सरस्वती (पं० बुद्धदेव विद्यालंकार)।

आरण्यकों के भाष्यकार

(१) 'ऐतरेयारण्यक' = षड्गुरुशिष्य

(२) 'माध्यन्दिन आरण्यक' = द्विवेदगंग

(३) बृहदारण्यक' = शंकराचार्य

(४) 'तैत्तिरीयारण्यक' = भट्ट भास्कर

(५) 'ऐतरेयारण्यक, तैत्तिरीयारण्यक' = सायण

(६) 'मैत्रायणी आरण्यक' = रामतीर्थ

(७) 'तलवकार आरण्यक' = भवत्रात।

जितने भाष्यकारों के नाम ऊपर अंकित किये गये हैं उनमें कुछ मुद्रित हैं और कुछ के हस्तलेख विद्यमान हैं परन्तु उपर्युक्त सब भाष्य मिलते हैं। कुछ भाष्यकारों के भाष्य पूर्ण ग्रन्थ पर हैं और कुछ भाष्यकारों के भाष्य कुछ अंश पर हैं।

चतुर्वेद भाष्यकार

(१) सायणाचाय
(२) महर्षि दयानन्द सरस्वती (देखें चतुर्वेद भाष्य विषय सूची)
(३) पं० जयदेव शर्मा, विद्यालंकार, मीमांसा तीर्थ।
(४) पं० हरी शरण सिद्धान्तालंकार।

वेदों के विषय में पाश्चात्य विद्वानों ने भी लिखा है-

वेदों के जर्मन भाषा में अनुवादक—प्रो० मैक्समूलर, रोज़न, लुडविग ग्रासमैन। ऋग्वेद सायण भाषा के अंग्रेजी अनुवादक—ओल्डेनवर्ग, डा० वीवर, कोलब्रुक, सर विलियम जोन्स, बर्नफ़, रुडाल्फ रौथ; विल्सन। अथर्ववेद के अंग्रेजी अनुवादक-ह्विटनी, ब्लूमफील्ड। चारों वेदों के अंग्रेजी अनुवादक-कीथ, जैकोबी, मैकडौनल् ह्विन्टनीज़, ग्रिफिथ। सामवेद के अंग्रेजो अनुवादक—रेवरेन्ड स्टीवन्सन्। इनमें से केवल एकाध विद्वान् ने ही निस्पक्ष भाव से वेदों का भाष्य किया है शेष सभी विद्वानों ने केवल मात्र सायण और वाममार्गी महीधर के भाष्यों का ही अंग्रेजी में रूपान्तर किया है। प्रो० मैक्समूलर इन सब में सर्वोच्च माने जाते हैं। वेदों के अंग्रेजी रूपान्तर करने में मैक्समूलर का क्या उद्देश्य था उसके विषय में हमने "वेद में क्या है" पुस्तक में सप्रमाण उल्लेख किया है।

संसार की दृष्टि में—वेद

संसार के उच्चकोटि के दार्शनिक, सत्य और न्याय प्रिय ऋषि, विद्वान्, ग्रन्थकार वेद को सब सत्य विद्याओं का पुस्तक स्वीकार करते हैं।

वेदोऽखिलोधर्म मूलम् ।

मनुस्मृति २।६

सम्पूर्ण 'वेद' धर्म का मूल है।

धर्मं जिज्ञासमानानां प्रमाणं परमं श्रुतिः ।।

मनुस्मृति २।१३

धर्म के जिज्ञासुओं को परम प्रमाण वेद ही हैं। श्रुति (वेद) और स्मृति का विरोध हो तो श्रुति को ही प्रमाणिक मानना चाहिये स्मृति को नहीं।

पितृदेवमनुष्याणां वेदश्चक्षुः सनातनम् ।
अशक्यं चाप्रमेयं च वेदशास्त्रमितिस्थितिः ।।

मनुस्मृति १२।९४

वेद पितृ देव मनुष्य सबके लिये सनातन मार्ग-दर्शक नेत्र के समान हैं उसकी महिमा का पूर्णतया प्रतिपादन करना अथवा उसको सम्पूर्णतया समझ लेना बड़ा कठिन है।

चातुर्वर्ण्यं त्रयो लोकाः चत्वारश्चाश्रमाः पृथक् ।
भूतं भव्यं भविष्यच्च सर्वं वेदात्प्रसिद्ध्यति ।।

मनुस्मृति १२।९७

चारों वर्ण, तीन लोक, चार आश्रम, भूत भविष्य और वर्तमान विषयक समस्त ज्ञान वेद से ही जाना जाता है ।

बिभर्ति सर्वभूतानि वेदशास्त्रं सनातनम् ।
तस्मादेतत्परं मन्ये यज्जन्तोरस्य साधनम् ।।

मनुस्मृति १२।९९

सनातन नित्य वेद शास्त्र सब प्राणियों को धारण करता है । यही सब मनुष्यों के लिये भवसागर से पार होने का साधन है ।

न वेद शास्त्रादन्यत्तु, किंचिच्छास्त्रं हिविद्यते ।
निस्सृन्त सर्वशास्त्रं तु, वेदशास्त्रात्सनातनात् ।।

याज्ञवल्क्य स्मृति

वेद शास्त्र से बढ़कर कोई शास्त्र नहीं । सब अन्य शास्त्र सनातन वा नित्य वेद शास्त्र से निकले हैं ।

नास्ति वेदात्परं शास्त्रं, नास्ति मातुः समो गुरुः

अत्रि स्मृति

वेद से बड़ा कोई शास्त्र नहीं । माता के समान कोई गुरु नहीं ।

अग्निर्मूर्धा चक्षुषो चन्द्रसूर्यौ, दिशः श्रोत्रे वाग्विवृताश्च वेदाः ।

मुण्डकोपनिषद् २।१।४

उस परमात्मदेव का मस्तक मानो अग्नि है, सूर्य और चन्द्र उसके नेत्रों के समान हैं, दिशायें उसके कानों के तुल्य हैं । वेद मानो उसकी वाणी से निकले अर्थात् ईश्वरीय ज्ञान हैं ।

तस्मादृचः साम यजूंषि दीक्षाः ।

मुण्डकोपनिषद् २।१।६

उस परमात्मदेव से ऋग्वेद, सामवेद, यजुर्वेद प्राप्त हुए हैं ।

यदेभिरात्मानमाच्छादयन् देवा मृत्योर्बिभ्यतः
तच्छन्दसां छन्दस्त्वम् ।।

शतपथ ब्राह्मण

देवों ने मृत्यु से भयभीत होकर इन वेदों से अपने को आच्छादित कर लिया इसलिये वेदों को छन्द कहते हैं। तात्पर्य यह है कि वेद ज्ञान ही मृत्यु भय से सर्वथा मुक्त करने वाला है।

मन्त्रायुर्वेद प्रामाण्यवच्च तत्प्रामाण्यमाप्तप्रामाण्यात् ।

न्यायदर्शन २।१।६९

मन्त्र और आयुर्वेद के प्रामाण्य की भाँति वेद का भी प्रामाण्य है, क्योंकि वह परमपुरुष, पूर्ण आप्त परमात्मा द्वारा उपदिष्ट हैं।

तद्वचनादाम्नायस्य प्रामाण्यम् ।।

वैशेषिकदर्शन १।१।३

धर्म प्रवचन शास्त्र होने से वेद का प्रामाण्य है। नित्य निर्दोष ईश्वर का वचन होने से वेद की प्रामाणिकता है।

स पूर्वेषामपि गुरुः कालेनानवच्छेदात् ।

योगदर्शन १।२६

वह परमेश्वर काल द्वारा नष्ट न होने के कारण पूर्व ऋषि-महर्षियों का भी गुरु है।

चोदनालक्षणोऽर्थो धर्मः ।।

मीमांसादर्शन १।२

वेद-प्रतिपादित अर्थ को धर्म कहते हैं।

शास्त्रयोनित्वात् ।।

वेदान्तदर्शन १।१।३

ऋग्वेदादि शास्त्र का कारण होने से परमात्मा के अस्तित्व का ज्ञान होता है।

अत एव च नित्यत्वम् ।।

वेदान्तदर्शन १।३।२९

ब्रह्म से प्रादुर्भूत होने और अपौरुषेय होने के कारण वेद नित्य हैं।

ऋग्वेदादेः शास्त्रस्यानेकविद्यास्थानोपबृंहितस्य
प्रदीपवत् सर्वार्थावद्योतिनः सर्वज्ञकल्पस्य योनिः कारणं ब्रह्म।
नहीदृशस्यर्ग्वेदादिलक्षणस्य
सर्वज्ञगुणान्वितस्य सर्वज्ञादन्यतः संभवोऽस्ति ।।

शंकराचार्य

ऋग्वेदादि जो चार वेद हैं वे अनेक विद्याओं से युक्त हैं,सूर्य के समान सब सत्य अर्थों के प्रकाश करने वाले हैं, उनका बनाने वाला सर्वज्ञत्वादि गुणों से युक्त पारब्रह्म है क्योंकि सर्वज्ञ ब्रह्म से भिन्न कोई जीव, सर्वज्ञ गुण युक्त इन वेदों को बना सके ऐसा सम्भव नहीं।

अनादिनिधना नित्या वागुत्सृष्टा स्वयम्भुवा।
आदौ वेदमयी दिव्या यतः सर्वाःप्रवृत्तयः ।।

म० भा० शान्ति पर्व २३२।२४

सृष्टि के आरम्भ में स्वयम्भू परमेश्वर ने वेदरूप नित्य दिव्य वाणी का प्रकाश किया, जिससे मनुष्यों की सारी प्रवृत्तियाँ होती हैं।

नानारूपं च भूतानां कर्मणां च प्रवर्तनम्।
वेदशब्देभ्य एवादौ निर्मिमीते स ईश्वरः ।।
नामधेयानिचर्षीणां याश्चवेदेषु दृष्टयः।
शर्वयन्ते सुजातानां तान्येवैभ्यो ददात्यजः ।।

म० भा० शान्तिपर्व मोक्षधर्म पर्व २३२।२६–२७

ईश्वर ने वस्तुओं के नाम और कर्म वेद के शब्दों से निर्माण किये। ऋषियों के नाम और ज्ञान भी प्रलय के अन्त अर्थात् सृष्टि के प्रारम्भ में वेदों के द्वारा ही दिये गये।

कर्मब्रह्मोद्भवं विद्धि ब्रह्माक्षरसमुद्भवम्।
तस्मात्सर्वगतं ब्रह्म नित्यं यज्ञे प्रतिष्ठितम् ।।

गीता ३।१५

कर्म को तू वेद से उत्पन्न हुआ जान और वेद अविनाशी परमात्मा

से उत्पन्न हुआ है, इससे सर्वव्यापी परमात्मा सदा ही यज्ञ में प्रतिष्ठित है।

जैन आचार्य कुमुदेन्द्र-

महदग्रेयणि विजय ऋग्वेद वलय है
द्दह गुणिसलनाद्यनन्त।

भूवलय ४३

ऋग्वेद ही अनादिनिधना आदिम भगवद्वाणी है इसमें से अनेक भाषायें निकलती हैं। भगवान का सन्देश सभी भाषा-भाषियों के लिए एक-सा होता है।

महात्मा गौतम बुद्ध-

यदन्तगू वेदगू यञ्ञकाले, यस्साहुति लभे तस्स इज्जेतिब्रू मि।

सुत्तनिपात ४५८

वेद को जानने वाला जिसकी आहुति को प्राप्त करे, उसका यज्ञ सफल होता है ऐसा मैं कहता हूँ।

न वेदगू दिट्ठिया न मुतिया स मानमेति नहि तन्मयोसो।
न कम्मुना नापि सुतेन नेय्यो अनुपनीतो सो निवेशनेसु॥

सुत्तनिपात ८४६

वेद को जानने वाला सांसारिक दृष्टि और असत्यविचारादि से कभी अंहकार को प्राप्त नहीं होता। केवल कर्म और श्रवणादि से भी वह प्रेरित नहीं होता। वह किसी प्रकार के भ्रम में नहीं पड़ता।

विद्वा च सो वेदगू नरोइध, भवाभवे संगं इमं विसज्जा।
सो वीततण्हो अनिघो निरासो, अतारि सो जाति
जरांतिब्रू मीति॥

सुत्तनिपात १०६०

वेद को जानने वाला विद्वान् इस संसार में जन्म या मृत्यु में आशक्ति का परित्याग करके और तृष्णा तथा पापरहित होकर जन्म और वृद्धावस्था से रहित हो जाता है ऐसा मैं कहता हूँ।

गुरु ग्रन्थ साहेब–

ओंकार वेद निरमए।

राग रामकली महला १ ओंकार शब्द १

ईश्वर ने वेद बनाये।

हरि आज्ञा होए वेद पाप पुन्नविचारिआ।

मारु उखणे महला ५ शब्द १

ईश्वर की आज्ञा से वेद हुए जिससे मनुष्य पाप पुण्य का विचार कर सकें।

सामवेद ऋग जजुर अथर्वण। ब्रह्मे मुख माइया है त्रैगुण।
ताकी कीमत कीत कह न सकै को तिउ बोले जिउ बोलाइदा ।।

मारुसोलहे महला १ शब्द १७

सामवेद, ऋग्वेद, यजुर्वेद, अथर्ववेद यह परमात्मा के मुख से निकले, इनकी कीमत कोई नहीं बता सकता। वे अमूल्य और अनन्त हैं।

ओंकार उत्पाती। किया दिवस सभराती।
वणतृणत्रिभवन पाणी। चार वेद चारे खाणी ।।

राग मारु महला ५ शब्द १७

ओंकार परमेश्वर ने ही दिन-रात, वन, घास, तीनों लोक, पानी आदि को बनाया और उसी ने चार वेदों को बनाया जो चार खानों के समान ज्ञान के कोष हैं।

वेद बखान कहहि इक कहिये।
ओह बे अन्त अन्त किन लहिये ?

वसन्त अष्टपदियां महला १ अ० ३

वेद के ज्ञान से अज्ञान मिट जाता है और उनके पाठ से बुद्धि शुद्ध होकर पापों का नाश हो जाता है।

असंख ग्रन्थ मुखि वेद पाठ ।।

जपुजी १७

असंख्य ग्रन्थों के होते हुए भी वेद का पाठ सबसे मुख्य है।

स्मृति सासत्र वेद पुराण । पारब्रह्म का करहिं बखियाण ।

गौंड महला ५ शब्द १७

वेद शास्त्रों में मुख्यतया पारब्रह्म का ही प्रतिपादन है।

वेद बखियान करत साधुजन, भागहीन समझत नहीं ।

टोडी महला ५ शब्द २६

साधु सज्जन सदा वेद का व्याख्यान करते हैं किन्तु भाग्यहीन नीच मनुष्य कुछ समझता नहीं।

कहंत वेदा गुणन्त गुणिया सुणत बाला वह विधि प्रकारा ।
दडंत सुविद्या हरि हरि कृपाला ।।

सहस्कृति महला ५।१४

वेदों के पढ़ने से उत्तम विद्या भगवान् की कृपा से बढ़ती है।

वेद पुराण सासत्र विचारं एकं कार नाम उरधारं ।
कलह समूह सगल उधारं बड़भागी नानक को तारं ।।

गाथा महला ५।२०

वेद शास्त्र के विचार करने से परमेश्वर का स्मरण होता है और सारा कुल तर जाता है।

कल में एक नाम कृपानिधि जाहि जपे गति पावै ।
और धरम ताके सम नाहन इह विधि वेद बतावै ।।

राग सोरठ महला ९ शब्द ५

वेदों में एक परमेश्वर के स्मरण करने का उपदेश है।

वेद कतेब कहहु मत झूठे झूठा जो न विचारे ।

राग प्रभाती कबीर जी शब्द ३

वेद शास्त्र को झूठा मत कहो । झूठा वह है जो विचार नहीं करता।

अरबी विद्वान लाबी :-

अरब देश वासी 'तुर्फा' के पौत्र और 'अख़ताब' के पुत्र अरबी भाषा के प्रसिद्ध कवि 'लाबी' जो मौहम्मद साहब के जन्म से लगभग

२४०० वर्ष पूर्व विद्यमान थे, उन्होंने अपनी एक काव्य रचना में वेदों का गुणगान किया, इससे स्पष्ट है कि ईसा से लगभग १७०० वर्ष पूर्व सेमेटिक लोगों की वेदों के प्रति कितनी श्रद्धा थी। यह रचना हारून रशीद के राजदरबार कवि अस्माई मलेकुस् शरा द्वारा संगृहीत सीरुल् उकूल नामक पुस्तक के पृष्ठ ११८ पर पायी जाती है।

अया मुबारकल अर्ज़े योशेय्ये नुहामिनल् हिन्दे
फ़ारादकल्लाहो मैय्योनज्ज़ेला जिक्रतुन् ॥१॥

ऐ हिन्दुस्तान की धन्य भूमे ! तू आदर करने योग्य है क्योंकि तुझ में ही ईश्वर ने अपने सत्य ज्ञान का प्रकाश किया है।

वहल तजल्लेयतुन् ऐनाने सहबी अरबातुन् हाज़ही
युनज्ज़ेल रसूलो जिक्रतान मिनल् हिन्दतुन् ॥२॥

ईश्वरीय ज्ञानरूप ये चारों पुस्तकें (वेद) हमारे मानसिक नेत्रों को किस आकर्षक और शीतल उषा की ज्योति देते हैं। परमेश्वर ने हिन्दुस्तान में अपने पैगम्बरों अर्थात् ऋषियों के हृदयों में इन चारों (वेदों) का प्रकाश किया।

यकूलुनल्लाह या अहलल् अर्जे आलमोन कुल्लहुम्
फ़त्तबिऊ जिक़्रतुल् वेद हक्कन् मालम् युनज्जेलहुन् ॥३॥

और वह पृथिवी पर रहने वाली सब जातियों को उपदेश देता है कि मैंने वेदों में जिस ज्ञान को प्रकाशित किया है उसको तुम अपने जीवनों में क्रियान्वित करो—उसके अनुसार आचरण करो। निश्चय से परमेश्वर ने ही वेदों का ज्ञान दिया है।

वहोवालम् उस् साम वल युजुर मिनल्लहे तन्ज़ीलन्
फ़ ऐनमा या अख़ेयो मुत्तबे अन् यो बशरेयो नजातुन् ॥४॥

साम और यजुर् वे खजाने हैं जिन्हें परमेश्वर ने दिया है। ऐ मेरे भाइयों ! इनका तुम आदर करो क्योंकि वे हमें मुक्ति का शुभ समाचार देते हैं।

व अस्नैने हुमा ऋक् व अतर नासहीन क अखूवतुन्
व अस्नात अला ऊदन् वहोव मशअरतुन् ॥५॥

इन चार में से शेष दो ऋक् अतर (अथर्व) हमें विश्वभ्रातृत्व का पाठ पढ़ाते हैं। ये दो ज्योतिः स्तम्भ हैं जो हमें उस विश्वभ्रातृत्व के लक्ष्य की ओर अपना मुँह मोड़ने की चेतावनी देते हैं।

मुस्लिम दार्शनिक, विचारक दाराशिकोह 'सिर्रे अकबरी' में कहते हैं—

बाद अज़ तहक़ीक इन मरातिब मालूमशुद कि
दरमियान ईं कौमे क़दीम पेश अज़ कुतब समावी
चाहर कुतब आस्मावी कि ऋग्वेद, यजुर्वेद व सामवेद
व अथर्वणवेद बाशद बर इब्नाये आ वक्त के बुर्ज़ुग़ेतर
आहा आदम सफ़ो अल्लाह व अलीस्सलल्लाम
अस्त बरजमो अहक़ाम नाज़िल शुदा।

अनुसन्धान करने के पश्चात् यह ज्ञात हुआ कि इस प्राचीन (हिन्दू) जाति में समस्त 'ईश्वरीय पुस्तकों' अर्थात् कुरान, इञ्जील, तौरेत तथा ज़बूर आदि के पूर्व चार ईश्वरीय पुस्तकें जिनके नाम—(१) ऋग्वेद, (२) यजुर्वेद (३) सामवेद तथा (४) अथर्ववेद हैं। उस समय के ऋषियों पर जिनमें सबसे बड़े आदम 'ब्रह्मा जी' थे समस्त आज्ञाओं के साथ ईश्वर की ओर से प्रकट हुई थीं।

किताब कदीम कि बेशको शुबह अव्वलोम किताब
समावी व सरे चश्माये तहक़ीक व बहरे तोहीदस्त।

यह पुस्तक अनादि है और इसमें किसी प्रकार का सन्देह नहीं कि समस्त पुस्तकों में यह प्राचीनतम है और परम सत्य का स्रोत तथा ब्रह्मज्ञान का समुद्र है।

कुरान में वेद का निर्देश दाराशिकोह :—

इन्न कुराने करीम-फी किताब मंकनूं-लामे मस्सहू
इल्ला अल् मतहन तंज़ीलमिन् ज़ब्बुल अ.लमीन ॥

कुरानशरीफ़ एक पुस्तक है और वह गुप्त है। उसका ज्ञान उसी

को होता है जिसका हृदय पवित्र हो। वह पुस्तक संसार के पालनकर्त्ता ईश्वर की ओर से प्रकट हुई है।

किताब ब तहक़ीक कि मकनून ईं किताबे कदीम बर शद
व अज़ी फ़क़ीर रा नादानिस्तां व नाफ़हमीदा फ़हमीदा शुद।

चूँकि उपनिषद् गुप्त रहस्य है इसलिए इस किताब 'कुरानशरीफ़' का मूल स्रोत है और कुरानशरीफ़ की कई आयतें ज्यों की त्यों उनमें पाई जाती हैं अत: निश्चित है कि-किताब अर्थात् गुप्त पुस्तक यही प्राचीन पुस्तक वेद वा उपनिषत् हैं और इसी से इस सेवक को 'मुझ दाराशिकोह को' अज्ञात बातें ज्ञात हुयीं और जो बातें समझ में नहीं आती थीं वे समझ में आ गयीं।

पाश्चात्य विद्वानों द्वारा वेद गौरव गान :—

पुराने समय के जो लेख हमें इस समय मिलते हैं उनमें भी हमें इस बात के पर्याप्त निर्देश प्राप्त होते हैं कि उस समय के सदाचारादि विषयक विचार और व्यवहार हमारे से किसी रूप में भी कमकोटि के नहीं थे यद्यपि कई अंशों में वे हमसे भिन्न अवश्य थे। वेद के नाम से प्रसिद्ध आश्चर्यजनक संहिता के अन्दर बाइवल के अच्छे से अच्छे भाग के तुल्य पवित्र और ऊँची धार्मिक शिक्षाओं की एक पद्धति पाई जाती है। इसके लेखक, संसार और सुन्दरतम कविता में प्रकाशित ईश्वर विषयक विचार में पूर्णतया हमारे समान थे। इनमें हम अत्यधिक उन्नत वा प्रगतिशील धार्मिक विचारकों की मुख्य शिक्षाओं को पाते हैं।...हमें यह स्वीकार करना ही पड़ेगा कि जिस मन में उन ऊँचे विचारों को ग्रहण किया और तदनुरूप उत्तम भाषा में प्रकट किया जो वेदों में सर्वत्र पाये जाते हैं, हमारे उच्चतम धार्मिक शिक्षिकों और मिल्टन शैक्सपियर तथा टैनीसन् जैसे कवियों से किसी अवस्था में भी कम न थे।

डा० अल्फ्रेड रसेल वैलेस, डार्विन के साथ ही प्राकृतिक जगत् में विकासवाद के आविष्कारक (पुस्तक सोशल एन्वॉयरमैन्ट एण्ड मौरल प्रोग्रेस) पृष्ठ ११,१३

पुराने वसीयतनामे के इतिहास और पुस्तकों के निर्माणकालादि विषयक अनुसन्धान के परिणाम स्वरूप अब हम ऋग्वेद को न केवल आर्यजगत की किन्तु सारे संसार की सबसे पुरानी पुस्तक निःसंकोच कह सकते हैं।

१–यह स्पष्ट है कि ज्यों-ज्यों हम वैदिक धर्म के स्रोत को और खोज, ऊपर-ऊपर करते चले जाते हैं, हम ईश्वर विषयक विचार को अधिक पवित्र और सरल पाते हैं।

२–जिस अनुपात से हम समयधारा में नीचे-नीचे आते चले जाते हैं, हम ईश्वर विषयक विचार को अधिक विकृत और विषम पाते हैं। इसलिए हम यह परिणाम निकालते हैं कि वैदिक आर्यों ने ईश्वर के गुणों और कार्यों का अनुभव वा निरीक्षण के आधार पर प्राप्त नहीं किया क्योंकि उस अवस्था में जो हम शुद्ध रूप, प्रारम्भ में पाते हैं उसे हमें अन्त में पाना चाहिये था। इसलिये हमें एक ऐसे वाद की खोज करनी चाहिये जो उस ज्ञान की प्राप्ति, वरुण के समान ईश्वर विषयक कल्पना और क्रमिक ह्रास की समान रूप से व्याख्या कर सके।

वैदिक आर्यों के उच्चतर और पवित्रतर ईश्वरादि विषयक विचार एक प्रारम्भिक ईश्वरीय ज्ञान का परिणाम थे।

पादरी मौरिस फिलिप

पुस्तक–दा टीचिंग ऑफ वेदाज़

इसमें सन्देह नहीं कि वेद संस्कृत के प्राचीनतम ग्रन्थ हैं। उपलभ्यमान सबसे अधिक प्राचीन संस्कृत ग्रन्थों में भी उनकी विद्यमानता का स्पष्ट निर्देश पाया जाता है। वे मनुष्यमात्र की उन्नति के लिए अपनी अद्भुत ज्ञान में दिव्य प्रकाश स्तम्भ का काम देते हैं।

पादरी प्रो० हीरेन्

पुस्तक–हिस्टोरिकल रिसर्च

भाग २–पृष्ठ १२७

१४ जुलाई १८८४ ई० को पेरिस में आयोजित अन्तर्राष्ट्रीय साहित्यिक संघ की बैठक के सन्मुख निबन्ध पढ़ते हुए घोषणा! ऋग्वेद मनुष्यमात्र की उच्च प्रगति और आदर्श की उच्चतम कल्पना है।

फ्रांसदेशीय सुप्रसिद्ध विद्वान् लेओं देल्बौं

लेखक–हर विलास शारदा

पुस्तक–दा हिन्दू सुपीरियरिटी पृष्ठ–१७९–१८०

केवल सूक्ष्मदर्शी की अन्तर्दृष्टि है जो वेदों में भरे सूक्ष्म ज्ञान को प्रकट कर सकती है। आश्चर्य यह है कि हमारे प्रागैतिहासिक काल के पूर्वजों ने जिनके विषय में यह कल्पना की जाती है कि वे घोर अज्ञान की भयंकर अवस्था में थे, कहाँ से वह असाधारण अन्तर्ज्ञान प्राप्त कर लिया जिसको हम फिर से प्राप्त करने का प्रयत्न कर रहे हैं? इससे बढ़कर सामाजिक विकासवाद की असत्यता का और क्या प्रमाण हो सकता है?

नोबल पुरुस्कार विजेता मीटर्लिक
पुस्तक–दा ग्रेट सीक्रेट पृष्ठ ४४

मैंने वेदों के जो उद्धरण पढ़े हैं वे मुझ पर एक उच्च और पवित्र ज्योतिपुञ्ज के प्रकाश की तरह पड़ते हैं जो एक उत्कृष्ट मार्ग का वर्णन करता है।

वेदों के उपदेश सरल, देश वा जाति विशेष के इतिहास से रहित और सार्वभौम हैं तथा उनमें ईश्वर विषयक युक्तियुक्त विचार दिये गये हैं।

अमरीका के सुप्रसिद्ध विचारक थोरियो
लेखक–स्वामी ओंकार, पुस्तक–मदर अमेरिका पृष्ठ ६

प्रेम करना, विचार करना और कार्य करना, ये वैदिक विचारानुसार क्षणिक निराशापूर्ण व्यर्थ क्रियायें नहीं हैं किन्तु वे विश्वव्याप्त क्रिया के जो नित्य परमेश्वर के आनन्द से परिपूर्ण है अनुकरण मात्र हैं। वे एक प्रकार से छात्रायें हैं, प्रकाशों के प्रकाशक परमेश्वर द्वारा प्रेषित छात्रायें हैं अन्धकार द्वारा नहीं और उस प्रकाश में, नित्य परमेश्वर के उस दर्शन में जो भौतिक जगत् द्वारा प्रकाशमान् हो रहा है, मनुष्यमात्र एक ऐसे आदर्श को प्राप्त कर सकता है जो अस्थायिनी प्रवचनपूर्ण पवित्रता का स्थान सम्पूर्ण जीवनमात्र की पवितत्रा की शाश्वत अनुभूति के द्वारा ले सकता है।

पुस्तक–पाथ टू पीस—पृष्ठ ६०

मैंने भारत में यात्रा करते हुए स्वामी दयानन्द सरस्वती के वैदिक आदर्श द्वारा भारतीयों में नवजीवन संचार करने विषयक सत्यनिष्ठता पूर्ण प्रयत्न के प्रभाव को अनुभव किया है। यह वैदिक आदर्श ही मेरे और मेरी धर्मपत्नी के जीवन में वास्तविक रूपेण प्रभावजनक रहा है।

इसलिए भारत और समस्त जगत् के प्रति की गई स्वामी दयानन्द की इस अत्यावश्यक सेवा के लिए मैं अपनी तथा अपनी धर्मपत्नी की ओर से संयुक्त श्रद्धांजलि अर्पित करता हूँ।

डा० जेम्स कज़िन्स, आयरलैंड के सुप्रसिद्ध दार्शनिक कवि
पुस्तक–दयानन्द कॉमेमोरेशन वौलयूम अजमेर-पृष्ठ ५६

वेदों का मेरा अनुवाद अटकलपच्चू वा अनुमान पर आश्रित है।

प्रसिद्ध जर्मन विद्वान प्रो० मैक्समूलर
पुस्तक-दा वैदिक हैमनस

प्रो० मैक्समूलर के अनुवाद में जिस बात से मुझे अत्यन्त आश्चर्य हुआ है वह यह है कि उसमें बहुत-सी बेहूदी अश्लील और अस्पष्ट बातें हैं। जहाँ तक मैं वेदों की शिक्षा को समझ सकता हूँ मुझे वह इतनी अधिक उच्च मालूम होती है कि रूसी जनता के एक गड़बड़ और भद्दे अनुवाद के द्वारा उससे परिचय कराने को मैं बड़ा भारी अपराध मानता हूँ क्योंकि इससे वह उस आत्मिक लाभ से वंचित रह जा गी, जो वैदिक शिक्षा जनता को देती है।

रूसी विद्वान बौलंगार
सैकरेड बुक्स आफ दी ईस्ट सीरीज के
रशियन एडिशन।
संदर्भ-साधु टी० एल० वासवानी
"टौर्च वोअरर–पृष्ठ १४३

यदि भारत की कोई बाइबल संकलित की जाती, यदि संस्कृत भाषा के लिये ऐसे ही श्रद्धालु और योग्य अनुवादकों का वर्ग मिल जाता जिनका ध्यान भाषा सौन्दर्य और मूल के पवित्र मन्त्रों के साथ वैसा ही प्रेम होता जैसा कि इंग्लैण्ड में बाइबल को प्राप्त हो गया तो प्राचीन बुद्धिमत्ता वा ज्ञान तथा कविता के नित्यकोषों में वर्तमान युग सम्पन्न बन जाता।

उन रचनाओं में से कई ऐसी हैं जो जीवित जागृत शब्द बन चुके थे पूर्व इसके कि लेख का प्रयोग प्रारम्भ होता, इनमें से वेद, उपनिषदें

और भागवद्गीता मानवीय आत्मा के हिमालय के समान शेष सबसे ऊपर उठे हुए ग्रन्थ होंगे।

मि० जे० मास्करो एम० ए०
पुस्तक-दा हिमालय आफ दा सोल-पृष्ठ १५१

वैदिक धर्म केवल एक ईश्वर का प्रतिपादन करता है। यह एक पूर्णतया वैज्ञानिक धर्म है जहाँ धर्म और विज्ञान हाथ में हाथ मिलाकर चलते हैं। यहाँ धार्मिक सिद्धान्त विज्ञान और तत्त्वज्ञान वा फ़िलासफ़ी पर आश्रित हैं।

मि० डब्लू० डो० ब्राऊन
पुस्तक-दा सुपीरियरिटी आफ़ दा वैदिक रिलीज़न

सारे संसार में कोई इतना लाभदायक और ऊँचा उठाने वाला ग्रन्थ नहीं है जितना कि उपनिषद्। (यजुर्वेद का ४०वाँ अध्याय)। यह मेरे जीवन में शान्तिदायक ग्रन्थ रहा है और मृत्यु के समय भी यही मुझे शान्ति देने वाला होगा।

जर्मनी के दार्शनिक शौपनहार

वैदिक सूक्त हमारे इस विचार का प्रबल समर्थन करते हैं कि वैदिक आचार-शास्त्र सम्पूर्णतया अत्याधिक पवित्र और उत्कृष्ट था। उदाहरणार्थ दान अथवा दूसरों को सहायता देने के विषय में (जो ऋग्वेद म० १० सू० ११७ में वर्णित है) कोई शिक्षा, भावना और भाषा की दृष्टि से इससे अधिक सुन्दर नहीं हो सकती।

रागोज़िन
पुस्तक-वैदिक इण्डिया पृष्ठ ३७४

कितनी आश्चर्यजनक सचाई है। हिन्दुओं का ईश्वरीय ज्ञान वेद ही जो लोकों की मन्द और क्रमिक रचना बताता है सब 'ईश्वरीय ज्ञानों' में एक ऐसा है, जिसकी कल्पनाएँ आधुनिक विज्ञान के साथ पूर्ण रूप से मिलती हैं।

फ्रान्स देशीय जैकोलियट्
पुस्तक-दा बाइबल इन इण्डिया
हिन्दी अनुवाद सन्तराम कृत भाग २ अ १ पृष्ठ २४६

हमनें प्राचीन भारत के धर्म के विषय में सुना और पढ़ा है। यह उन महान् वेदों की भूमि है जो अत्यन्त अद्भुत ग्रन्थ हैं जिनमें न केवल पूर्ण जीवन के लिए उपयोगी धार्मिक तत्त्व बताये गये हैं। बल्कि उन तथ्यों का भी प्रतिपादन किया गया है जिन्हें समस्त विज्ञान ने सत्य प्रमाणित किया है। बिजली, रेडियम, एलेक्ट्रन्स, विमान वा हवाई जहाज आदि सब चीजें वेदों के द्रष्टा ऋषियों को ज्ञात प्रतीत होती हैं।

अमेरिकन विदुषी महिला मिसेज़ ह्वीलर विल्लौक्स

जिन पाठकों को वेद की इस अद्भुत विशेषता का ज्ञान नहीं है कि किस प्रकार एक ही शब्द से वे भौतिक और आध्यात्मिक तत्त्वों का वर्णन करते हैं उनको यह भ्रम हो सकता है कि वेद अग्नि, वायु, उषा, सूर्यादि को ईश्वर वा देव समझते हैं जिनसे ऋषि शक्ति, स्वास्थ्य, धन, दीर्घ-जीवन, वीर पुत्रादि की प्रार्थना करते हैं किन्तु वस्तुतः ऐसा नहीं है। वेद तो ऐसे एकेश्वरवाद का प्रतिपादन करते हैं जो सबसे अधिक विशुद्ध और पवित्र है। वह यह विश्वास है कि जगत् उस परमेश्वर के प्रेम, शक्ति, बुद्धिमत्ता और महत्व को प्रकट करता है जो लोक-लोकान्तरों का निर्माण और अन्त में प्रलय करता है, इन जीवात्माओं के लाभ, अनुशासन और कल्याण के लिए अटल प्राकृतिक नियमों जिन्हें वेद में 'ऋत' के नाम से पुकारा गया है और कर्म नियम के अनुसार।

(पृष्ठ १०)

वेद, ज्ञान की पुस्तक है जिसमें प्रकृति, धर्म, प्रार्थना, सदाचार इत्यादि विषयक पुस्तकें सम्मिलित हैं। वेद का अर्थ ज्ञान है और वास्तव में वेद में सारे ज्ञान-विज्ञान का तत्त्व है।

सुप्रसिद्ध पारसी विद्वान् फर्दून दादा चान
पुस्तक-फिलासफि ऑफ़ ज़ोरोसट् इज्म-पृष्ठ १००

चमत्कार और ईसाइयत अभौतिक विश्वास—ये दोनों साथ ही रह सकते अथवा गिर सकते हैं। ईसाइयत को बुद्धि द्वारा अगम्य ईश्वरीय ज्ञान के रूप में अथवा मनुष्य की मुक्ति के लिए एक अभौतिक ईश्वरीय ज्ञान के रूप में चमत्कारों की साक्षिता के बिना नहीं माना जा सकता। वेदों में प्रकृति नियम अथवा विज्ञान विरुद्ध बातों का उल्लेख

नहीं है बल्कि परमेश्वर को सैंकड़ों स्थान पर 'सत्यधर्मा' के नाम से स्मरण किया गया है। जिसका अर्थ यह है कि उसके धर्म वा नियम सत्य और अटल हैं।

डा० मैजले
बैम्पटन लैक्चर १८६५ ई०

ऋषि दयानन्द की इस धारणा में-कि वेद में धर्म और विज्ञान दोनों की सचाइयाँ पाई जाती हैं। कोई उपहासास्पद वा कल्पित बात नहीं है। मैं इसके साथ अपनी धारणा जोड़ना चाहता हूँ कि वेदों में एक-दूसरे विज्ञान की सचाइयाँ भी विद्यमान हैं जिनका आधुनिक जगत् को किन्चित मात्र भी ज्ञान नहीं है और ऐसी अवस्था में ऋषि दयानन्द ने वैदिक ज्ञान की गम्भीरता के विषय में अतिशयोक्ति से नहीं अपितु न्यूनोक्ति से ही काम लिया है।......यदि यह बात ठीक है जैसे कि ऋषि दयानन्द का प्रबल प्रमाणों के आधार पर विश्वास था कि वेद में परमेश्वर, प्राकृतिक नियम और परमेश्वर के आत्मा और प्रकृति के साथ सम्बन्ध, इन सब बातों के विषय में सत्य ज्ञान को प्रकाशित किया गया है तो इसे ईश्वरीय सत्य के प्रकाशक के अतिरिक्त क्या कहा जा सकता है? और यदि जैसे कि ऋषि दयानन्द का विश्वास था कि इन विषयों का ज्ञान वेदों में पूर्ण सत्य के साथ निर्दोष रूप में प्रकाशित किया गया है, तो उसका निर्भ्रान्त धर्म ग्रन्थ के रूप में वेद को मानना समुचित ही है...। वैदिक व्याख्या के विषय में मेरा यह विश्वास है कि वेदों की सम्पूर्ण अन्तिम व्याख्या कोई भी हो ऋषि दयानन्द का यथार्थ निर्देशों के प्रथम आविर्भावक के रूप में सदा मान दिया जाएगा। पुराने अज्ञान और पुराने युग की मिथ्याज्ञान की अव्यवस्था और अस्पष्टता के बीच में यह उसकी ऋषिदृष्टि थी जिसने सचाई को निकाल लिया और उस वास्तविकता के साथ बाँध दिया। समय ने जिन द्वारों को बन्द कर रखा था उनकी चाबियों को उसी ने पा लिया और बन्द पड़े हुए स्रोत की मुहरों को उसी ने तोड़कर परे फेंक दिया।

योगी श्री अरविन्द
दयानन्द और वेद
वैदिक मैगजीन लाहौर नवम्बर १९१६

'वेद परमेश्वरोक्त हैं। इन्हीं के अनुसार सब लोगों को चलना

चाहिये।' जैसे माता-पिता अपने सन्तानों पर कृपा दृष्टि कर उन्नति चाहते हैं वैसे ही परमात्मा ने सब मनुष्यों पर कृपा करके वेदों को प्रकाशित किया है जिससे मनुष्य अविद्यान्धकार भ्रमजाल से छूटकर विद्या-विज्ञान रूप सूर्य को प्राप्त होकर अत्यानन्द में रहें और विद्या तथा सुखों की वृद्धि करते जायें।

सत्यार्थप्रकाश सप्तम् सम्मुल्लास

वेद सब सत्य विद्याओं का पुस्तक है।

आर्य समाज का तीसरा नियम
महर्षि दयानन्द सरस्वती

बाइबल विज्ञान संघर्ष

बाइबल का उद्गम स्थान पाश्चात्य देशों में स्थित यदुशलम है। वर्तमान वैज्ञानिकों का भी जन्म स्थान वाइबल से प्रभावित पाश्चात्य देश ही हैं। बाइबल और वैज्ञानिकों का संघर्ष सदैव से चलता चला आ रहा है और भविष्य में चलता ही रहेगा, जिसका मुख्य कारण यह है कि बाइबल की शिक्षायें विज्ञान की कसौटी पर सही और खरी नहीं उतरतीं। जो वैज्ञानिक बाइबल की शिक्षाओं की आलोचना करते हैं वही वेद की शिक्षाओं को विज्ञान सम्मत होने के कारण उसकी प्रशंसा भी करते हैं। जिसकी कुछ झाँकियाँ आपके अवलोकनार्थ प्रस्तुत हैं।

बाइबल उत्पत्ति नामक पुस्तक से

तब परमेश्वर ने कहा, उजियाला हो; तो उजियाला हो गया ॥ और परमेश्वर ने उजियाले को देखा कि अच्छा है; और परमेश्वर ने उजियाले को अंधियारे से अलग किया ॥ और परमेश्वर ने उजियाले को दिन और अन्धियारे को रात कहा तथा सांझ हुई फिर भोर हुआ। इस प्रकार पहिला दिन हो गया।

बाइबल १।३,४,५

तब परमेश्वर ने दो बड़ी ज्योतियाँ बनायीं; उनमें से बड़ी ज्योति को दिन पर प्रभुता करने के लिए, और छोटी ज्योति को रात पर प्रभुता करने के लिये बनाया ॥ तथा साँझ हुई फिर भोर हुआ। इस प्रकार चौथा दिन हो गया।

बाइबल १।१६,१९

और परमेश्वर ने अपना काम जिसे वह करता था सातवें दिन समाप्त किया। और उसने अपने किये हुए सारे काम से सातवें दिन विश्राम किया।

बाइबल २।२

तब यहोवा परमेश्वर जो दिन के ठण्डे समय वाटिका में फिरता था उसका शब्द उनको सुनाई दिया। तब आदम और उसको पत्नी वाटिका के वृक्षों के बीच यहोवा परमेश्वर से छिप गये।

बाइबल ३।८

और यहोवा पृथ्वी पर मनुष्य को बनाने से पछताया, और वह मन में अति खेदित हुआ ॥ तब यहोवा ने सोचा, कि मैं मनुष्य को जिसकी मैंने सृष्टि की है पृथ्वी के ऊपर से मिटा दूंगा;......क्योंकि मैं उनके बनाने से पछताता हूँ ॥

बाइबल ६।६,७

जब लोग नगर और गुम्मट बनाने लगे; तब इन्हें देखने के लिए यहोवा उतर आये ॥ और यहोवा ने कहा, मैं क्या देखता हूँ, कि सब एक ही दल के हैं और भाषा भी इन सब की एक ही है, और उन्होंने ऐसा ही काम भी आरम्भ किया, और अब जितना वे करने का यत्न करेंगे, उसमें से कुछ उनके लिए अनहोना न होगा ॥ इसलिए आओ, हम उतर के उनकी भाषा में बड़ी गड़बड़ डालें, कि वे एक-दूसरे की बोली को न समझ सकें ॥ इस प्रकार यहोवा ने उनको, वहाँ से तित्तर-बित्तर करके सारी पृथ्वी के ऊपर फैला दिया; और उन्होंने उस नगर का बनाना छोड़ दिया ॥

बाइबल ११।५,६,७,८

इसी प्रकार ईश्वर के जेकब के साथ कुश्ती लड़ने, अब्राहम के घर

बछड़े का मांस खाने आदि के वर्णन बाइवल में आये हैं जिन्हें विस्तारभय से उद्धृत करना उचित प्रतीत नहीं होता।

उत्तरी ध्रुव में ६ मास का दिन और ६ मास की रात होती है, कारण वहाँ छः मास तक सूर्य नहीं पहुँचता। इसी प्रकार दक्षिणी ध्रुव में सूर्य बिल्कुल नहीं पहुँचता, इस कारण वहाँ सदैव अन्धकार ही बना रहता है। इस प्रकार स्पष्ट है कि सूर्य के होने से ही दिन और सूर्य के न होने से रात होती है, दूसरे सूर्य के उदय और अस्त होने से ही दिन की गणना होती है। बिना सूर्य के तीसरे दिन तक की गणना किस प्रकार हो गई। व्यक्तियों की प्रगति और सामन्जस्य यहोवा परमेश्वर को नहीं भाया तभी नाराज होकर उनकी भाषा में गड़बड़ी कर डाली। इन्हीं कारणों से यहोवा परमेश्वर अपनी बनाई सृष्टि से दुःखी हो गया।

इस प्रकार ईश्वर की मनुष्यवत् कल्पना से वैज्ञानिक तथा विचारशील विद्वान् कभी सहमत नहीं हो सकते।

इस प्रकार की ईश्वर की मनुष्यवत् कल्पना बच्चों जैसी मूर्खता पूर्ण है।

सी०एस०मिडिल मैन, एफ०आर०एस०आई०ई०

क्या आप सोचते हैं साइन्स ने शरीर रूपी ईश्वर को नकारा है ?

ड्राब्रिज एम० ए०
पुस्तक–रिलीज़न आफ साइन्टिस्ट्स

मैं समझता हूँ कि ईश्वर विषयक यह विचार कि वह मानवीय आकृति तथा गुणों से युक्त है वैज्ञानिक विचार के विरुद्ध हैं।

सुप्रसिद्ध वैज्ञानिक जे० बी० कोहन
एफ.आर.एस.डी.एस.सी. एल-एल.डी.एफ.सी.एस.

ईसा मसीह ने जो ईश्वर का स्वरूप बताया, वह वैज्ञानिकों के विचार से बहुत भिन्न प्रतीत होता है। ईसा मसीह तथा आजकल के

गिर्जा घरों की शिक्षाओं में मुझे जगत् कीं संचालिका उच्च शक्ति के अद्भुत महत्त्व की साक्षी नहीं मिलती।

प्रो. सी.सी. फार-एफ.आर.एस.डी.एस सी.
लै० प्रो० आँफ फिजिक्स कैन्ट्रवरी कालिज, यूनीवर्सिटी आफ न्यूजीलैण्ड
ड्राब्रिज एम० ए०
पुस्तक-रिलीजन आफ साइन्टिस्ट्स पृष्ठ ८५

सृष्टि उत्पत्ति क्रम में बाइबल के अनुसार अभाव या असत् से भाव हो गया। यह क्रम वैज्ञानिकों और विचारशील सज्जनों को स्वीकार नहीं। वैदिक धर्मानुसार सृष्टि अभाव से नहीं होती, अपितु उसका उपादान कारण 'नित्य प्रकृति' है। परमेश्वर! कुम्भकार, लोहकार, स्वर्णकार आदि की तरह निमित्त कारण है। इस पर विज्ञान या तत्त्वज्ञान की दृष्टि से वस्तुत: कोई आपत्ति नहीं हो सकती। बाइवल के प्रथम अध्याय में केवल ६ दिनों में सृष्टि की उत्पत्ति मानी है और प्रथम दिन ही, दिन और रात का विभाग वताया। सवसे विचित्र बात यह है कि दिन-रात का विभाजन करने वाले सूर्य और चन्द चौथे दिन बनाये गये बताये हैं। इसके अतिरिक्त बाइबल पृथ्वी का चपटा होना, कुमारीं मरियम से ईसामसीह की उत्पत्ति, ईसा का पानी को शराब के रूप में परिणत कर देना, चार रोटियों से ४ हजार का पेट भर देना, आसमान का नमक के खम्बों पर टिका होना, ईसामसीह का लैजरस को कबर में ४ दिन पड़े रहने के पश्चात् उठा देना, तीसरे दिन ईसा का कबर में से उठ पड़ना आदि अनेक बुद्धि तथा सृष्टि नियम विरुद्ध बातों से भरी हुई है।

स्पेन से वैज्ञानिक 'गैलिलियो' ने घोषणा की कि पृथ्वी गोल है और सूर्य के चारों ओर घूमती है। इस कारण गैलिलियो पर बड़े-बड़े अत्याचार किये गए और 'इन्कयूसिसन कोर्ट' ने १० वर्ष का कठोर दण्ड दिया जिसके फल स्वरूप गैलिलियो की कारावास में ही मृत्यु हो गई।

निर्णय इन्कयूसिसन कोर्ट

यह कथन कि सूर्य केन्द्र है और पृथिवी के चारों ओर नहीं घूमता मूर्खतापूर्ण, धार्मिक सिद्धान्त विद्या की दृष्टि से असत्य; असंगत और

धर्म विरुद्ध है क्योंकि यह स्पष्टतया हमारे धर्म ग्रन्थों के विरुद्ध है।

दूसरा विचार कि पृथिवी केन्द्र नहीं प्रत्युत सूर्य के चारों ओर प्रदक्षिणा करती है असंगत, फिलासफ़ी के दृष्टिकोण से असत्य औरकम से कम धर्म सिद्धान्त की दृष्टि में सच्चे धर्म के सर्वथा विरुद्ध है।

वैज्ञानिक 'ब्रूनो' के विरुद्ध भी इसी प्रकार की कार्यवाही की गई, क्योंकि वह भी पृथिवी को गोल बताता और यह सिद्ध करता था कि अनेक लोक-लोकान्तर हैं। उसे १६ फरवरी १६०० ई० को जीवित अवस्था में ही तेल छिड़ककर जला दिया गया जिस पर उसने मुस्कराते हुए कहा–

मुझे यह मृत्यु दण्ड देते हुए मेरी अपेक्षा तुम्हें ही अधिक भय होगा। (कि तुम एक निरपराध को ऐसा कठोर दण्ड दे रहे हो जिस पर भावी सन्तति के विचारक तुम्हें क्या कहेंगे)

ऐसे अन्यान्य वैज्ञानिकों और हिपेशिया, नेस्टर, एरियस इत्यादि दार्शनिकों पर जो अत्याचार ईसाइयत के सिद्धान्तों से थोड़ा मतभेद प्रकट करने पर किये गये उनका वर्णन पाठक पढ़ सकते हैं।

विलियम ड्रेपर एम० ए० एल० एल० डी०
पुस्तक–हिस्ट्री आफ द कन्फलिक्ट बिटवीन रिलीजन एण्ड साइन्स

ईसाइयत के विज्ञान से विरोध के मुख्य-मुख्य विषयों पर बर्मिघम के बिशप डा० 'बार्न्स की घोषणा–

पूर्व इसके कि मैं धर्म और विज्ञान में संघर्ष की सम्भावना के विषय में कुछ कथन करूँ, मैं इस बात को सर्वथा स्पष्ट कर देना चाहता हूँ कि भूतकाल में धार्मिक विश्वास से सम्बद्ध कई मन्तव्यों को अवश्य छोड़ हो देना चाहिये। विज्ञान ने उनको खुली चुनौती दी है और मेरा विश्वास है और यह कहना सत्य है कि ऐसे प्रत्येक सीधे युद्ध में विज्ञान ही विजयी हुआ है। इसके मैं चार उदाहरण प्रस्तुत करता हूँ।

१—पृथिवी संसार का ध्रुव केन्द्र नहीं यह तो अनेक सूर्यों में से एक सूर्य के चारों ओर गति करती है।

२—मनुष्यों की ही विशेष रूप से रचना की गई यह कथन भी यथार्थ नहीं।

३—कोई पुरोहित किसी विधि क्रियाकलाप अथवा सूत्र द्वारा जड़ प्रकृति में आध्यात्मिक गुणों का प्रवेश नहीं करा सकता।

४—यदि चमत्कारों का यह तात्पर्य है कि प्रकृति की एक रूपता में बड़ी मात्रा में अन्तर पड़ जाता है अथवा प्राकृतिक नियमों का उल्लंघन हो जाता है तो ऐसे चमत्कार मानवीय अनुभव में होते नहीं। वैज्ञानिक अनुसन्धान के ये चार स्पष्ट परिणाम हैं जिनको अन्त में प्रत्येक को अवश्य स्वीकार करना ही पड़ेगा।

द रिलीज़न एण्ड साइन्स एँ सिम्पोजियम
लन्दन पृष्ठ ५७

यदि चमत्कारों से इन्कार किया जाय तो सारी ईसाइयत जहाँ तक उसका ईसामसीह से विशेष सम्बन्ध है—समाप्त हो जाती है, उसका परित्याग करना पड़ता है।

डा० मैन्सल्
पुस्तक–एडस् टू फ़ेथ पृष्ठ ३

॥ इति ॥

भावना

सब वेद पढ़ें सुविचार बढ़ें,
बल पाये चढें नित ऊपर को ।
अविरुद्ध रहें ऋजु पन्थ गहें,
परिवार कहें वसुधा भर को ।।

ध्रुवधर्म धरें पर दुःख हरें,
तन त्याग तरें भव सागर को ।
दिन फेर पिता वर दे सविता,
हम आर्य करें जगती भर को ।।

भजन

आज मिल सब गीत गाओ उस प्रभु को धन्यवाद।
जिसका यश नित गाते हैं गन्धर्व गुणीजन धन्यवाद ॥

मन्दिरों में कन्दरों में पर्वतों के शिखर पर।
देते हैं लगातार सौ-सौ बार मुनिवर धन्यवाद ॥

करते हैं जंगल में मंगल पक्षीगण हर शाख पर।
पाते हैं आनन्द, मिल गाते हैं स्वर भर धन्यवाद ॥

कूप में, तालाब में, सिन्धु की गहरी धार में।
प्रेम - रस में तृप्त हो करते हैं जलचर धन्यवाद ॥

विवाहों में कीर्तनों में, यज्ञ और उत्सव के आदि।
मीठे स्वर में करना चाहिये नारी नर सब धन्यवाद ॥

गान कर "अमीचन्द" भजनानन्द ईश्वर की स्तुति।
ध्यान धर सुनते हैं श्रोता, कान धर-धर धन्यवाद ॥